ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL
वर्ष: 07, अंक: 26-27, अप्रैल–सितंबर 2020

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

मीडिया विशेष

विद्यार्थी मंच

मूल्य : 50 रुपये

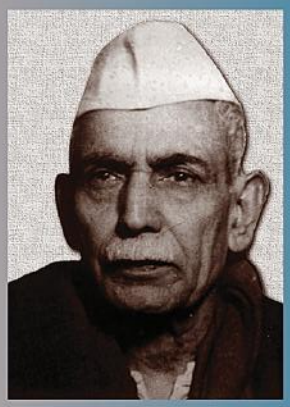

माखनलाल चतुर्वेदी
(04 अप्रैल 1889 - 30 जनवरी 1968)

यदि समाचार-पत्र संसार की एक बड़ी ताकत है, तो उसके सिर जोखिम भी कम नहीं। पर्वत की जो शिखरें हिम से चमकती और राष्ट्रीय रक्षा की महान दीवार बनती हैं, उन्हें ऊँची होना पड़ता है। जगत में समाचार पत्र यदि बड़प्पन पाये हुए हैं, तो उनकी जिम्मेवारी भी भारी है। बिना जिम्मेवारी के बड़प्पन का मूल्य ही क्या है? और वह बड़प्पन तो मिट्टी के मोल हो जाता है जो अपनी जिम्मेवारी को संभाल नहीं सकता। समाचार-पत्र तो अपनी गैर-जिम्मेवारी से, स्वयं ही मिट्टी के मोल का नहीं हो जाता है, वरन वह देश के अनेक महान अनर्थों का उत्पादक और पोषक भी हो जाता है। इस समय एकाधिकार या अल्पाधिकारी शासनों के सिंहासन डोल रहे हैं, और जन-सत्ता का सूर्य धीरे-धीरे नभ मण्डल के मध्य भाग को छूना चाहता है। ऐसे समय में जनता के हृदय की ध्वनि, उनके संकट के शस्त्र, उनके एकांत के चिंतन, उनके जन-समूह के प्रबोधक समाचार-पत्रों का महत्व और भी अधिक हो जाता है, और चूँकि निरंकुशता से समानता की ओर जाने का जगत का रुख बदलने का सामर्थ्य अब अपना काम नहीं कर सकेगा, अतः समाचार-पत्रों का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाएगा। इसलिए सामयिक पत्रों से अपना संबंध समझने, उसे अनुभव करने और उसके बूते परिस्थितियों में परिवर्तन करने के उपासकों को, अपने गंभीर उत्तरदायित्व को क्षण-क्षण अनुभव करना होगा और आने वाली परिस्थितियों का सक्रिय जवाब देने के लिए सदैव प्रस्तुत रहना होगा।

-पहला संपादकीय

संपादकः विजयदत्त श्रीधर

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

त्रैमासिक

वर्ष–7, अंक– 26-27, अप्रैल–सितंबर 2020

संपादक : **डॉ. मीरा सिन्हा**

अतिथि संपादक: **सद्दाम होसैन**

प्रकाशक : **आनंद कुमार सिन्हा**

प्रबंध संपादक : **सुशील कुमार पाण्डेय**

कला संपादक : **शुभागता श्रीवास्तव**

आकल्पक : **सोनू प्रजापति**

पीर रिव्यूड टीम :

डॉ. धूपनाथ प्रसाद: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. विश्वजीत भद्र: प्राध्यापक, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)

प्रो. मोहम्मद फ़रियाद: प्राक्तन अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

डॉ. सुनील कुमार 'सुमन': प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

परामर्श एवं विशेष सहयोग :

प्रो. शशि मुदीराज: प्राक्तन अध्यक्ष, हिंदी विभाग, सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

प्रो. अरुण होता: अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी, बारासात

प्रो. मुक्तेश्वर नाथ तिवारी: विश्व भारती, शांति निकेतन

प्रो. दामोदर मिश्र : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय

प्रो. मनीषा झा : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर–बंग विश्वविद्यालय

डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

डॉ. शुभ्रा उपाध्याय: खुदीराम बोस सेन्ट्रल कॉलेज, कोलकाता

रणजीत सिन्हा : मिदनापुर कॉलेज (आटोनोमस), मिदनापुर

निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल

रामप्रवेश रजक: हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय

रीता सिन्हा : हिंदी विभाग, वर्धमान विश्वविद्यालय

संपादकीय कार्यालय :

आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन
सलकिया, हावड़ा–711 106, पश्चिम बंगाल

संपर्क – 0332675 1686, 09831497320, 9681105070

ई–मेल – muktanchalpatrika@gmail.com
sinhameera48@gmail.com

व्यवस्थापन एवं प्रबंधन :

विनीता लाल, परमजीत कुमार पंडित, विनोद यादव, पार्वती शॉ, प्रभा उपाध्याय, गुड़िया राय, विद्या रजक, सुलेखा कुमारी, सुधा शर्मा एवं अनुभव सिन्हा।

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि मुक्तांचल में प्रकाशन हेतु सामग्री यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) में भेजें।

मुक्तांचल: A/c- 50200014076551, HDFC BANK BURRABAZAR, KOLKATA- 700007, IFSC CODE- HDFC0000219

पत्रिका में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं 'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय–क्षेत्र कलकत्ता उच्च न्यायालय होगा।

मुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता–700009

पत्रिका का मूल्य: एक अंक– 50 रुपये

सदस्यता शुल्क : वार्षिक– 200 रुपये, आजीवन–2000 रुपये

संस्थाओं के लिए: वार्षिक–250रुपये, आजीवन–2500रु.

डाकखर्च (प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये।

संपर्क एवं प्रसार:

चाँदनी सिन्हा (बर्मिंघम, यू.के.) : +447411412229

मनीष कुमार सिन्हा (दिल्ली) : 9716927587

मधु सिंह (कोलकाता) : 9883613002

अवस्थिति

शोध समीक्षण सृजन संचार

संस्तुति

आलेख

07 सद्दाम होसैनः — वर्तमान परिदृश्य और मीडिया नैतिकता

10 डॉ. धूपनाथ प्रसादः — अभिव्यक्ति की छटपटाहटः 'इंडियन ओपीनियन' की अवधारणा एवं सत्याग्रह

21 डॉ. रेणु सिंह : — नोवेल कोरोना वायरस का संस्कृति एवं संचार पर प्रभाव

25 डॉ. रवि कुमार : — भारत और लैटिन अमेरिका के चुनाव में मीडिया की भूमिका

30 डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय : — गांधी, हिंदी और पत्रकारिता

अनुशीलन

42 डॉ. रामशंकर : — वैकल्पिक मीडियाः बढ़ता दायरा और विकल्प

49 डॉ. ललित कुमार : — वैश्विक संचार में हिंदी भाषा का भविष्य

53 डॉ. राहुल पाण्डेयः — वर्ग–संघर्ष का प्रश्न और प्रगतिवाद आलोचक

विमर्श

56 अजय सिंह एवं विपुल प्रताप : — भारतीय मीडिया में मजदूर पलायन की वजह

61 आनंद प्रसाद नोनियाः — राजनीतिक सत्ता का संदर्भ एवं समकालीन पत्रकारिता

64 विनय बिहारी सिंहः — हालाँकि हिंदी तो हिंदी ही रहेगी

67 शंभु शरण सिंहः — कोरोना संकट में भारतीय मीडिया की भूमिका और चुनौतियां

गवेषणा

71 डॉ. रेणु सिंह एवं कुमार प्रियतम : — 'लॉकर रूम' का युवा वर्ग और मीडिया लिट्रेसी

77 कुमार मौसमः — सोशल मीडिया पर कंटेंट निर्माण में युवाओं पर बढ़ती प्रवृत्ति का अध्ययन

शोधार्थी की कलम से

82 राजेश अहिरवार : — सोशल मीडियाः लोकतंत्र का सेतु

86 रुकैय्या नाज़ : — कोविड १९ के संदर्भ में सार्वजनिक सेवा विज्ञापन में खतरे की अपील का अध्ययन

92 अजमल अली खानः — समाज के विकास में सोशल मीडिया का किरदार

शोध	समय की शिला पर	
	93 पूनम सिंह :	मैं कविता नहीं लिखती, कविता मुझे लिखती है
	कविता	
	97 डॉ. कृष्ण कुमार :	पंचम प्रलय, कोरोना से हार नहीं मानेंगे
	98 ओम श्रीवास्तव :	कोरोना शापित मजदूर
समीक्षण	99 डॉ. कृष्ण कन्हैया :	संसर्ग, सत्ता, घर्षण, व्यवहारिकता, तिनका
	100 मनीषा झा:	कर्फ्यू और रास्ता, सूचना
	101 कुंदन सिद्धार्थ :	मेरे गाँव, आषाढ़–मिलन, सुखी होने के गुर
	103 मीना सिंह :	बेघर
	104 पूनम शुक्ला :	जिंदगी और कैमरा, यथार्थ की स्वीकृति के बाद
	सरगम के सुर साधे	
	105 सदानंद शाही :	मेरे लिए कविता एक लाठी की तरह है
	कहानी	
	109 मिथिलेश्वर:	छूँछी
सृजन	115 रमाकांत श्रीवास्तव :	सहयात्री
	119 महेश शर्मा:	अस्थि–विसर्जन
	प्रवासी कलम	
	127 डॉ. कमल किशोर गोयनका:	इंग्लैंड से प्रवासी लेखिकाओं की हिंदी–उर्दू कहानियाँ सांझी कथा–यात्रा
	129 उषा वर्मा :	रिश्ते
	यात्रा-वृतांत	
संचार	136 डॉ. पंकज साहा :	विश्व गगन का प्यारा तारा: मॉरीशस
	पुस्तकायन	
	146 डॉ. अमरनाथ :	समकालीन कहानी पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक
	148 नीरज कुमार मिश्र :	प्रेम के रास्ते जीवन की खोज में निकला कवि
	संचार	
	151 विमल वर्मा :	'आलोचना का सांस्कृतिक आयाम': एक परिचर्चा
	अभिमत	

संस्तुति

आज वैश्विकता के इस दौर में हवा, पानी और रोशनी की तरह मीडिया की व्याप्ति है। दुनिया भर के मनुष्यों का वह समूह जो सभ्यता की कोटि में शुमार है मीडिया से विलग नहीं है। सूचना और ज्ञान, तथ्य और सत्य के ताने–बाने से तैयार यह जरूरी माध्यम हम सभ्य लोगों द्वारा निर्मित और विकसित किया गया है। अतीत में मुनादी, ढिंढोरा और डुगडुगी के दौर से चलकर आज मुद्रण और टंकण से गुजरती हुई अंतर्जाल तक पहुँच गई है जिसे हम द्रुत संचार कहते हैं। तकनीक के विकास के साथ मीडिया ने एक संश्लिष्ट सभ्यता को खड़ा कर दिया है, जिसमें प्रसार एवं विस्तार तो बहुत है, परंतु उसी क्रम से उसमें निरंतर परिष्करण की भी जरूरत बनी रहती है। सूचना तंत्र का अंबार ऊफनती नदी की ऐसी बाढ़ है जो सारे माहौल को लील सकती है। ऐसे में समाज की सोच और समझ का आक्रांत होना स्वाभाविक हो जाता है। घटना, घटित होती है और खबर बनती है उसमें एक संदेश या मैसेज मिलता है– उसका प्रभाव नकारात्मक या सकारात्मक हो सकता है। नकारात्मक प्रभाव वाली खबरें लपट पकड़ती है और 'औचित्य', 'नैतिकता' और 'मूल्यबोध' को तार–तार कर देती है। सही संप्रेषण सचेतक है, लेकिन उसकी प्रस्तुति का स्वरूप अगर स्वस्थ हुआ तभी यह संभव है। इस तरह मीडिया का छपाई से लेकर आभासी तक विविध स्वरूप है, केवल तकनीक मात्र नहीं है, बल्कि साहित्य संसार भी है जिसमें अनमोल रत्न की तरह दृष्टांत छुपे रहते हैं। उदाहरण स्वरूप 'हार की जीत' सुदर्शन की एक कहानी है, जिसमें डाकू खड्गसिंह द्वारा भिखारी और अपाहिज बनकर संत बाबा भारती के घोड़े को हड़प लेने का जिक्र है। यह एक ऐसी घटना है जिसमें बाबा भारती के दया–करुणा को छला गया है। लेकिन इस छल की घटना, व्यापक मानव समाज में नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है, इसलिए बाबा भारती खड्ग सिंह से कहते हैं– इस घटना की चर्चा किसी से नहीं करना, क्योंकि तब कभी कोई किसी गरीब और मजदूर की मदद नहीं करेगा। खड्ग सिंह पर घड़ों पानी पड़ जाता है और बाबा भारती खड्ग सिंह की ठगी से हारकर भी मूल्यबोध में जीत जाते हैं।

मीडिया सिर्फ तकनीक नहीं है, इस तकनीक की आत्मा साहित्य है। वहाँ दर्शन भी है और विज्ञान भी। मीडिया एक महासागर है, जिसमें साहित्य, विज्ञान, दर्शन और समाज से संबद्ध शास्त्र का समागम मिलता है। कुल मिलाकर मीडिया की अहम भूमिका बनती है सामाजिक पर्यावरण के निर्माण में। पूरा एक तंत्र है मीडिया जो आज के सामाजिक जीवन को स्वरूप प्रदान करता है। समाज की गतिविधि मीडिया द्वारा प्रतिबिंबित तो होती ही है, संचालित भी होती है। अत: बड़ा ही जिम्मेदार किस्म का तंत्र है यह, जो बात की बात में लपट भी बन सकता है और सुलगते आग को बर्फ भी बना सकता है। विश्व समाज में मनुष्यता के पक्ष को बचाने की जिम्मेदारी मीडिया के कंधे पर होती है। सूचना को संचार बनाकर संचारित करना मीडिया का प्रधान काम है। इस काम को संपन्न करने में निष्पक्षता का मूल्य सबसे बड़ा होता है। पक्ष को झुठलाया नहीं जा सकता हमेशा दो पक्ष होंगे ही 'ये' या 'वो', 'ऐसे' या 'वैसे' लेकिन प्रसारक की पहल सिर्फ जैसा है वैसा ही होना चाहिए। तथ्य में छुपे सत्य तक पहुँचना और उसे आवाज देना, आवाम को जागरुक करना उसकी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। मीडिया का पक्ष मनुष्य समाज का पक्ष हो। वह असत्य एवं अन्याय से दूर सत्य का पक्ष हो।

संपादक

वर्तमान परिदृश्य और मीडिया नैतिकता

सद्दाम होसैन

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य शासन–प्रशासन से लेकर न्यायिक फैसलों से जुड़ी गतिविधियों पर नजर रखना है। यह सरकार और आम आदमी के बीच एक सेतु का काम करता है। इंटरनेट के विस्तार, सोशल मीडिया की बढ़ती लोकप्रियता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ने मीडिया को दुनिया भर में एक महाशक्ति के तौर पर ला खड़ा किया है। यह लोगों की दिनचर्या का हिस्सा बन चुका है। आज के समय में शायद ही कोई व्यक्ति मीडिया से अछूता है और यही वजह है कि मीडिया अब केवल जानकारी प्राप्त करने का जरिया न रहकर जनता की सोच एवं व्यवहार को प्रभावित करने का एक ताकतवर माध्यम बनता जा रहा है। वर्तमान समय में जब पूरी दुनिया कोरोना नामक महामारी से जूझ रही है, तब मीडिया के जरिए लोग एक दूसरे से अलग रहकर भी परस्पर जुड़े हुए हैं। इस कोरोना काल में मीडिया के जरिए लोग घर बैठे दुनिया की पल–पल की जानकारी से तो वाकिफ हो ही रहे हैं, साथ ही जनता को सतर्क करने, महामारी से बचाव के उपाय बताने और सरकारी सहायता की जानकारी देने में भी मीडिया की भूमिका सर्वोपरि है। ऐसे में मीडिया के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह अपने कर्तव्य और दायित्व का निर्वाह पूरी ईमानदारी से करे और जहाँ बात ईमानदारी की हो रही हो वहाँ नैतिकता का प्रश्न स्वत: ही खड़ा हो जाता है।

किसी भी समाज में मीडिया की सबसे बड़ी नैतिकता इस बात से परिलक्षित होती है कि वह सत्य के साथ खड़ा है या नहीं। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में मीडिया की सार्थकता इसी में है कि वह एक व्यक्ति के लिए ही क्यों न हो सत्य के साथ हमेशा खड़ा रहे।अगर मीडिया अपने मूल्यों और सिद्धांतों के साथ समझौता करता है तो व्यक्ति कमजोर पड़ता है और व्यक्ति किसी भी समाज या राष्ट्र की महत्वपूर्ण इकाई है।

वर्तमान में मीडिया: हालाँकि, आज के परिदृश्य में व्यवसायिक हित, निजी स्वार्थ और गलाकाट प्रतिस्पर्धा के चलते मीडिया अपने वसूलों से दूर होता नजर आ रहा है। मीडिया मजबूत हुआ है, मीडिया की पहुँच में विस्तार अवश्य हुआ है, उसके प्रभाव में वृद्धि हुई है तो दूसरी सच्चाई यह भी है कि आम जनता मीडिया की विषय वस्तु पढ़ने, सुनने, देखने को मजबूर है, जो मीडिया उसके सामने परोस रहा है, क्योंकि यह मीडिया पूँजी, उच्च तकनीक और सत्ता से ज्यादा प्रभावित है। फलस्वरूप मीडिया की विश्वसनीयता में धीरे–धीरे ही सही गिरावट का सिलसिला लगातार जारी है। कई बार तो मीडिया खुद अपनी ही खबरों की वजह से सुर्खियों में रहता है और उसे जनता के गुस्से का सामना भी करना पड़ता है। हाल ही में जब करीब २० पत्रकारों को ऑगस्टा वेस्टलैंड द्वारा हेलीकॉप्टर सौदे को लेकर अनुकूल रिपोर्टिंग के लिए मैनेज किए जाने का आरोप लगाया गया था तब भारतीय मीडिया जगत की तीव्र आलोचना देखी गई थी। अधिकांश मीडिया घराने अपने खास एजेंडा, अपनी विचारधारा

के अनुरूप समाचार चलाते, सेट करते और सनसनीखेज बनाते हैं ताकि ज्यादा से ज्यादा लाभ अर्जित कर सकें और शासन–प्रशासन को खुश करके विज्ञापन हासिल कर सकें। ऐसे में सामाजिक–सरोकार से जुड़ी खबरों पर न के बराबर ध्यान दिया जा रहा है। निर्भया कांड के बाद महिलाओं से जुड़े मुद्दों को लेकर जोरदार बहस करने वाला भारतीय मीडिया आज ऐसी घटनाओं के प्रति संवेदनहीन नजर आता है। जब उत्तर प्रदेश के एक जिले से दो हफ्ते से भी कम समय में एक १३ साल की मासूम और फिर एक १८ साल की दलित लड़की के साथ दुष्कर्म के बाद हत्या की घटना सामने आती है तो उसे प्राइम टाइम की खबरों में जगह नहीं दी जाती। आखिर क्यों? क्योंकि ये घटनाएँ सनसनीखेज नहीं हैं, न तो इनका बॉलीवुड से कोई कनेक्शन है और न ही इनसे न्यूज चैनलों को टीआरपी मिलेगी। कई बार खबरों को दबाव के कारण भी दबा दिया जाता है। आज के समाज में मीडिया पैसा कमाने के लालच में समाज को गुमराह करने लग गया है। फलस्वरूप प्रॉस्टिट्यूट, पेड न्यूज, गोदी मीडिया आदि नामों से लोग मीडिया को संबोधित कर रहे हैं, जो गंभीर विचारणीय है।

आज समाज में पत्रकारिता के सामाजिक और व्यवसायिक उत्तरदायित्व बढ़ गए हैं। पत्रकारिता का उद्देश्य सच्ची घटनाओं पर प्रकाश डालना है, वास्तविकताओं को सामने लाना है, इसके बावजूद यह आशा की जाती है कि वह इस तरह काम करे कि 'बहुजन हिताय' की भावना सिद्ध हो। महात्मा गांधी के अनुसार, 'पत्रकारिता के तीन उद्देश्य हैं– पहला जनता की इच्छाओं, विचारों को समझना और उन्हें व्यक्त करना है। दूसरा उद्देश्य जनता में वांछनीय भावनाएं जागृत करना और तीसरा उद्देश्य सार्वजनिक दोषों को नष्ट करना है। गांधी जी ने पत्रकारिता के जो उद्देश्य बताए हैं, उन पर गौर करें तो प्रतीत होता है कि पत्रकारिता का वही काम है जो किसी समाज सुधारक का हो सकता है।

वहीं, पूर्व राष्ट्रपति शंकरदयाल शर्मा के अनुसार पत्रकारिता पेशा नहीं, यह जनसेवा का माध्यम है। लोकतांत्रिक परंपराओं की रक्षा करने, शांति और भाईचारे की भावना बढ़ाने में इसकी भूमिका है। समाज में मानव मूल्यों की स्थापना के साथ जन–जीवन को विकासोन्मुख बनाना पत्रकारिता का दायित्व है। पत्रकारिता के सामाजिक और व्यवसायिक उत्तरदायित्व के अनेकानेक आयाम हैं। अपने इन उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए पत्रकार का एक हाथ हमेशा समाज की नब्ज पर होता है। ऐसे में मीडिया के लिए किसी भी तरह के सरकारी या निजी संस्था के हस्तक्षेप से बचना आवश्यक हो जाता है। इस संदर्भ में रामबहादुर राय, संपादक, प्रथम प्रवक्ता का कथन उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि अगर पत्रकारों की भर्ती में सरकार का हस्तक्षेप हो जाए तो वह निष्पक्ष रूप से काम नहीं कर पाएगी। मीडिया, जनता की नैतिक प्रतिनिधि है। पत्रकारिता डिग्री और डिप्लोमा से नहीं चलती, पत्रकारिता बुद्धि, विवेक और अनुभव से चलता है। जो लोग डिग्री और डिप्लोमा लेकर इस क्षेत्र में आते हैं उन्हें आराम, सुरक्षा और पैसे वाली जिंदगी चाहिए, जो कि पत्रकारिता में संभव नहीं। इस समस्या से निपटने के लिए प्रेस की वॉचडॉग, प्रेस काउंसिल को आगे आना चाहिए लेकिन आजकल वह काफी कमजोर हो चुका है। उक्त समस्या से निपटने के लिए मीडिया संघ को दखल देना चाहिए, न कि सरकार को। यह काफी दिलचस्प बात है कि महात्मा गांधी को भी एक पत्रकार कहा गया है, और हमारे आज के पत्रकार। अगर इन पत्रकारों के साथ गांधी पत्रकार की तुलना की जाए तो यह काफी शर्म की बात होगी। मेरी इन पत्रकारों से कोई जातीय दुश्मनी नहीं है, पेशे से मैं भी इसका एक छोटा सा अंग हूँ। पत्रकारिता के मूल्यों पर महात्मा गांधी कहते हैं कि पत्रकारिता के जो मूल्य हैं, वे तो शाश्वत हैं। जब समय बदलता है तो पत्रकारिता के तौर–तरीकों में भी बदलाव होते हैं। हमारे यहाँ भारत में हिंदी पत्रकारिता की एक

परंपरा रही है और वह पत्रकारिता का मूल्य है, जिसमें सत्य-निष्ठा है और उसके लिए आग्रह है।

इससे यह स्पष्ट है कि मीडिया यदि अपने निहित स्वार्थों को भूलकर अपनी जिम्मेदारी निभाए तो समाज को एक दिशा प्रदान कर सकता है। समाज में मीडिया की भूमिका संवादवहन की होती है। मीडिया अपनी भूमिका द्वारा समाज में शांति, सौहार्द, समरसता और सौजन्य की भावना विकसित कर सकती है। अपनी इसी ताकत के कारण भारतीय मीडिया को संवेदनशील मुद्दों के प्रति अधिक संयम होने की जरूरत है। सामाजिक तनाव, संघर्ष, मतभेद, युद्ध एवं दंगों के समय मीडिया को बहुत ही संयमित तरीके से कार्य करना चाहिए। राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं एकता की भावना को उभारने में भी मीडिया की अहम भूमिका होती है। शहीदों के सम्मान में प्रेरक उत्साहवर्धक खबरों के प्रसारण में मीडिया को बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना चाहिए। मीडिया विभिन्न सामाजिक कार्यों द्वारा समाज सेवक की भूमिका भी निभा सकता है। भूकंप, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक या मानवकृत आपदाओं के समय जन-सहयोग उपलब्ध कराकर मानवता की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है। मीडिया को सद्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन हेतु भी आगे आना चाहिए।

न्यू मीडिया आने के बाद एक पूरे विश्व में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात हुआ है। यह परिवर्तन नई परिस्थितियों के प्रति नए मनुष्य की प्रतिक्रिया का परिणाम है। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्फोट ने दुनिया को पूरी तरह से बदल दिया। दुनिया इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से इस प्रकार जुड़ गई है कि आज दुनिया के किसी कोने से दूसरे कोने तक सूचनाओं का आदान-प्रदान बड़ी सुगमता से हो जा रहा है। मीडिया ने जनता की अभिव्यक्ति के तरीकों को पूरी तरह से बदल दिया है। इस आधुनिक सूचना क्रांतिकारी युग को मार्शल मैक्लूहन ने 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा दी है। यह नए मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती है। पत्रकारिता के पेशे में सत्यापन पहला आधार है, जिस पर पत्रकारिता का पूरा अस्तित्व खड़ा होता है। पाठक या दर्शक मीडिया पर इसीलिए भरोसा करता है क्योंकि उसे लगता है कि मीडिया सच ही दिखाएगा, परंतु जिस प्रकार न्यू मीडिया तकनीक का विकास हुआ उसके कारण झूठी खबरें, चित्र, वीडियोज और संदेश मीडिया दिखाने लगता है। इसे आज की भाषा में वायरल होना कहते हैं। फेक समाचारों और फेक सूचनाओं ने हमारे देश में आज मीडिया नैतिकता को लेकर एक जटिल प्रश्न खड़ा हो गया है। २०१८ में ही सोशल मीडिया पर फेक न्यूज के प्रसार के कारण भीड़ द्वारा हिंसा की व्यापक खबरें आई। आज समाज में भ्रामक सूचनाओं, अप्रमाणित सूचनाओं और भाड़काऊ सूचनाओं की बाढ़-सी आ चुकी है, लेकिन हमें इन चुनौतियों से सचेत होने की जरूरत है। हमें न्यू मीडिया के सुविधाओं का लाभ अवश्य उठाना चाहिए, लेकिन पूरी सतर्कता और मीडिया नैतिकता के साथ उसे आगे बढ़ाना चाहिए।

आज के समय मीडिया का स्वरूप पूरी तरह बदल गया हैं। मीडिया अपराध की खबरों को दिखाए, पर सकारात्मक समाचारों से भी किनारा न करे। आज के मीडिया की विश्वसनीयता और उसकी नैतिकता पर तरह तरह के सवाल खड़े होने लगे हैं। आज का मीडिया एक सीमित दायरे में सिमटता जा रहा है। समाज में फैली बुराइयों के अलावा विकास से संबंधित खबरों को दिखाने की जरूरत है। वर्तमान मीडिया को लोगों को समझाना और उनकी विचारों को समझकर मीडिया नैतिकता के साथ सही मागदर्शन देने की जरूरत है। इस तरह लोगों को जागरूक करने के साथ-साथ उन्हें अपने जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करना मीडिया की नैतिकता का केंद्र बिंदु है।

संपर्क: पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)
ईमेल:Saddam.visvabharati@gmail.com मो. ६२९७८७४८७८

अभिव्यक्ति की छटपटाहट : 'इंडियन ओपीनियन' की अवधारणा एवं सत्याग्रह

डॉ. धूपनाथ प्रसाद

'अभिव्यक्ति' का शब्द–संदर्भित अर्थ अगर मनोरम व्यक्ति कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, क्योंकि इस शब्द का संज्ञान–स्वरूप अपने को व्यक्त करना ही है। व्यक्ति क्या व्यक्त करे, इसकी शुचिता प्रणीत है। अगर इसका व्यक्तना गैर–रचनात्मक, असंगठित और संस्कृतिविहीन है तो वह व्यक्तना उसकी 'अभिव्यक्ति' नहीं होगी, वह व्यक्ति, समाज तथा संस्कृति के लिए अशोभनीय, अकारण तथा अकारथ होगी। इस परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्ति व्यक्ति की आत्मवंचना नहीं, संरचनात्मक कार्य का स्वरूप है, जो ध्वनि–रूप में, मुद्रण–रूप में तथा लेखन –रूप में स्वत: सामने आता है। जब भीतर की यह रचनात्मकता बाहर निकलना चाहती है तो अपने माध्यम के लिए बेचैन हो जाती है। यह बेचैनी व्यक्ति के अंदर कभी–कभी इस कदर जोर मारती है कि वह उसके लिए, उस चिंतन की क्रियात्मकता के लिए छटपटाने लगता है और यहीं आकर अभिव्यक्ति की छटपटाहट सार्थक होती है।

तत्पश्चात तलाश होती है अभिव्यक्ति के माध्यम की। अभिव्यक्ति के माध्यमों में शाश्वत माध्यमों की महत्ता सर्वोपरि है और उसमें मुद्रण–माध्यम चिरजीवी है। ध्यातव्य हो कि कुछ बातें ऐसी होती हैं, जो अनकही रह जाती हैं; कुछ बातें ऐसी होती हैं; जिसे कहे बिना रहा नहीं जाता, परंतु कहा कैसे जाए, यह द्वंद्व बेचैनी और छटपटाहट का कारण बनता है। शायद इसी द्वंद्व की छटपटाहट और बेचैनी ने अपने को कहने के लिए 'लेखन–कर्म' को जन्म दिया होगा। लेखन के जन्म के साथ ही इसे सुरक्षित व शाश्वत रखने के लिए मुद्रण की खोज हुई होगी, जिससे अभिव्यक्ति को शाश्वतता प्रदान हो सके। इसी शाश्वत–चिंतन ने मुद्रण–माध्यम के हेतु अखबार की अवधारणा विकसित की होगी, जिससे विचारों और सूचनाओं को संप्रेषित कर अपनी अभिव्यक्ति को सुदूर मानस–पटल पर अंकित कर परिवर्तन लाया जा सके। चूंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, अत: नियमानुसार पत्रकारिता परिवर्तन का हेतु हो, तभी वह अपने अर्थों में सार्थक है।

गांधी को इस शाश्वतता की जानकरी अपने विधि–अध्ययन के दौरान इंग्लैंड में हो गई थी। कानून की पढ़ाई करने लंदन जाने के पूर्व गांधी को अखबार की जानकारी बिलकुल नहीं थी। उन्होंने स्वीकारा भी है कि इससे पूर्व मैंने समाचार–पत्र पढ़ा ही नहीं था। 'पढ़ा ही नहीं था' से तात्पर्य है कि गांधी समाचार–पत्र की शक्ति को लंदन प्रवास काल में समझ पाए थे। यही कारण है कि वे अपनी कानून की पढ़ाई के दौरान कई पत्रों से जुड़े रहे। यथा– 'डेली न्यूज' (Daily News), 'डेली टेलीग्राफ' (Daily Telegraph) तथा 'पालमाल गजट' (Pal Mal Gazette)। धीरे–धीरे गांधी के लिए समाचार–पत्र केवल सूचना तथा मनोरंजन के लिए ही नहीं रहे, पत्र उनके लिए महत्वाकांक्षा के कारण

बन गए। १८८८ में कानून की शिक्षा के लिए लंदन जाते समय माँ का दिया हुआ वचन निभाने में शाकाहार भी प्रमुख था। लंदन में अपने मित्रों की मदद से वे 'लंदन वेजीटेरियन सोसाइटी' के सदस्य बन गए थे। शाकाहार के प्रति अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाने की ललक बढ़ रही थी। संयोगवश वेजीटेरियन सोसाइटी के अपने मित्रों द्वारा सोसाइटी की पत्रिका 'वेजीटेरियन' के लिए लिखने का आमंत्रण मिल गया। यही आमंत्रण था और यही वह पत्रिका थी जिससे गांधी जी ने लिखना शुरू करके एक स्वतंत्र पत्रकार की भूमिका में प्रविष्ट हुए। अपनी कानून की पढ़ाई के तीन साल में गांधीजी ने लंदन प्रवास में 'वेजीटेरियन' के लिए लगभग बारह लेख लिखे। कानून की शिक्षा के साथ-साथ गांधी के लिए यह पत्रकारिता का प्रशिक्षण-काल (१८८८-१८९१) था। फलस्वरूप लेखन की कुशलता के साथ-साथ बाइस वर्षीय युवा गांधी का यह जागरण-काल उन्हें एक पूर्ण प्रवीण पत्रकार बना दिया। यही कारण कारगर हुआ कि 'वेजीटेरियन' ने उन्हें दक्षिण अफ्रीका में वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक तथा मानवीय व्यवस्था की रिपोर्टिंग के लिए प्रतिनिधित्व करने का अवसर दिया। यह अवसर उन्हें एक कर्तव्यनिष्ठ नैतिक पत्रकार की श्रेणी में खड़ा कर दिया।

अभिव्यक्ति की पहली पहल : वेजीटेरियन (Vegetarian-1891) 'वेजीटेरियन' में लिखे गए तमाम लेख भारतीय रहन-सहन, आहार, रीति-रिवाज तथा पर्व-त्योहार आदि से संबंधित सांस्कृतिक मूल्यों के बोध हेतु एक अभिनव प्रयोग थे। इसका असर न स्वयं गांधी पर ही पड़ा, बल्कि प्रवासी भारतीयों के साथ-साथ लंदनवासियों पर भी पड़ा। गांधी जी ने अपने लेखन के प्रभाव को पत्रकारिता का पहला प्रयोग समझकर इसे जिम्मेदारी पूर्ण कार्य का स्वरूप दिया। 'वेजीटेरियन' में उनका पहला लेख 'भारतीय अन्नाहारी' (Indian Vegetarian) ०७ फरवरी १८९१ के अंक में छपा, जिसमें जीवहत्या के प्रारंभिक स्वरूप अंडाकार का मुद्दा मुख्य था। इस तरह २८ फरवरी १८९१ के 'वेजीटेरियन' में 'कुछ भारतीय त्योहार' (Some Indian Festivals) शीर्षक से लेख छपा, जिसमें भारतीय पर्व, त्योहार तथा उत्सवों में हमारे पारंपरिक सद्भाव किस तरह जनमानस में जागरण और भाईचारा का प्रवाह करते हैं, यह बताकर गांधी जी ने अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का लोहा मनवाने में सफलता प्राप्त की। पत्रों से जुड़ने और अपने को जोड़ने का कौशल गांधी को प्राप्त हो गया था। पढ़ाई समाप्त कर स्वदेश लौटने पर अपनी यात्रा-कथा On my way home again to India शीर्षक से 'वेजीटेरियन' को भेजा, जो ९ तथा १६ अप्रैल १८९२ के अंकों में छपा। यह छपना और छपने की छटपटाहट पत्रकारिता की पहली प्यास है, जो इसे बरकरार रखा वह पत्रकार का स्वरूप ग्रहण कर लिया और जो इसे किताब के स्थिर स्वरूप में स्थान दे दिया वह लेखक बन गया। गांधी में पहली प्रवृत्ति ज्यादा थी। उनका कोई भी लेखन अखबार से अछूता नहीं है, उनकी कोई भी पहल पत्रकारिता के बगैर नहीं है। अर्थात गांधी जी में पत्रकारिता के 'बीज' उनके रग-रग में वर्तमान थे, 'वेजीटेरियन' ने खाद-पानी देकर उन्हें पुष्पित तथा पल्लवित किया, फलस्वरूप गांधी जी अपने लक्षित उद्देश्य की ओर अनजाने में ही बढ़ते गए और एक महासमर की तैयारी अपने आप होती गई। पत्रकारिता में जो परिवर्तन का प्रवेग है, उसका प्रवाह गांधी को प्रवाहित करता चला गया।

लंदन से स्वदेश लौटने पर मुंबई में वकालत का पेशा शुरू करने के साथ-साथ पत्रकारिता से भी जुड़े रहे। चूँकि अपनी बात चाहे वह किसी भी आयाम की हो, लोगों तक कैसे पहुँचे? इसके लिए गांधी जी सतत जागरूक और प्रयत्नशील रहे। यह जागरूकता ही उन्हें पत्रों से जोड़े रही, जिनमें प्रमुख पत्र था बंबई का 'टाइम्स ऑफ इंडिया'।

अप्रैल १८९३ में गांधी जी प्रथमत: अफ्रीका के लिए रवाना हुए। जीवन की इस यात्रा ने उनके मानवीय विचारों को और भी पुष्पित किया। रंगभेद की अमानवीयता ने गांधी को अपमानित कर क्षुब्ध बना दिया। दादाभाई अब्दुला के लिए दक्षिण अफ्रीका गए, गांधी ने मानवता का केश फाइल कर दिया। उन्होंने स्वीकारा है ''मैंने सच्ची वकालत करना सीखा, मनुष्य-स्वभाव का उज्ज्वल पक्ष ढूंढ निकालना सीखा, मनुष्य के हृदय में पैठना सीखा।'' दादा अब्दुला का प्रिटोरियावाला मुकदमा निबटाने के बाद भारत लौटने हेतु गांधी डरबन आए, उनकी विदाई में एक भोज का आयोजन और उसी भोज में 'नेटाल मरकरी' (Natal Mercury) नामक अखबार ने गांधी जी को रुकने के लिए बाध्य कर दिया। मानवाधिकार का हनन होते देख गांधी यह लड़ाई लड़ने को तैयार हो गए। भारतीयों को मताधिकार से वंचित कर उन्हें मिटा देने की अमानवीयता ने गांधी को मानवीय मूल्यों के हेतु संघर्ष का आह्वान किया। फलस्वरूप अनिवासी भारतीय गांधी के साथ हो लिए। गांधी की अभिव्यक्ति का परिणाम यह हुआ कि १८९४ के मताधिकार विधेयक विरोध प्रस्ताव का लंदन के 'टाइम्स' अखबार ने दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों की समस्या पर तीन साल में आठ लेख छापा। 'भारतीय मताधिकार' (Indian Franchies) शीर्षक अखबारी पैराग्राफ ने गांधी के पूरे व्यक्तित्व पर अफ्रीका में अपमानित, शोषित, प्रताड़ित तथा 'गिरमिटिया' कहे जाने वाले अपने भाईयों के लिए एक पूरा ग्राफ खींच दिया। यह ग्राफ गांधी को गहरे उतार दिया, मनुष्यता की लड़ाई लड़ने के लिए। यहीं से मानव उनके दर्शन के केंद्र में बैठ गया और गांधी जीवन-पर्यंत मानवता की लड़ाई लड़ते रहे। जल्द-से-जल्द मानवीयता की यह आवाज पूरी दुनिया में फैल जाए, इसके लिए अखबार (समाचार-पत्र) से अधिक उपयुक्त साधन कोई नहीं था, यह गांधी को बहुत पहले ही भान हो चुका था। फलस्वरूप वे अफ्रीका के कई पत्रों से जुड़ गए- यथा 'प्रिटोरिया न्यूज' (Pretoria News), 'नेटाल मरकरी' (Natal Mercury), 'नटाल एडवरटाइजर' (Natal Advertiser) आदि। यहीं तक नहीं; दादा भाई नौरोजी के पत्र जो इंग्लैंड से 'इंडिया' नाम से १८९० में शुरू हुआ; गांधी जी उस पत्र के डरबन, जोहान्सबर्ग तथा पूरे दक्षिण अफ्रीका के संवाददाता नियुक्त हो गए। अफ्रीका में हो रहे अमानवीय व्यवहार का प्रसार पूरी दुनिया में हो इसके लिए गांधी जी ने पत्रकारिता को अपना संबल बनाया। पूरी दुनिया में गांधी की गूंज गहराती गई। समाचार-पत्रों के संपादकों ने भी गांधी का पूरा-पूरा सहयोग किया। उन्हें लगने लगा था कि अखबारों के द्वारा प्रचार शायद हमारी हालत सुधारने का सबसे अच्छा उपाय है। यही उपाय उनके जीवन-संग्राम में परिवर्तन लाया। संभवत: यहीं से गांधी को अपना पत्र प्रकाशन के लिए बल मिला होगा। 'लंदन टाइम्स' (London Times); कैप टाइम्स (Cap Times), चर्चिल का महत्वपूर्ण पत्र 'मॉर्निंग पोस्ट' (Morning Post), 'एशियाटिक' (The Asiatic) आदि पत्रों ने गांधी के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक भूमिका का निर्वहन किया। अफ्रीका में रहते हुए तीन वर्षों में गांधी ने वहाँ के स्थानीय पत्रों तथा बाहर के पत्रों के संवाददाता के रूप में अपनी पत्राकारिता की पहचान और अभिव्यक्ति के कौशल को बना लिया था, फलस्वरूप वकील के पेशे से ज्यादा एक जाने-माने पत्रकार की प्रतिष्ठा उन्होंने अर्जित कर ली थी।

अभिव्यक्ति की दूसरी पहल : ग्रीन पैम्फलेट (Green Pamphlet-1896) १८९६ के मध्य में अपने परिवार को लिवा जाने गांधी भारत आते हैं। कलकत्ता से ट्रेन द्वारा बंबई होते हुए राजकोट घर पहुँचना था। रास्ते में प्रयाग (इलाहाबाद) का पत्र 'पायोनियर' (The Pioneer) का ख्याति गांधी को रोके बिना न रह सका। प्रयाग में उतरकर पत्र के संपादक मि. चेजनी (Mr. Chesney) से मुलाकात के दौरान संपादक का कहना

कि आप कुछ लिखें तो मैं उस पर टिप्पणी करूँगा। गांधी में, नेटाल में हुए भारतीयों की जो दुर्दशा हुई थी; उसे भारत में लोगों को कैसे बताया जाए उसका बीज पड़ गया। परिणामस्वरूप बंबई में बिना रुके सीधे राजकोट पहुँचे और एक महीने की मेहनत से Grievance of British Indians in South Africa नाम की एक छोटी पुस्तिका लिखी। पुस्तिका छपकर तैयार हुई। चूँकि इस पुस्तिका का मुख्यपृष्ठ हरा था इसलिए यह बाद में 'हरी पोथी' (Green Pamphlet) नाम से प्रसिद्ध हुई। दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों की समस्याओं का सीधा, सटीक और संपूर्ण वर्णन इस पुस्तिका की विशेषता थी, जिसकी प्रथमत: दस हजार प्रतियाँ छपवाकर गांधी जी ने देश के प्रमुख पत्रों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के पास भेजा। इलाहाबाद का 'पायोनियर' सबसे पहला पत्र था जिसने 'हरी पोथी' की सबसे पहले टिप्पणी किया, जिससे दक्षिण अफ्रीका की वास्तविक स्थिति की जानकारी लोगों को मिल सकी। 'ग्रीन पम्फलेट' में गांधीजी ने जो चित्रण किया था उसका समीक्षात्मक स्वरूप 'पायोनियर' तथा 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के अग्रलेख तक में आए। 'पायोनियर' का 'पेपर कटिंग' लंदन पहुँचा, पुन: उसका तोड़-मरोड़ स्वरूप लंदन की न्यूज ऐजंसी 'रायटर' ने नेटाल के सभी समाचार पत्रों को भेजा और वह समाचार प्रमुखता से छपा।

१४ सितंबर १८९६, भारत में छपी एक पुस्तिका में कहा गया है कि नेटाल में भारतीयों को लूटा जाता है, उन पर हमले किए जाते हैं, और उनके साथ जानवरों जैसा बर्ताव होता है, जिसकी कोई दाद-फरियाद नहीं।' 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने उस पर आपत्ति भी जतायी थी। चूँकि गांधी ने बिना अतिश्योक्ति और बिना विकृति के साफ-साफ बात उजागर किया था जबकि 'रायटर' की पत्रकारिता नीति के कारण नेटाल में बवंडर मच गया। परिणाम यह हुआ कि गांधी को १३ जनवरी १८९७ को पुन: अफ्रीका पहुंचने पर गोरे-अंग्रेजों का कोपभाजन बनना पड़ा। 'अखबार में यह सब तूने ही लिखा था न?' इस क्रोध पूर्ण शब्दों के साथ गांधी पर पैरों से प्रहार भी किया गया था। गांधी कुछ न बोले थे। एक अंग्रेज महिला ने उन्हें सुरक्षित स्थान पर ले गई। गांधी अपनी अभिव्यक्ति की इस दूसरी पहल पर प्रसन्न थे, उन्हें अपनी लड़ाई का हथियार दमदार मालूम होने लगा था। विपक्षी की तिलमिलाहट में अभिव्यक्ति की अपनी छटपटाहट का साक्षात्कार कर गांधी ने अपने लेखन और प्रकाशन की विधा पत्रकारिता को और जीवंत बनाने की ठान ली।

'ग्रीन पम्फलैट' को समाचार-पत्रों से खूब सहयोग मिला, जिसमें मद्रास का 'हिंदू' (The Hindu) प्रमुख है। 'मद्रास स्टैंडर्ड' (Madras Standard) के संपादक जी.पी. पिल्ले तो गांधी जी से संपादकीय सलाह भी लेते रहे। 'हिंदू' के संपादक जी. सुब्रह्मण्यम गांधीजी की पत्रकारिता के कायल हो गए थे। कलकत्ता के 'स्टेट्समैन' (The Statesman) तथा 'इंग्लिशमैन' (Englishman) चूँकि अंग्रेज मालिकानों का था इसलिए 'ग्रीन पैम्फलेट' की उतनी व्याख्या न कर सके, परंतु गांधी जी की पत्रकारिता में सत्यपरायणता तथा अतिशयोक्ति हीन नीति के कारण 'इंगलिशमैन' के संपादक मि. सांडर्स इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपना अग्रलेख 'अफ्रीकी भारतीय' उन्हें संपादित करने को दे दिया। कलकत्ता में 'डेली टेलिग्राफ' के प्रतिनिधि मि. एलर थार्प ने उनकी बड़ी मदद की। बाद में गांधीजी कलकत्ता के 'अमृत बाजार पत्रिका' (Amrit Bazar Patrika) तथा 'बंगवासी' (Bangabasi) के संपर्क में आए। तात्पर्य यह कि अपनी छोटी यात्रा के दौरान गांधी जी भारत में रातों-रात पत्रकारिता जगत में छा गए। अफ्रीका में जोहान्सबर्ग का प्रमुख पत्र 'दि स्टार' (The Star), नटाल का 'नटाल मरकरी' ने गांधी की नीतिगत तथा शब्द-संयमित पत्रकारिता का लोहा तो मान ही चुके थे, भारत में भी उसका प्रभाव और प्रवेग पूर्ण हुआ। 'स्टेट्समैन तथा 'इंगलिशमैन' अफ्रीकी भारतीयों की स्थिति की जानकारी गांधी जी के पत्रों से लिया करते

थे। यह सब उनकी 'हरी पोथी' की पत्रकारिता का जीवंत उदाहरण बना, जिसने उनकी पत्रकारिता की धार को तेज कर अभिव्यक्ति की अवधारणा को और जुझारू तथा संघर्षशील बना दिया। गांधी जी की अभिव्यक्ति के इन दो पड़ावों 'वेजीटेरियन' (१८९१) तथा 'ग्रीन पम्फलेट' (१८९६) ने उनकी रचनात्मक तथा संघर्षात्मक पत्रकारिता को अग्रसर करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अभिव्यक्ति की तीसरी पहल : बोअर युद्ध (Boer War) १८९९– अभिव्यक्ति की इस रचनात्मक और संघर्षात्मक माध्यम में एक और पड़ाव गांधी के जीवन में आया, वह था बोहर–युद्ध (Boer war)। अक्टूबर १८९९ का वह समय गांधीजी की पत्रकारिता की एक युगांतकारी घटना थी, उनकी स्वतंत्र–पत्रकारिता की ऐतिहासिक घटना थी। युद्ध के मैदान में जाकर आँखों देखा और अपने सहयोगियों के साथ हताहत सैनिकों की सेवा तथा उनकी स्थितियों का सही आंकलन जब 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में छपा तो गांधी एक युद्ध–संवाददाता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। युद्ध–स्थल की पत्रकारिता कोई साधारण पत्रकारिता का उदाहरण नहीं होता। उस समय 'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक मि. विअर स्टेंट (Mr. Vere Stent) ने गांधी के युद्ध–स्थल के चित्र तथा रिपोर्टिंग जब प्रकाशित की तो उस युद्ध में 'युद्ध–संवाददाता' के रूप में गए 'मॉर्निंग पोस्ट' के संवाददाता मि. चर्चिल (Mr. W. Churchil) भी चकित रह गए, गांधी की अभिव्यक्ति को देखकर। युद्ध–संवाददाता के रूप में अपनी सेवा और समाचार संकलन की कथा को जिस रूप में गांधी जी ने प्रस्तुत किया उसकी भूरी–भूरी प्रशंसा प्रचुरमात्रा में वहाँ के स्थानीय पत्रों ने किया। उन्होंने युद्ध–कथा की रिपोर्टिंग संवेदनशील मानवीयता की भूमि पर जगाकर वर्णानात्मक पत्रकारिता की नीरसता को तोड़ दिया। अर्थात युद्ध पत्रकारिता की संवेदनशीलता को जगाकर गांधी ने अभिव्यक्ति माध्यम को एक नया आयाम दिया। संभवत: इसीलिए 'कैपटाइम्स' अखबार ने गांधी के विषय में लिखा था, ''भारतीय जहाँ भी जाता है, काफी अच्छा और उपयोगी काम करता है।' इस तरह की नीतिगत और सदगुणी पत्रकारिता की मशाल गांधी ने युद्ध–पत्रकारिता में जगा दी। भारत में ऐसी पत्रकारिता का उदाहरण बंगलादेश के युद्ध विषयक डॉ. धर्मवीर भारती द्वारा की गई रिपोर्टिंग 'युद्ध–यात्रा' में मिलती है जो भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में युद्ध पत्रकारिता के लिए महत्वपूर्ण मोड़ बना। यह गांधी की पत्रकारिता की एक संवेदनशील अभिव्यक्ति है जो मूल्यापेक्षी भाव जागृत करती है।

इस तरह गांधी की पत्रकारिता ने उनके अंदर एक अटल विश्वास खड़ा कर दिया और शस्त्रहीन लड़ाई के लिए आत्मिक–बल दे दिया। पत्रकारिता के माध्यम से वे अपनी समर की तैयारी में जुटने की कोशिश करते हुए उसी में संधान करते हैं। अत: बोअर–युद्ध की अभिव्यक्ति गांधी की अभिव्यक्ति की तीसरी पहल कही जा सकती है। यहाँ तक आते–आते गांधी समाचार–पत्र के अंत: और बाह्य तकनीकी तथा प्रभावों से परिपूर्ण हो चुके थे और यही सफलता का उत्साह उन्हें अपना पत्र निकालने की परिकल्पना के लिए प्रोत्साहित करने लगा। अभिव्यक्ति की अवधारणा अपनी पराकाष्ठा (Climax) पर पहुँच चुकी थी, जहाँ कुछ फलित होना था, चूँकि अभी लड़ाई शेष थी।

बोअर–युद्ध के बाद गांधी १९०२ में भारत, एक वर्ष की शर्त पर लौटते हैं, यह शर्त थी कि अगर अफ्रीकी भारतीयों को जरूरत महसूस हुई तो पुन: अफ्रीका लौटना होगा। हुआ भी वही। यद्यपि दक्षिण अफ्रीका की राजनीतिक परिस्थितियों में सुधार होने लगा था तथापि गांधी को अपनी कौम की आवश्यकतानुसार पुन: १९०२ में डरबन की यात्रा करनी पड़ी। गांधी जी की यह तीसरी अफ्रीकी यात्रा थी, यह यात्रा सिर्फ ६ महीने की थी, परंतु लौटने में एक जोजन लग गया यानी बारह वर्ष। चूँकि गांधी की अवधारणा का अभी प्रस्फुटन बाकी जो रह गया था। अभी

रंग–भेद की नीति का खात्मा नहीं हुआ था, भारतीय विरोधी नीतियाँ ज्यों–की–त्यों थीं, स्वरूप कुछ जरूर बदला था।

इंडियन ओपीनियन (Indian Opinion) की अवधारणा : १९०३ गांधी की यह तीसरी यात्रा उसके जीवन–परिवर्तन और गंभीर विचारों का आवर्तन थी। 'दी क्रिटिक' (The Critic) के उपसंपादक मि. पोलक (Mr. Polak), जो गांधी के अभिन्न पत्रकार मित्र थे, उन्होंने रस्किन (Ruskin) की पुस्तक 'अंटु दिस लास्ट' (Unto This Last) पढ़ने को दिया। यह किताब क्या थी, गांधी जी में प्रत्यावर्तन का प्रवाह ला दिया। वह जमाना माइक्रोफोन, रेडियो, टीवी का नहीं था। संचरित माध्यम सीमित थे। विचारों को कैसे सुदूर संचार किया जाए, इसकी बेचैनी गांधी के रग–रग में थी, अत: अपने विचार, दक्षिण अफ्रीका का मानवीय अत्याचार तथा परिवर्तन का आकार कैसे संपूर्ण अफ्रीका तथा संपूर्ण विश्व में संचरित हो, इसके लिए गांधी का पत्रकार मन अपनी व्यवस्था द्वारा प्रकाशित पत्र की ओर भागने लगा। पत्र और पत्रकारिता का कार्य, अनुभव तथा प्रभाव और प्रवाह गांधी जी के जीवन में स्पष्ट हो चुका था। अपने प्रमुख पत्रकार मित्रों तथा महत्वपूर्ण संपादकों के साथ काम करने का अनुभव उन्हें संपूर्ण रूप से एक पत्रकार बना चुका था। मई १८९४ में स्थापित नेटाल–इंडियन–काँग्रेस को भी अपनी आवाज बुलंद करने के लिए कोई माध्यम नहीं था। अत: 'इंडियन ओपीनियन' Indian Opinion की अवधारणा परिस्थितिजन्य थी और अखबार गांधी के लिए हथियार का स्वरूप धारण कर लिए थे, गुलामी, स्वतंत्रता और सह–अस्तित्व पर प्रकाश डालते हुए सफल हुए थे। उन्होंने स्वीकारा भी– ''मेरा यह ख्याल है कि ऐसी कोई भी लड़ाई जिसका आधार आत्मबल हो, अखबार की सहायता के बिना नहीं चल सकती। मुझे भरोसा हो गया है कि अहिंसक उपायों से सत्य की विजय के लिए अखबार एक बहुत ही महत्वपूर्ण और अनिवार्य साधन है।'' कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रकारिता गांधी जी के लिए अहिंसक उपायों से सत्य की विजय के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई का एक सशक्त हथियार का स्वरूप था, जिसकी बदौलत वे अफ्रीका में अपनी सत्याग्रह की लड़ाई में सफल होने के बाद भारत में भी सफल हुए। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में बंबई के अवकाश प्राप्त स्कूल मास्टर श्री मदनजीत व्यावहारिक ने डरबन में द इंटरनेशनल प्रीटिंग प्रेस (The International Printing Press) की स्थापना १८९८ में ११३, ग्रे स्ट्रीट में किया था, जहाँ से पम्फलेट, विवरण आदि छपा करते थे। गांधी जी को 'इंडियन ओपीनियन' का विचार साकार होता दिखाई दिया। उन्होंने मदनजीत भाई को एक साप्ताहिक–अखबार निकालने की सलाह दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि ४ जून १९०३ को 'इंडियन ओपीनियन' का पहला अंक एक साथ चार भाषाओं अंग्रेजी, हिंदी गुजराती तथा तमिल में प्रकाशित हुआ। भाषाई प्रेम का यह पहला स्वरूप गांधी की पत्रकारिता में पूर्णतया उभरकर आया। शनिवार को निकलने वाला यह पत्र छह कॉलम में प्रकाशित होता था– चार पृष्ठ अंग्रेजी, दो पृष्ठ गुजराती, दो पृष्ठ हिंदी तथा दो पृष्ठ तमिल। प्रारंभ में संपादक के रूप में कहीं भी गांधी का नाम नहीं जाता था, परंतु संपादकीय तथा अन्य महत्वपूर्ण स्तंभ गांधी द्वारा प्रणीत होते थे। महत्वपूर्ण संपादकीय स्तंभ 'आवरसेल्ब्स' (Ourselves) गांधी जी की संयत, सौम्य और सरल भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण है। गौरतलब बात यह है कि हिंदी संस्करण में भी अंग्रेजी का पूर्ण विराम का प्रयोग गांधी जी की पत्रकारिता में नया प्रयोग था। भारत में प्रथमत: ऐसा प्रयोग सत्तर के दशक में डॉ. धर्मवीर भारती द्वारा संपादित 'धर्मयुग' ने किया। आज यह राजभाषा विभाग भारत सरकार द्वारा स्वीकृत है।

'इंडियन ओपीनियन' के प्रथम अंक में गांधी जी ने पत्र प्रकाशन का प्रयोजन स्पष्ट किया था– ''भारतीय लोगों पर हुए अत्याचार को प्रदर्शित करना तथा विचारों का प्रसार करना इसका पहला उद्देश्य है, जिससे लोगों में

सत्यनिष्ठा जागृत हो सके।'' यह जागरण ही गांधी जी का उद्देश्य था, क्योंकि लोकमत को जगाने के लिए अखबार से बढ़कर दूसरा कोई संसाधन उपयुक्त नहीं था। ''खबर देने में खबर का सहारा लो; और खबर पर अपने ख्याल पेश करते हुए मन में किसी तरह का मलाल मत रखो।'' प्रतिष्ठित पत्रकार विल्हैम स्टीड के ये शब्द गांधी की पत्रकारिता का 'ब्रीद वाक्य' बन गए थे। इसी भाव का परिपालन 'इंडियन ओपोनियन' में होता रहा। यह पत्र पूरी मानवजाति की रक्षा, हित तथा सम्मान की लड़ाई में सर्वप्रथम शस्त्र का काम करने लगा। गांधीजी का आत्मबल तथा विश्वास और बुलंद होने लगा। भारतीयों पर होने वाले निहित अत्याचारों का खुलासा 'इंडियन ओपीनियन' करने लगा। और यही वह काल था जब सर्वोदय तथा सत्याग्रह संबंधी लेख गांधी जी ने स्वयं तथा दूसरों से लिखवाकर सत्याग्रह का सूत्रपात किया। चूँकि उनका मूल मंत्र था अनाक्रामक प्रतिशोध। पत्र की भाषा-नीति तथा समाचार-नीति के अन्य पत्र कायल हो गए थे। 'इंडियन ओपीनियन' के होने से हमें अनेक सुविधाएं प्राप्त हुई, कौम को आसानी से सत्याग्रह की शिक्षा दी जा सकी, और दुनिया में जहाँ कहीं भी भारतीय रहते थे वहाँ सत्याग्रह-संबंधी घटनाओं के समाचार फैलाए जा सके। यह सब अन्य किसी साधन से शायद संभव न होता। इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सत्याग्रह की लड़ाई-लड़ने के साधनों में 'इंडियन ओपीनियन' भी एक अत्यंत उपयोगी और प्रबल साधन था। इस तरह लोकमत बनाने की भूमिका में 'इंडियन ओपीनियन' ने प्रमुख रूप से काम किया। मानव को उत्तम मानव बनाने तथा सत्याग्रह के लिए तैयार करने में गांधी के पत्र ने उन्हें पूर्ण सफलता की राह दी। मानवता के इस पुजारी की पवित्र पत्रकारिता और सत्यनिष्ठ लेखन के राहगीर की मदद कुछ अंग्रेज पत्रकार भी करने लगे जो मानवीयता के पोषक तथा उदारमना थे। उनमें प्रमुख थे अलबर्ड वेस्ट (Mr. West) जो छापेखाने के कार्य की पूरी जिम्मेदारी रखते थे। मि. हाबर्ड किचिन (Mr. Kitchin) जो मनसुखलाल हीरालाल नाजर की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक 'इंडियन ओपीनियन' के संपादक के रूप में कार्य किया करते थे। 'द क्रिटिक' के सह-संपादक मि. पोलक (Mr. Polak) अपने विचार स्वतंत्र रूप से प्रगट करने की इच्छा से 'इंडियन ओपीनियन' से जुड़ गए थे। अपनी स्पष्ट, सत्य और बेबाक टिप्पणी की वजह से 'इंडियन ओपीनियन' ने विज्ञापन लेना बंद कर दिया था, चूँकि विज्ञापन छापने में सत्य का पालन संभव नहीं था। विज्ञापन सत्य की कसौटी पर खरे उतरने में सक्षम नहीं होते थे। फलत: गांधी जी को पत्र चलाने में आर्थिक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा।

१९०४ में रस्किन की पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' का प्रभाव गांधी जी के संपूर्ण व्यक्तित्व और विचार को परिवर्तित कर चुका था। अक्तूबर १९०४ में मदनजीत भाई भारत चले आए थे। परितर्वन का यही वह समय था जब गांधी गाँव की ओर लौटकर कुछ करना चाहते थे, क्योंकि पत्रकारिता भी उनके लिए सेवा का भाव ग्रहण कर चुकी थी। मनुष्यता के मर्म को पकड़ चुकी थी। परिणामस्वरूप डरबन शहर से १४ मील दूर तथा फिनिक्स रेलवे स्टेशन से ढाई मील दूर बीस एकड़ की जमीन पर फिनिक्स आश्रम की स्थापना हुई। तत्पश्चात 'इंडियन ओपीनियन' डरबन के बजाय फिनिक्स से प्रकाशित होने लगा, वहाँ से प्रकाशित 'इंडियन ओपीनियन' का पहला अंक २४ दिसंबर १९०४ को प्रकाश में आया। इसे ही लेकर मि. जी. हेन्डरिक (Mr. George Hendrik) ने 'इंडियन ओपीनियन' के प्रकाशन वर्ष १९०३ या १९०४ का द्वंद्व विकसित किया है, चूँकि गांधीजी अपनी आत्मकथा में स्मरण के भ्रमवश १९०४ ही की चर्चा कर पाए हैं, परंतु सही प्रकाशन वर्ष १९०३ ही है। १९०८ तक 'इंडियन ओपीनियन' छह कॉलमों में और चार भाषाओं में प्रकाशित होता रहा। १९०९ से छह कॉलम की बजाय तीन कॉलम का 'इंडियन ओपीनियन' अंग्रेजी तथा गुजराती में प्रकाशित होने लगा। तमिल एवं हिंदी अनियमित हो गए तथा शनिवार

के बजाए 'इंडियन ओपीनियन' बुधवार को प्रकाशित होने लगा।

'इंडियन ओपीनियन' गांधी के नेतृत्व में सामाजिक नैतिकता को मजबूत बनाने, सद्भाव तथा सामाजिक न्याय की दिशा में अग्रसरित सत्य से आग्रह के लिए उत्प्रेरित करने लगा। जीवन में नैतिक आचार-विचार का प्रवाह हो तथा समन्वित-व्यक्तित्व विकास का आयाम विकसित हो, इसके लिए 'इंडियन ओपीनियन' सत्याग्रही तैयार करने लगा, क्योंकि यह अस्त्र गांधी जी के लिए सबसे प्रभावशाली अस्त्र था। इस तरह रचनात्मक सत्याग्रह की भूमिका में गांधी जी की पत्रकारिता Printer's Devil के नाम से भी प्रसिद्ध हो गई थी। 'इंडियन ओपीनियन' उनके विचारों, व्यवहारों तथा कार्यान्वयन का माध्यम बन गया था, अत: उसमें कहीं-कोई दोषपूर्ण शब्द, भ्रमपूर्ण समाचार तथा आवेगपूर्ण विचार का प्रकाशन नहीं होता था। समाचार-संरचना तथा संकलन, विचार का अर्थपूर्ण विनिमय एवं शब्दों का संयमपूर्ण प्रयोग गांधी जी को सत्याग्रह का सिपाही बना दिया। अपने लक्ष्य प्राप्ति में वे अग्रसर होते गए। सत्याग्रह-संघर्ष उन्हें सफल होता दिखाई देने लगा, फलस्वरूप उन्होंने फिनिक्स आश्रम को ट्रस्ट का स्वरूप देकर 'पत्रकारिता' को सत्याग्रह-संघर्ष का मार्ग चुन लिया। उन्हें लगने लगा कि 'इंडियन ओपीनियन' की उनकी अवधारणा असफल नहीं होगी, उनकी पत्रकारिता परिवर्तन का पर्याय बनेगी।

सत्याग्रह-संघर्ष: दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह की गंगोत्री बना। सत्य के लिए आग्रह सत्याग्रह का संघर्ष है, यह गांधी जीवन की महागाथा है। सत्य से सत्याग्रह तक का सफर उनके सत्यनिष्ठ प्रवक्ता और संघर्षशील कर्मयोगी का प्रमाण है। १९०४ में अफ्रीका में गांधी के विचारों में जो आमूल परिवर्तन आया, वह उतरोत्तर अपनी पराकाष्ठा की ओर बढ़ता गया। अहिंसा सत्य के बिना निष्क्रिय है तथा सत्य के लिए आग्रह अहिंसा का पालन है। यह सक्रिय, सविनयपूर्ण तथा अपूर्ण के लिए आग्रह से सक्रिय विरोध है। यह विरोध सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में गोरे शासकों द्वारा भारतीयों के विरूद्ध रंग-भेद नीति के कारण उपजा, जब पहली बार डरबन न्यायालय में गांधी को अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने उन्हें पगड़ी उतारने को कहा। जब गांधी को प्रिटोरिया जाते समय मोरित्सबर्ग स्टेशन पर बलपूर्वक उतार दिया, गांधी उस सर्द-रात में स्टेशन पर मूक-आवाक-सा ठिठुरते रहे। उनकी अंतरात्मा काँप उठी। ''या तो लौट जाऊँ या अधिकार के लिए लड़ूँ।'' सत्याग्रह का बीज गांधी जी में उसी रात पड़ गया था। रंगभेद, शोषण, अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने की भावना मन में व्याप्त हो उठी। अन्याय, असत्य, हिंसा, शोषण, कटुता, निरंकुशता के विरुद्ध सत्य और अहिंसा की शक्ति का प्रयोग शुरू हो गया। अहिंसक विरोध का संपादित नाम 'सत्याग्रह' प्रेम से विरोधी को बदलने का अस्त्र बना।

'सत्याग्रह' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग दक्षिण अफ्रीका में 'पंजीकरण कानून-संशोधन' के लिए ट्रांसवाल विधानसभा में गांधी जी ने १९०६ में किया था। इस शब्द का संपादन 'इंडियन ओपीनियन' में एक प्रतियोगिता आयोजित करके किया गया था, क्योंकि 'निष्क्रिय प्रतिरोध' (Passive Resitance) से सत्याग्रह का समन्वय उचित नहीं बैठता था। मगनलाल गांधी ने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया जो सद्+आग्रह अर्थात शुभ के लिए आग्रह परंतु गांधीजी ने उसे सुधार कर सत्य+आग्रह अर्थात सत्य के लिए आग्रह 'सत्याग्रह' शब्द दिया जिसमें 'सत्य' प्रेम का तथा 'आग्रह' शक्ति का पर्याय बना यानी प्रेम की शक्ति से परिवर्तन। यह निष्क्रिय-प्रतिरोध से भिन्न सक्रिय विरोध का अहिंसक प्रतिकार है, जबकि निष्क्रिय-प्रतिरोध दुर्बल का अस्त्र है, इसमें हिंसा की भी भावना नीहित होती है। सत्याग्रह तो नैतिक अस्त्र है जिसका आधार आत्मशक्ति है, आत्मबल है। **स्वयं कष्ट उठाकर विरोधी को अपने आत्मबल का आभास करा देना ही सत्याग्रह का दर्शन है, जिससे विरोधी उस आत्मबल में आत्मीयता का दर्शन कर सके। इसी सत्य का आभास करना ही सत्याग्रह-संघर्ष है अर्थात सत्याग्रह सत्य की निरापद**

खोज है। इस खोज में कांटे भी फूल बन जाते हैं, गांधी जी का ऐसा मानना था।

दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के लिए पंजीयन विधेयक मंजूर होकर १ जुलाई १९०७ को पास हो गया, जो वहाँ के भारतीयों को मिटा देने की प्रक्रिया से कम नहीं था। गांधी जी के नेतृत्व में इस विधेयक का विरोध सत्याग्रह आंदोलन का पहला आंदोलन के रूप में उभरा। किसी भी कीमत पर भारतीयों को इस कानून के तहत झुकने नहीं दिया और इसे 'खूनी कानून' की संज्ञा से विभूषित किया। इस 'खूनी कानून' की चर्चा का मुख्य आधार 'इंडियन ओपीनियन' था जो गांधी जी द्वारा प्रणीत सत्याग्रह आंदोलन का मुख-पत्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ। गांधी जी को दिसंबर १९०७ में जेल भेज दिया गया। उस समय गांधी जी के गोरे पत्रकार मित्र तथा जोहान्सबर्ग के अंग्रेजी ट्रांसवाल लीडर (The Transval Leader) के संपादक कार्टराइट (Cartright) उनसे मिलने गए, साथ में जनरल स्मट्स का मसविदा भी लेते गए, जिसमें काले कानून को रद्द कर देने का आश्वासन था। यह सब कुछ 'इंडियन ओपीनियन' का आग्रह था।

आश्वासन का उल्लंघन जब सामने आया तब गांधी जी आग बबूला हो गए। उन्होंने ऐच्छिक परवानों की होली जलाने की योजना बनाई। इस कार्यान्वयन की रिपोर्टिंग 'डेली मेल' में 'बोस्टर की चाय पार्टी' से तुलना करके की गई। यह एक वीरतापूर्ण विद्रोह था। १९०७ के सत्याग्रह आंदोलन का यह दूसरा पहल और परवान चढ़ा। इस बीच ट्रांसवाल विधान सभा ने 'इमिग्रैंट्स-रेस्ट्रिक्शन-एक्ट' (Immigrants-Resitruction Act) लगाकर ट्रांसवाल प्रवेश पर रोक लगा दिया। यह एक्ट सत्याग्रहियों को और उग्र बना दिया। जेल की सजा भुगतने पड़े। गांधीजी अक्टूबर १९०८ में पुन: जेल गए। जेल उनके भावी जीवन की प्रवर्त्तक शक्ति का स्वरूप बना- ''जेल से लौटने पर हर बार हमें उनमें एक अद्भुत विकास और चारित्रिक प्रगति देखने को मिलती थी, जो निश्चय ही जेल जीवन का परिणाम हुआ करती थी।'' तात्पर्य यह है कि गांधी अपने सत्याग्रह पथ पर और दृढ़ता और प्रवाह का आदर्श बनते गए। जेल, अनेकों तरह की पीड़ाएं तथा देश से निकलने तक की सजा भी सत्याग्रह-आंदोलन को रोक नहीं पाई, इसमें और गति आ गई। गांधी जी गोरों के विश्वासघात से समझ गए कि यह लड़ाई दूर तक जाएगी। ऐसी स्थिति में सत्याग्रहियों के लिए आर्थिक संकट से बचाने के लिए एक जर्मन मित्र मि. केलनबेक (Mr. Kellenback) ने गांधी की मदद की। उनकी मदद से जोहान्सबर्ग से २१ मील दूर ११०० एकड़ जमीन पर टॉलस्टॉय फार्म की स्थापना हुई जिसमें स्वनिर्भरता का सिद्धांत सत्याग्रहियों के लिए उत्साह और प्रेरणा का श्रोत बना। हिम्मत और श्रद्ध टॉलस्टॉय-फार्म में पराकाष्ठा पर पहुँच गई, जिसके बल पर सत्याग्रह की लड़ाई पूरे चार साल तक चलती रही। 'इंडियन ओपीनियन' का दायित्वपूर्ण निर्वाह अपने सारे कार्य-कलापों के साथ गति पकड़ता गया। परिणामस्वरूप २७ मई १९११ को 'इंडियन ओपीनियन' की समझौतापूर्ण घोषणा ने एशियाइयों में जान फूँक दिया। लगा कि अब अफ्रीका की राजनीतिक, न्यायिक तथा सामाजिक स्थिति सुधर गई।

१९१३ प्रारंभ होते ही फिर अफ्रीकी ब्रिटिश सरकार अपने न्याय से मुकरने तथा असमर्थता जताते हुए उत्पीड़न का रास्ता अपनाने लगी। आत्म-सम्मान खोने से अच्छा है अपने को होम कर लेना, यह फैसला कर गांधी जी ने अपना तीसरा तथा दक्षिण अफ्रीका के लिए अंतिम सत्याग्रह-आंदोलन का संचालन करना शुरू किया। इस संघर्ष के दौरान अनेकों तरह के प्रतिबंध तथा उत्पीड़न के कानून लागू कर दिए गए थे। हड़ताल और बहिष्कार का भी जब दमन होने लगा तब गांधी भाई (Gandhi Bhai) (अफ्रीका में इस तरह संघर्षरत गांधी को लोग 'गांधी भाई' कहते थे) ने सत्याग्रह-संघर्ष का अपना अंतिम अस्त्र 'हिजरत' का प्रयोग किया। उनके इस 'हिजरत' में

२०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ तथा ५७ बच्चे थे। 'संडे पोस्ट' ने इस हिजरती दल को एक तरह का शंभु मेला की संज्ञा से विभूषित करते हुए रिपोर्टिंग किया था। गांधी जी को रास्ते में बोक्सरस्ट (Volksrult) में गिरफ्तार कर लिया गया। हिजरतियों को नेटाल पहुँचाने के लिए बालफोर (Balfour) स्टेशन लाया गया, परंतु कोई भी गांधी भाई के आदेश के बिना ट्रेन में चढ़ने को तैयार नहीं हुआ। बस क्या था– गोरों का लात, घूसा तथा कोड़ों की बरसात होने लगी। जेल में गांधी से पत्थर तुड़वाए जाने लगे। आतंक का नंगा नाच शुरू हो गया। इस बर्बर दमन से भारत सहित अन्य एशियाई देशों में खलबली मच गई। उस समय के वायसराय लार्ड हार्डिज (Lord Hardinge) पर पूरे देश की नाराजगी का असर पड़ा। उसने भी इस निर्ममता की भर्त्सना की। ईसाइयों ने भी खुलकर सत्याग्रहियों की मदद की। सिपाही–विद्रोह के बाद ऐसा देश–व्यापी आंदोलन दूसरा नहीं हुआ, गोखले की भूमिका का प्रभाव पड़ा, फलत: सत्याग्रह–संघर्ष सफल हुआ– तीन पौंड का कर उठा लिया गया; भारतीय पद्धति के विवाहों की वैधता; अधिवासी प्रमाण–पत्र की मंजूरी, जो गांधी की मांग थी, जिसके लिए उन्होंने आग्रह किया था, उनका सत्याग्रह–संघर्ष सफल हुआ और जब गांधीजी को यह विश्वास हो गया कि अब सत्य पर असत्य नहीं चढ़ सकता, १९१४ में ९ जनवरी को भारत लौट आए, चूँकि अब गांधी की जरूरत गोखले भारत में ज्यादा महसूस करने लगे थे।

इस सत्याग्रह–संघर्ष में 'इंडियन ओपीनियन' की भूमिका का प्रभाव भारत में 'यंग इंडिया' 'नवजीवन' तथा 'हरिजन' के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। कुछेक अफ्रीकी अखबार जो गोरी सरकार के पक्ष में भी थे, वह भी सत्याग्रह–संघर्ष की रिपोर्टिंग संक्षिप्त ही सही, करते थे, परंतु 'इंडियन ओपीनियन' तो गांधी जी के अफ्रीकी–संघर्ष का शंखनाद ही था। वह उनके अफ्रीका के जीवन का प्रतिबिंब था, जिसके माध्यम से सत्याग्रह संग्राम सुनियंत्रित तथा शक्तिशाली हुआ। यही कारण था कि यह अखबार उनके सहयोगियों तथा भारतीय व एशियाइयों द्वारा ही नहीं, उनके विरोधियों द्वारा भी बड़े चाव से पढ़ा जाता था। इसी कारण जब सत्याग्रह–संघर्ष अपना उग्र रूप धारण किया तो इसके ग्राहकों की संख्या १५०० से ३५०० तक हो गई तथा पाठकों की संख्या २०००० तक हो गई थी। स्थिति यह हो गई थी कि सत्याग्रह का शिक्षण और संघर्ष 'इंडियन ओपीनियन' ही देता था जो 'निष्क्रिय–प्रतिरोध' की अपेक्षा ज्यादा सम्मानजनक, सक्रिय तथा न्यायपूर्ण था; इसलिए इस अखबार की मांग संघर्ष को जानने, समझने तथा जूझने के लिए आवश्यक हो गई थी। 'इंडियन ओपीनियन' सत्याग्रह की दृष्टि से पत्र तथा प्रेस की नैतिक जिम्मेदारी, अफ्रीका तथा यूरोपियों के लिए नीतिगत–पत्रकारिता (Moral Jurnalism) का नया आयाम दे रहा था, जो उन्हें सचेत, सतर्क तथा सबक सीखा रहा था। संभवत: इसी संघर्ष–दर्शन का स्वरूप उर्दू के शायर अकबर इलाहाबादी ने अपनी शायरी में दिया है–

''खींचो न कमानों को, तलवार निकालो,
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।''

उपसंहार: गांधी जी के जीवन में पत्रकारिता उनके संघर्ष का पर्याय थी, अगर गांधी अभिव्यक्ति की छटपटाहट में लेखन और मुद्रण की विधा के रूप में पत्रकारिता को न अपनाए होते, तो वे एक सामान्य वकील का जीवन व्यतीत कर काल–कवलित हो गए रहते। उन्हें जीवंत और अमर बनाया उनकी पत्रकारिता ने। उनके संपूर्ण जीवन को क्रमश: अगर देखें तो पता चलता है कि पग–पग पर वे पत्रकारिता को अपनी बात कहने, समस्या सुलझाने, अपने को जगे रखने तथा जनमत को जगाने के लिए माध्यम बनाते चले गए हैं। उनके संघर्षों की सफलता में उनकी पत्रकारिता ही महत्वपूर्ण घटक है। उन्होंने तो यहाँ तक स्वीकारा है कि 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'हरिजन' तथा 'इंडियन ओपनीयन' मेरे जीवन के अंश का निचोड़ हैं, इसके बिना सत्याग्रह की लड़ाई लड़ना मेरे लिए असंभव था। जीवन में अपरिग्रह

और लेखन में अपरिग्रह (संयम) तथा संपादन में 'देखन में छोटन लगे घाव करे गंभीर' का जीवन में कितना योगदान है, यह १९१४ (१९०३-१९१४) तक के 'इंडियन ओपीनियन' के अंकों में देखा जा सकता है। उनके संघर्ष का उद्देश्य था- सारी मानवजाति का कल्याण, क्योंकि उनका सारा दर्शन ही मानवमूल्यापेक्षी था। इन मूल्यों के लिए 'इंडियन ओपीनियन' ने भारतीयों को अपने अधिकारों के लिए जागरूक किया। जगने और जगे रहने का उद्घोष गांधीजी की पत्रकारिता का पर्याय था। पत्रों का यही जागरण भारत की स्वतंत्रता का स्वर्णिम पथ निर्मित किया, जिसके महानायक गांधी भाई ही थे, जो भारत के महात्मा, राष्ट्रपिता तथा बापू की संज्ञा से विभूषित हुए। दक्षिण अफ्रीका से लेकर भारत तक अपनी पत्रकारिता के माध्यम से सत्याग्रह-संघर्ष के द्वारा सत्य और अहिंसा का परचम लहराने में गांधी जी को जो सफलता मिली, वह आज विश्व के लिए 'मिथक' बन गया है। अभिव्यक्ति के संघर्ष में अहिंसात्मक पत्रकारिता (Non-Violent Jurnalism) की ऐसी मिशाल शायद ही कहीं मिले। अस्तु, दक्षिण अफ्रीका ने सत्याग्रह-संघर्ष के द्वारा गांधी के व्यक्तित्व व विचारों में ही केवल परिवर्तन नहीं किया, बल्कि उन्हें एक चिंतनशील, नीतिगत पत्रकार के रूप में निर्मित किया; तभी तो उन्हें Printer's Devil भी कहा गया। आज गांधी चिंतन में उनके 'पत्रकार-चिंतन' को ढूंढने की आवश्यकता है, ताकि अभिव्यक्ति का अनर्गल प्रलाप स्वत: बंद हो तथा प्रिंट मीडिया में मूल्यों की स्थापना हो, जिससे हर व्यक्ति का सत्याग्रह-संघर्ष सफल हो।

संपर्क: प्राध्यापक (संस्कृति विद्यापीठ)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), मो. 9420063304

नोवेल कोरोना वायरस का संस्कृति एवं संचार पर प्रभाव

डॉ. रेणु सिंह

प्रस्तावना: इतिहास ने पहली बार पूरे विश्व को एक महामारी से एक साथ एकजुट होकर जंग लड़ते देखा है। भारत ने इस महामारी की गंभीरता को बखूबी भाँप लिया था और जरूरी निर्णय ले लिए थे। भारत को पूरी तरह से तालाबंद कर दिया गया। यह एक जनता की भलाई के लिए उठाया हुआ कदम था, इसलिए इसे जनता कर्फ्यू का भी नाम दिया गया। भारत के निवासियों ने इस बात को समझा और बहुत गंभीरता से इस बीमारी को रोकने के लिए प्रयास भी किए। भारत के १३० करोड़ की आबादी को प्रधानमंत्री के एक आह्वान पर एक ऐतिहासिक कदम के रूप में देश को तालाबंद करना बेहद मुश्किल काम था, परंतु देश की जनता ने प्रशासन का पूरा साथ दिया और देशवासी अपने घरों में अपने परिवार के साथ रहे। सभी महानगरों में यह समस्या दिखी कि गरीब एवं दिहाड़ी मजदूर सड़कों पर वाहन एवं ट्रेन की अनुपलब्धता के कारण पैदल ही अपने घरों की ओर प्रस्थान करने लगे। सरकार द्वारा इन लोगों को स्कूलों एवं अन्य सराय में ठहराया गया एवं उनके भोजन की व्यवस्था भी की गई। पूरा देश इस संकट की घड़ी में तालाबंद होकर अपने घरों में सिमट गया। लोग अब आमने-सामने होकर बात करने के बजाय मोबाइल एवं ह्वाट्सऐप पर सगे संबंधियों का हाल चाल लेने लगे। लोगों को स्वयं, अपने परिवार के साथ-साथ पूरे समुदाय की चिंता भी सताने लगी, क्यूँकि उन्हें समझ आ गया था कि कोरोना की महामारी से खुद को बचाना है तो पूरे समुदाय को सुरक्षित रखना होगा। भारत में पूजा-पाठ करने, सामूहिक नमाज पढ़ने, धार्मिक यात्रा करने इत्यादि पर भी रोक लगा दी गई। भारतीयों की संस्कृति की एक अभिन्न पहचान है यहाँ का धर्म एवं पूजा-पाठ, परंतु लोगों ने नवरात्रि के पावन-पर्व को अपने घरों में शांतिप्रिय ढंग से मनाया। भारत में दिल्ली के निजामुद्दीन में तबलीगी जमात के आयोजन ने लोगों में चिंता की एक रेखा खींच दी थी। कोरोना संक्रमण की चिंताओं के कारण सामाजिक दूरी बनाना तबलीगी जमात के लिए एक तरीका का सांस्कृतिक सदमा था, जिसका वे विरोध करते नजर आए तथा अपनी नासमझी से पूरे देश की कोरोना से जंग को और मुश्किल बना दिया है। अत: इस शोध पत्र द्वारा हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कोरोना संक्रमण के भय ने किस प्रकार हमारे संचार के स्वरूप को बदला है एवं इसका हमारी संस्कृति पर कितना दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

कोरोना वायरस संक्रमण: कोरोना वायरस का संबंध वायरस के ऐसे परिवार से है, जिसके संक्रमण से जुकाम से लेकर सांस लेने में तकलीफ जैसी समस्या हो सकती है। इस वायरस को पहले कभी नहीं देखा गया है। इस वायरस का संक्रमण दिसंबर में चीन के वुहान में शुरू हुआ था। डब्ल्यूएचओ के मुताबिक बुखार, खांसी, सांस लेने में तकलीफ इसके लक्षण हैं। अब तक इस वायरस को फैलने से रोकने वाला कोई टीका नहीं बना है। इसके लक्षण फ्लू से मिलते-जुलते हैं। संक्रमण के फलस्वरूप बुखार, जुकाम, सांस लेने में तकलीफ, नाक बहना और गले में खराश जैसी समस्या उत्पन्न होती है। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। इसलिए इसे लेकर बहुत सावधानी बरती जा रही है। कुछ मामलों में कोरोना वायरस घातक भी हो सकता है। खास तौर पर अधिक उम्र के लोग और जिन्हें पहले से अस्थमा, मधुमेह और दिल की बीमारी है। स्वास्थ्य मंत्रालय ने कोरोना वायरस से बचने के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं। इनके मुताबिक, हाथों को साबुन से धोना चाहिए। अल्कोहल आधारित हैंड-रब का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। खांसते और छींकते समय नाक और मुँह को रूमाल या मास्क से ढककर रखें।

सामाजिक दूरी: हमारी संस्कृति में जहाँ अपनापन, आत्मीयता इत्यादि की अभिव्यक्ति गले लगाने, हाथ मिलाने इत्यादि से व्यक्त की जाती है, वहीं आज सामाजिक दूरी बनाए रखना, मनुष्य जाति के लिए आवश्यकता बन गई है।

अपने एवं अपने परिवार एवं समाज को कोरोना संकट से बचाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि लोग एक-दूसरे के संपर्क में ना आएं तथा आपसी दूरी बनाए रखें। समाज में व्याप्त बीमारियों एवं उनके रोकथाम के उपायों ने हमेशा से हमारे जीवन जीने के तरीके को नए ढंग से परिभाषित किया है। जब एड्स जैसी बीमारी से पूरा विश्व परेशान हुआ, तब अपने साथी के प्रति ईमानदार होने की बात को समाज में बढ़ावा दिया गया। अमेरिका एवं यूरोप के देशों की संस्कृति एकल विवाह, एकल साथी के साथ संबंध जैसे मूल्यों पर विश्वास नहीं रखते थे इसलिए एड्स ने एक महामारी का रूप लिया। परंतु भारत की संस्कृति में एड्स बहुत सीमित स्थानों जैसे देह व्यापार इत्यादि से जुड़े स्थानों पर ज्यादा फैला, परंतु जल्द ही जागरूकता अभियान इत्यादि ने इस बीमारी को काफी हद तक सीमित कर दिया। एड्स ने भी लोगों के व्यवहार में बदलाव लाने का कार्य किया। चूँकि ज्यादातर सभी धर्म-विवाह एवं प्रेम इत्यादि में शुद्धता एवं सच्चाई की बात करते हैं और अनेक विवाह या अनेक साथी के साथ प्रेम संबंध की बात को बढ़ावा नहीं देते हैं, इसलिए इसे धर्म या संस्कृति से ज्यादा नहीं जोड़ा गया। परंतु खुलेपन एवं नई सोच के नाम पर खुले संभोग एवं बदलते साथी की संकल्पना एवं व्यवहार को बढ़ावा दिया गया था, परंतु जल्द ही विश्व ने इसके खतरों को समझना शुरू किया। इसी प्रकार कोरोना वायरस ने कुछ समाज एवं धर्म में व्याप्त बंधुत्व एवं भाई चारे की अभिव्यक्ति के संकेत जैसे गले लगना, हाथ चूमना इत्यादि पर रोक लगाई है।

सांस्कृतिक सदमा: सांस्कृतिक सदमा उस अनुभव को कहते हैं जब कोई विदेशी संस्कृति को अपनाते वक्त भय एवं उत्तेजना के शिकार होते हैं तथा नई संस्कृति को अपनाने के साथ निराशा एवं उदासीनता का सामना करते हैं। नोलेज गैप सिद्धांत के अनुसार स्वास्थ्य संचार का प्रभाव उन व्यक्तियों पर सबसे पहले पड़ता है जो पढ़े-लिखे होते हैं तथा जिनका मीडिया के संदेशों की व्याख्या करने का पूर्व अनुभव होता है। परंतु जो गरीब एवं मजदूर वर्ग है जिसकी शिक्षा न्यूनतम स्तर की हो या जिसका मीडिया अनुभव कम है, वे मीडिया के संदेशों को जल्दी से ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपने ओपिनियन लीडर की बात ज्यादा जल्दी मानते है, क्यूँकि ओपिनियन लीडर ऐसे लोगों से उनकी भाषा में बात करते हैं। ओपिनियन लीडर ऐसे लोगों के समाज समूह या संस्कृति से जुड़े होते हैं इसलिए ओपिनीयन लीडर पर इन लोगों का अधिक विश्वास होता है। कोरोना संकट के दौरान यह देखा गया कि ओपिनियन लीडर या स्थानीय नेताओं के द्वारा दिए गए सकारात्मक या नकारात्मक संदेशों का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

पश्चिमी देशों में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से हाथ मिलाकर मिलता है तथा दो दोस्त गले मिलकर या गालों पर चुंबन करके मिलते हैं। वहीं खाड़ी के देशों में एक दूसरे से मिलने का अर्थ है गले लगाना और हाथ चूमना। भारत में लोग आत्मीयता से सर झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते के साथ एक दूसरे से मिलते हैं। परंतु जिस सांस्कृतिक समूह की पहचान गले मिलने एवं हाथ चूमने से जुड़ा है, उनके लिए कोरोना के खतरे उनकी संस्कृति एवं उनके धर्म पर चोट पहुँचाने जैसा है। जो लोग पढ़े लिखे हैं वे समझते हैं कि कोरोना एक बीमारी है जिसका संक्रमण नाक, मुँह या आँख से हो सकता है, इसलिए सामाजिक दूरी की आवश्यकता है। परंतु जो लोग कम पढ़े लिखे हैं वे इस बीमारी के खतरे से अनभिज्ञ होकर उनसे लड़ने के बजाय एक अदृश्य शक्ति भगवान या खुदा पर भरोसा करने लगते हैं। उन्हें लगता है कि उनका भगवान या खुदा हीं उन्हें हर मुसीबत, रोग या बीमारियों से बचाता है। पर सचाई तो यह है कि मनुष्य तभी किसी रोग से लड़ पाता है जब उसका खान-पान सही हो और उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है। इस तरह से इस बीमारी ने सदियों से चली आ रही लोगों की एक-दूसरे से मिलने एवं आपसी प्रेम-सौहाद्र दिखाने के उनके सांस्कृतिक पहचान पर सीधा वार किया है, इसलिए यह पूरी घटना एक सांस्कृतिक सदमे के रूप

में देखी जा सकती है। भारत के गाँव में जहाँ छुआ–छूत जैसी प्रथाएँ व्याप्त हैं, वहाँ से कई बार इस बीमारी को भी छुआछूत के समान मानकर कोरोना संक्रमित रोगियों के साथ भेदभाव/घृणा का व्यवहार करते देखा गया। परंतु जल्द ही लोगों में मीडिया अभियान, स्वास्थ्य संचार कर्मियों, गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाए जन जागृति अभियान के द्वारा लोगों को इस बीमारी के बारे में शिक्षित किया गया एवं उससे बचाव के उपाय की जानकारी दी गई।

भारतीय संस्कृति एवं कोरोना संक्रमण

भारत में पहला कोरोना मरीज केरल में मिला था, जो खाड़ी के देश से संक्रमित हुआ था, परंतु केरल ने बहुत अच्छी तरह से कोरोना संक्रमित लोगों की संख्या पर नियंत्रण रखा। केरल में साक्षरता दर अधिक है और यहाँ के निवासी सजग एवं शिक्षित हैं। इसके अतिरिक्त केरल में कोरोना संक्रमित लोगों की मृत्यु दर बहुत कम है यानी केरल के लोगों की स्वस्थ्य एवं प्राकृतिक जीवन शैली की वजह से कोरोना से मजबूती से लड़ाई लड़ रहे हैं। केरल के निवासी आज भी अपने पारंपरिक भोजन शैली को अपनाते हैं। उनके भोजन में मसालों, नारियल के उत्पाद जैसे तेल, पानी, दूध इत्यादि के सेवन की परंपरा उनके जीवन शैली का हिस्सा है। केरल में आधुनिक अस्पतालों के साथ ही आयुर्वेद की परंपरा को आज भी घर–घर में जीवित रखा है। केरलवासी आयुर्वेद की परंपरा के अनुसार अपना जीवन जीते हैं। यह सब उनके रोग प्रतिरोधक क्षमता को प्राकृतिक रूप से विकसित करता है। इसी तरह भारत में कोविड १९ से ठीक होने वाले मरीजों की संख्या पंजाब, उत्तर प्रदेश या बिहार जैसे कृषि प्रधान राज्य में भी अच्छी है। यहाँ के लोग अपने खेतों एवं उसके उत्पादों पर ज्यादा निर्भर रहते हैं। भारत के महानगरों में पाया गया है कि कोरोना संक्रमित लोगों की मृत्यु दर अधिक है। महानगर में रहने वालों को शुद्ध एवं प्राकृतिक आहार मिलना मुश्किल होता है। इसलिए उन्हें स्वस्थ्य, जैविक एवं प्राकृतिक आहार लेने की आदत कम होती है, वे कृतिम तथा उद्योगों में बने उत्पादों के आश्रित हो गए हैं, जिसमें मिलावट इत्यादि की आशंका ज्यादा होती है।

कोरोना ने हमें अपने भारत के मूल जीवन शैली की तरफ वापस देखने को प्रेरित किया है। भारत के गाँव में आज भी लोग अपने खाने–पीने की आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन अपने घरों में करते हैं– जैसे धान, गेहूं, फल, सब्जियाँ इत्यादि, इसलिए वे ताजा एवं प्राकृतिक आहार पर जीवन यापन करते हैं। भारतीय कृषि परंपरा में घर के पशुओं के मलमूत्र या घर के बचे खान–पान के उत्पाद या कृषि अवशेष का उर्वरक के रूप में प्रयोग करते थे। प्राकृतिक उर्वरक के प्रयोग से जो कृषि उत्पादन होता था वो जैविक एवं पूर्ण रूप से हानिकारक रसायन मुक्त होता था। इसलिए प्रकृति से ज्यादा नजदीक रहकर गाँव के लोग ज्यादा मेहनती, कर्मठ एवं निरोगी होते थे, परंतु आज गाँव के लोग भी पहले से ज्यादा बाजार निर्मित सामग्री पर निर्भर हो गए हैं।

संचार के बदलते आयाम: इस तालाबंदी के युग में संचार ने अपने आयाम बदले हैं। कोरोना संक्रमण ने संचार के आयाम में बहुत तीव्रगामी बदलाव किए हैं। भारत में १५ मार्च २०२० के बाद अचानक सभी विद्यालय एवं विश्वविद्यालय बंद कर दिए गए। सभी कक्षाएँ ऑनलाइन ली जाने लगी। अचानक से भारत में एक बड़ी जनसंख्या स्मार्ट फोन एवं इंटरनेट का इस्तेमाल करने लगी। नौकरी करने वाले ज्यादातर कर्मचारी घर से काम करने लगे हैं। तालाबंदी ने अचानक से लोगों को इंटरनेट पर सोशल मीडिया के अलावा घर से कार्य, घर से पढ़ाई, आरोग्य सेतु ऐप जैसे कार्यों के लिए अनेक डिजिटल मंचों का प्रयोग करने लगे। कोरोना संक्रमण ने लोगों को संचार एवं संप्रेषण के लिए आभासीय मंचों का प्रयोग करने को और ज्यादा प्रेरित किया है। भारत एक ऐसा देश है, जहाँ आर्थिक असमानता बहुत ज्यादा है। देश में एक तरफ जहाँ अमीर से अमीर लोग रहते हैं, वहीं दूसरी तरफ ऐसे गरीब लोग भी हैं जो अपने एक दिन के खाने की भी व्यवस्था नहीं कर सकते। इसलिए भारत में

ऐसे लोगों की संख्या बहुत ज्यादा है, जो इंटरनेट या स्मार्टफोन का इस्तेमाल नहीं करते हैं। भारत में डिजिटल विभाजन की समस्या अत्यंत गंभीर है। लोग अपने रोजमर्रा की समस्याओं, गरीबी, निरक्षरता इत्यादि से इस प्रकार जुझ रहें हैं कि उन्हें इंटरनेट एवं अन्य संचार के माध्यमों को जानने या समझने के लिए ना पैसा है, ना ही दक्षता और ना ही समय। कोरोना संकट एवं तालाबंदी ने लोगों को एक दूसरे से संवाद करने के लिए आवश्यक रूप से मोबाइल फोन, स्मार्टफोन एवं ऐप का इस्तेमाल करना सिखाया है। लोगों ने एक दूसरे से सामाजिक दूरी बनाते हुए देश दुनिया एवं आसपास का हालचाल लेने के लिए मोबाइल फोन, व्हाट्सऐप इत्यादि का बहुत ज्यादा प्रयोग किया। डिजिटल विभाजन को मुख्यत: दो प्रकारों में बाँटा जाता है– ऐक्सेस प्रयोग एवं यूसेज डिवाइड। भारतीय जनसंख्या की एक बड़ी संख्या स्मार्टफोन का इस्तेमाल तो करती थी, परंतु ज्यादातर सोशल मीडिया का ही प्रयोग करती थी जैसे फेसबुक या व्हाट्सऐप, परंतु लॉकडाउन के समय में आवश्यक रूप से आरोग्य सेतु ऐप, टिकट बुक करना, ई–पास बनाना, कोरोना से जुड़ी देश–दुनिया की खबर लेना इत्यादि कार्यों का प्रयोग किया। विद्यालय एवं विश्वविद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों एवं उनके परिजनों ने शिक्षण मंचों जैसे –गूगल मीट, जूम इत्यादि का प्रयोग करना सीखा है। घर से काम करने वाले कर्मचारियों ने अपने कार्यकाल के काम करने के लिए अनेक नए ऐप का प्रयोग किया। इस तरह से इंटरनेट के अनेक आयामों का जो अब तक उतनी व्यापकता से प्रयोग नहीं किया गया था, होने लगा।

निष्कर्ष: इस तरह यह देखा गया कि भारत एक विकासशील देश होने के बावजूद भी कोरोना जैसी महामारी का बहुत सूझ–बूझ एवं समझदारी से सामना किया। भारत के लिए यह आशंका जताई गई थी कि यहाँ भारी जनसंख्या होने के कारण, यहाँ कोविड १९ पर नियंत्रण पाना नामुमकिन होगा। भारत के लोग कम पढ़े–लिखे एवं गरीब होने के कारण सामाजिक दूरी, हाथों की सफाई इत्यादि स्वास्थ्य नियमों को ना ही समझ पाएँगे, ना ही उसका पालन कर पाएँगे। परंतु आज कोविड १९ संबंधी चेतना झुग्गी झोपड़ियों से लेकर भारत के गाँव–गाँव तक फैली हुई है। आज गाँव वाले स्वयं जागरूक हैं कि गाँव में कौन सा व्यक्ति बाहर शहर से आया है तथा उसे १४ दिन लोगों से संपर्क विच्छेद करना होगा ताकि अगर वो संक्रमित है तो अपना संक्रमण किसी और को ना दे दे। सबसे बड़ी बात यह है कि लोगों ने बड़े ही संयम से कोरोना संक्रमित लोगों से सामाजिक दूरी तो बनाई है परंतु उनका सामाजिक बहिष्कार नहीं किया। भारत के नागरिकों ने इस संकट की घड़ी में स्वेच्छा से अपने आस–पास के इलाकों में रह रहे गरीब बेरोजगार लोगों को भोजन, फल, मास्क इत्यादि आवश्यक वस्तुओं का वितरण किया और उन्हें आपदा में जीवित रखा। कई स्वयं सेवकों को घंटो सड़कों पर भोजन, पानी बोतल एवं फल लिए खड़ा देखा गया ताकि वे उन रास्तों से गुजर रहे प्रवासी मजदूरों को खाना–पानी दे सकें। भारत ने यह दिखा दिया कि उनकी संस्कृति सिर्फ एक–दूसरे से गले मिलने, भोजन करने, त्योहार मनाने से ऊपर संकट के समय एक दूसरे को सहारा देना सिखाती है। हमारी संस्कृति मानव के दु:ख दर्द में एक दूसरे का साथ देने को प्राथमिकता देती है और इसका सीधा प्रमाण इस तालाबंदी में दिखा। जब इस विशाल जनसंख्या वाले देश को, जब देश एवं मानवता के भलाई के लिए रुकने को कहा गया तब सभी अपने–अपने स्थानों पर रुक गए। भारतीय संस्कृति ने मानव कल्याण को हमेशा ऊपर रखा है और प्रकृति का हमेशा सम्मान किया है। अत: भारत अपने संयम, अनुशासन एवं दृढ़ निश्चय से कोरोना के विरुद्ध यह जंग अवश्य जीतेगा और विश्व गुरु का अपना स्थान प्राप्त करेगा।

संपर्क: सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, मो. ९९७५९४३२०९

भारत और लैटिन अमेरिका के चुनाव में मीडिया की भूमिका

डॉ. रवि कुमार

वर्ष २०१३-१४ में पहली बार भारतीय चुनाव मीडिया के व्यापक उपयोग के साथ लड़ा गया था। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने मीडिया के लगभग सभी माध्यमों का उपयोग करने की रणनीति बनाई, जिसके परिणाम स्वरूप दो दशकों के बाद एक ही पार्टी को एक बड़ी जीत और पूर्ण बहुमत मिला। इसके बाद पार्टी ने लगातार इस रणनीति का पालन किया; कई जगह विजय प्राप्त की और पिछले लोकसभा चुनाव की तुलना में कुछ अधिक सीटों के साथ पूर्ण बहुमत के साथ पाँच साल बाद २०१९ का भी चुनाव जीता। अन्य दलों ने भी इस रणनीति का पालन किया लेकिन भाजपा लगभग हर जगह हावी रही।

पिछले दो दशकों में लैटिन अमेरिका के राजनीति और चुनावों में उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया है जैसे- नए समूहों का उदय, हाशिए का राजनीतिक सशक्तीकरण आदि। यह देखा गया है कि सामाजिक जीवन में मीडिया के प्रभाव ने राजनीति और चुनावों में बदलाव लाए। कई लैटिन अमेरिकी देशों में राजनेताओं ने मीडिया को राजनीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण बनाया, जिसके परिणाम स्वरूप नई सरकार की स्थापना हुई। लोगों ने विचारों और विचारधाराओं पर पुनर्विचार किया ।

यह शोध पत्र समीक्षकों की समालोचना करने का प्रयास है कि कैसे राजनेता इस डिजिटल युग में चुनाव जीतने के लिए मीडिया को साधन के रूप में उपयोग करते हैं। यह शोध पत्र भारत के साथ लैटिन अमेरिका के कुछ महत्वपूर्ण देशों जैसे- ब्राजील, अर्जेंटीना, चिली, वेनेजुएला, बोलीविया, इक्वाडोर आदि की राजनीति और चुनावों के बारे में विमर्श करेगा। उपर्युक्त देशों के चुनावों में डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग के प्रमुख परिणामों को देखेंगे। यह देखा गया है कि राजनीति और चुनाव के क्षेत्र में, राजनेताओं ने डिजिटल तरीकों का उपयोग करके आबादी के बीच अपने विचारों और विचारों को समेकित करके अपनी सरकारों को बनाने के लिए मीडिया का सफलतापूर्वक उपयोग किया।

(मुख्य शब्द: भारत, भाजपा, लैटिन अमेरिका, चुनाव, राजनीति, डिजिटल युग, मीडिया, डिजिटल तरीके)

भारत और लैटिन अमेरिका में मीडिया की भूमिका व प्रयोग: २१ वीं सदी के आगमन के साथ भारत और लैटिन अमेरिका की राजनीति और चुनावों में कई नए आयाम देखने को मिलता है। ऐसा कह सकते हैं कि १९९० के दशक में आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन इस नए राजनीतिक रूपों का कारण बना रहा। वैश्वीकरण के प्रभाव के साथ राजनेताओं ने चुनाव जीतने और जनता तक पहुँचने के लिए नए तरीकों और तकनीकों का इस्तेमाल किया। मीडिया लोगों से जुड़ने का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गया। भारत और लैटिन अमेरिका की राजनीति और चुनावों में कई अंतर हैं। दोनों का अलग-अलग विश्लेषण किया जा सकता है। लैटिन अमेरिका में राजनेताओं ने २१ वीं सदी के पहले दशक की शुरुआत में जैसे ब्राजील, अर्जेंटीना आदि में मीडिया और डिजिटल तरीकों का इस्तेमाल किया, जबकि भारत में २०१४ के लोकसभा चुनाव में मीडिया और डिजिटल माध्यमों का बड़ा प्रयोग देखा गया। २०१४ के चुनाव में,

भारतीय जनता पार्टी ने चुनाव जीतने के लिए डिजिटल तरीकों और सभी प्रकार के माध्यमों अर्थात फेसबुक, व्हाट्सऐप, सोशल साइट्स, मोबाइल कॉलिंग, एसएमएस आदि का अत्यधिक उपयोग किया।

Boas के अनुसार, लैटिन अमेरिका में मीडिया को कभी-कभी cuarto poder कूआर्तो पोदेर या 'चौथी शक्ति' के रूप में संदर्भित किया जाता है, लोकतंत्र की सुरक्षा और गहनता में उनकी संभावित महत्वपूर्ण भूमिका को निरूपित करने के लिए। गलत कामों और खराबी के साथ-साथ उपलब्धियों और सुशासन पर रिपोर्टिंग करके मीडिया राजनेताओं को जवाबदेह ठहरा सकता है और नागरिकों को उनकी पसंद के नेताओं के बारे में सही निर्णय लेने में मदद कर सकता है। व्यक्तियों, सामाजिक आंदोलनों, राजनीतिक दलों और रुचि समूहों को आवाज देकर मीडिया यह निर्धारित करने में मदद करता है कि कौन सार्वजनिक संभाषण में भाग लेता है और राजनीतिक एजेंडे को प्रभावित करता है। क्या कवर करना है और कैसे कवर करना है, इसके बारे में अपने स्वयं के निर्णयों के माध्यम से मीडिया भी उस एजेंडा को आकार देने में एक महत्वपूर्ण स्वतंत्र भूमिका निभा सकता है। (बोआस, २०१२)

भारत एवं लैटिन अमेरिका में मीडिया का स्वामित्व और पक्ष: मीडिया के स्रोतों से यह बताया गया कि कॉर्पोरेट जगत ने भारत के २०१४ के लोकसभा चुनाव में काफी रुचि ली। कॉर्पोरेट कंपनियों ने टीवी चैनलों को खरीदा और बीजेपी उम्मीदवारों के भाषण और अन्य कार्यक्रमों को प्रसारित करके समर्थन व सहयोग दिया। वर्ष २०१९ में विजुअल मीडिया ने २०१४ की तरह सहयोग नहीं किया। सरकार और पार्टी ने डिजिटल युग के मीडिया के लगभग सभी माध्यमों का उपयोग संवाद करने के लिए किया है। 'मन की बात' इसमें से एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने रेडियो पर राष्ट्र को संबोधित किया। वार्ता के मुख्य आकर्षण को अन्य डिजिटल माध्यमों द्वारा जनता तक पहुँचाया गया।

बोआस, Hughes and Lawson का उद्धरण देते हुए बताते हैं कि लैटिन अमेरिका में मीडिया आउटलेट आमतौर पर धनी परिवारों या रूढ़िवादी राजनीतिक झुकाव वाले व्यक्तियों द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। राजनेता खुद अक्सर मीडिया के मालिक बन जाते हैं, प्रसारण रियायत हासिल करने के लिए तंत्र का काम करते हैं और फिर उन्हें राजनीतिक मुखपत्र के रूप में इस्तेमाल करते हैं। (बोआस, २०१२) वहीं Hughes and Lawson तर्क करते हैं कि ब्राजील में (TV Globo, RCN) टीवी ग्लोबो, आरसीएन और कोलंबिया में (Caracol) काराकोल, वेनेजुएला में (Venevision) वेनेविसियोन, सभी परिवारिक स्वामित्व के समूह हैं। अल्बाविसोन (Albavision), मेक्सिको के आंखेल गोंसालेस की संपत्ति है, जो अर्जेंटीना, बोलीविया, चिली और पेरू में प्रमुख टेलीविजन नेटवर्क के साथ-साथ इक्वाडोर, पैराग्वे, मध्य अमेरिका और कई मैक्सिकन राज्यों के नेटवर्क का मालिक है। निजी स्वामित्व यह सुनिश्चित करते हैं कि कॉर्पोरेट प्रशासन में केवल एक ही आवाज सुनी जाए, विशेष रूप से संपादकीय निर्णय। गोंसालेस ने खुले तौर पर कुछ राजनेताओं का पक्ष लेने के लिए अपने मीडिया आउटलेट्स का उपयोग करने की बात स्वीकार किया है, और मेक्सिको में उसके स्थानीय स्टेशनों के पत्रकार नियमित रूप से इसी लीक पर चलते हैं। (Hughes and Lawson 2004: 92-93) (Boas, 2012)

मीडिया स्वामित्व पर Boas तर्क करते हैं कि लैटिन अमेरिका के कई मीडिया मोगल्स राजनेताओं के साथ-साथ व्यवसायी भी हैं। अर्जेंटीना के (America TV) अमेरिका टीवी के भागीदारों में एक डिप्टी पेरोनिस्ट फ्रांसिस्को दे नारवाएस और एक पूर्व डिप्टी पेरोनिस्ट और आंतरिक मंत्री खोसे लुइस मांसानो शामिल हैं। बोलीविया में (Unitel) यूनिटेल एक पूर्व सीनेटर ओस्वाल्दो मोनास्तेरियो आण्येस के परिवार से हैं, जबकि (Red Uno) रेद यूनो १९९३, १९९७ और २००२ में उप राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार इवो कुलखिस फुच्टनर की

संपत्ति है। हाल के दिनों में राजनीतिज्ञों का मालिकाना समूह और भी बड़ा था। बोलीविया के पूर्व राष्ट्रपति कार्लोस मेसा गिस्बर्ट कार्यकारी कार्यालय में अपने वर्षों सहित २००७ तक (Red PAT) रेड पीएटी के संस्थापक और एक हिस्से के मालिक थे। मेसा के मीडिया स्वामित्व ने उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को आगे बढ़ाया, लेकिन चिली के राष्ट्रपति सेबास्तियन पिण्येरा के बारे में वही नहीं कहा जा सकता है। जिन्होंने अप्रैल २००५ में (Chilevision) चिलेविसिओन का अधिग्रहण राष्ट्रपति पद के लिए अपनी पहली दौड़ से ठीक पहले किया था और अपने पदासीन होने के सात महीने बाद ही अक्तूबर २०१० में इसे बेच दिया। प्रमुख राजनेताओं द्वारा मीडिया स्वामित्व की गारंटी नहीं है कि वे अपने प्रभाव का अनुचित तरीके से उपयोग करेंगे, लेकिन यह निश्चित रूप से ऐसा करने के लिए एक मजबूत प्रलोभन पैदा करता है। (बोआस, २०१२)

स्वामित्व पर विद्वान किट्जबर्गर कहते हैं कि २००३ में अर्जेंटीना में मुख्य राष्ट्रीय प्रसारकों के पास दस वर्षों के लिए उनके लाइसेंस नवीनीकृत थे। २००५ में एक डिक्री ने सभी टेलीविजन लाइसेंसधारियों के लिए अतिरिक्त दस वर्ष की अनुग्रह अवधि दी। अपनी पत्नी को राष्ट्रपति पद सौंपने से तीन दिन पहले, किरचनर ने देश के दो प्रमुख केबल प्रदाताओं के विलय को मंजूरी दे दी, जो (Clarin) क्लारिन को केबल टीवी और इंटरनेट प्रोविजन मार्केट्स में एक प्रमुख स्थान प्रदान करता है – जो कि २००७ तक, समूह के राजस्व का ६० प्रतिशत प्रतिनिधित्व करते थे । साथ ही क्लारिन ने आधिकारिक विज्ञापन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बरकरार रखा; नए केबल वितरण परमिट के अनुरोधों को अवरुद्ध करने से इसका फायदा हुआ, जबकि इसके पत्रकार आउटलेट्स को सरकारी स्रोतों से विशेषाधिकार और स्कूप प्राप्त हुए। (किट्जबर्गर, २०१४)

ब्राजील में मीडिया स्वामित्व के मुद्दे पर, Boas लीमा और लोपेज एवं डोनोस दा मिदिया के उद्धरण देते हुए तर्क करते हैं कि ब्राजील में, कमर्शियल ब्रॉडकास्टिंग लाइसेंस नियमित रूप से राजनेताओं और उनके परिवारों को नि:शुल्क दिए जाते थे जब तक कि १९९५ में प्रतिस्पर्धी नीलामी की शुरुआत की आवश्यकता न पड़ी। (लीमा और लोपेज २००७) नतीजतन, कम से कम २७१ ब्राजीलियाई राजनेता राज्य या स्थानीय प्रसारण मीडिया के भागीदार या निदेशक हैं (डोनोस दा मिदिया २००८)। उनमें से एक फर्नांडो कोलोर, एक सीनेटर और पूर्व राष्ट्रपति, और रोसेआना सार्ने, एक गवर्नर, पूर्व सीनेटर और सीनेटर और पूर्व राष्ट्रपति खोसे सार्ने की बेटी हैं। Collor और Sarney परिवार Alagoas और Maranhao के राज्यों में रेडियो स्टेशनों, प्रमुख समाचार पत्रों और TV Globo के स्थानीय सहयोगी नेटवर्क का मालिक है। (बोआस, २०१२)

पक्षपात के मुद्दे पर, Boas फ्रीडम हाउस, डिनाटेल और गैलो, फर्नांडीज, मिगेल, लॉसन, पोर्टो के उद्धरण देते हुए बताते हैं कि किरचनर के पद संभालने के विज्ञापन पर राज्य का खर्च २००२ में $ 5 मिलियन से २००६ में $ 47 मिलियन बढ़ा और २००८ की पहली छमाही में $ 52 मिलियन था (फ्रीडम हाउस २००७, २०१०)। क्रिटिकल मीडिया को इस बजट का एक छोटा सा आवंटन प्राप्त हुआ। जितना कि उनके प्रचलन या दर्शकों की हिस्सेदारी से सुझाया जाएगा, जबकि दोस्ताना मीडिया को लाभ हुआ। २००६ में, प्रो–सरकार (Pagina/१२) पखीना/१२ (संचलन ५१,००० प्रति दिन) को राज्य के विज्ञापन में $ 4.5 मिलियन मिले, जबकि (La Nacion) ला नासिओन (संचलन १८७,०००) को केवल $ 2.8 मिलियन प्राप्त हुए। (डिनाटेल और गैलो २००९; फर्नांडीज २००७) ऐतिहासिक रूप से, पक्षपाती राजनीतिक कवरेज, लैटिन अमेरिका के सबसे प्रभावशाली जन मीडिया के बीच आदर्श था। ग्लोबो और तेलेविसा (Globo and Televisa) के पूर्व–मृतक, रॉबर्टो मारिन्हो और एमिलियो आस्कार्रागा ने प्रसिद्ध रूप से घोषणा की कि उनके देश की हित में राजनीति को प्रभावित

करने के लिए उनके मीडिया साम्राज्यों का उपयोग करने के बारे में कोई दुविधा नहीं थी (मिगेल २०००: ६९; लॉसन २००२: ३०: ३०)। फिर भी नेतृत्व में पीढ़ीगत बदलाव, बढती प्रतिस्पर्धा, पत्रकारिता के बढ़ते व्यावसायिकरण और राजनीतिक लोकतंत्रीकरण ने लैटिन अमेरिका में इन और अन्य मीडिया समूहों द्वारा अधिक संतुलित राजनीतिक रिपोर्टिंग के लिए मजबूत प्रोत्साहन बनाने के लिए सभी को संयुक्त किया है (लॉसन २००२; पोर्टो २०१२)। इसी समय वेनेजुएला, बोलीविया और अर्जेंटीना में वामपंथी राष्ट्रपतियों के साथ कटु संघर्ष ने वाणिज्यिक मीडिया को अपने आर्थिक हितों की रक्षा करने के लिए प्रोत्साहित किया है और विपक्षी राजनीति का मंत्र भी लिया है, जहाँ दक्षिणपंथी राजनीतिक दल विशेष रूप से कमजोर रहे हैं। (बोआस, २०१२)

लैटिन अमेरिका में राजनीतिज्ञों द्वारा मीडिया को संभालने का तरीका: कई देशों में राजनेताओं ने टेलीविजन या रेडियो/सामुदायिक रेडियो और अन्य डिजिटल माध्यमों के माध्यम से लोगों से सीधा संपर्क स्थापित किया। ब्राजील में राष्ट्रपति लूला ने (Cafe com o Presidente) कैफे कोम ओ प्रेसीदेंते की शुरुआत की, वेनजुएला में चावेस ने (Alo Presidente) आलो प्रेसीदेंते, इक्वेडोर में कोरेया ने (Dialogo con el Presidente) दियालोगो कोन एल प्रेसीदेंते और अन्य सरकारों द्वारा विभिन्न सरकारों द्वारा समस्या का सामना करने वाले लोगों को सहानुभूति देने के लिए, नई सरकारी नीतियों की घोषणा करने आदि के लिए संपर्क स्थापित किया।

इक्वाडोर में मीडिया की स्थिति पर, किट्जबर्गर तर्क करते हैं कि मीडिया नीतियों के दायरे में, Correa का पहला कदम एक सार्वजनिक समाचार पत्र का शुरुआत था, जिसे El Telegrafo नामक दिवालिया गुआयाकिल पेपर की जब्ती के माध्यम से किया गया था। जब उन्होंने पदभार संभाला था, सार्वजनिक टेलीविजन इक्वाडोर में मौजूद नहीं थे, जबकि सार्वजनिक रेडियो की उपस्थिति भी लगभग नहीं थी । २००७ में सरकार ने (Ecuador TV) इक्वाडोर टीवी की शुरुआत की और २००८ में (Radio Publica de Ecuador) सार्वजनिक रेडियो को फिर से लॉन्च किया। सार्वजनिक रेडियो के उद्घाटन समारोह में Correa ने इन मीडिया आउटलेट्स का बचाव किया, जो आलोचकों को जवाब दे रहा था कि वे वेनेजुएला के समानांतर नहीं थीं। (किट्जबर्गर, २०१०)

बोलिविया में मीडिया के विस्तार पर किट्जबर्गर कहते हैं कि बोलिविया में, मोरालेस के सत्ता में आने से पहले ही राज्य टेलीविजन का अस्तित्व था। सार्वजनिक मीडिया नीति में उनकी सरकार के प्रयासों ने इस प्रकार कहीं और ध्यान केंद्रित किया: एक राज्य के स्वामित्व वाला दैनिक पत्र जिसे (Cambio) काम्बियो कहा जाता था की शुरुआत की। जबकि रेडियो को श्रोताओं के आधार पर विशेषताएं दी गई थीं। पूर्व सार्वजनिक प्रसारक रादिओ इलिमानी, नया नाम रादिओ पात्रिया न्यूवा बदलकर, ३० से अधिक स्थानीय स्टेशनों के एक 'सामुदायिक रेडियो' नेटवर्क का प्रमुख बन गया। जिसे Red Nacional de Radios de los Pueblos Indigenasy Originarios (RNRPIO) रेद नासिओनाल दे रादिओस दे लोस पुएब्लोस इंदिखेनास ई ओरिखिनारिओस (आरएनआरपीआईओ) कहा जाता है। इस नेटवर्क को वेनेजुएला के विकास सहायता के साथ वित्तपोषित किया गया था। (किट्जबर्गर, २०१०)

Boas बताते हैं कि कई राजनेता मीडिया को संभालने के लिए बहुत कठोर तरीकों का उपयोग करते हैं, जैसे; मीडियाकर्मियों को सेंसरशिप, मानहानि और कानूनी परेशानी में डालना आदि। ब्राजील में आमतौर पर स्थानीय अदालतों के प्रभाव वाले नेताओं की याचिकाओं के जवाब में न्यायाधीश नियमित रूप से पूर्व सेंसरशिप लगाते हैं, जो सार्वजनिक अधिकारियों को बदनाम करने वाली सूचनाओं के प्रकाशन या प्रसारण को रोकने के लिए होता है । उदाहरण के लिए, मई २०१० में साओ पाउलो राज्य की अदालत ने (Diario do Grande ABC) दियारियो

दो ग्रांदे एबीसी को महापौर (Sao Bernardo do Campo) साओ बेर्नार्डो डो कैम्पो के एक शिकायत के बाद पब्लिक स्कूल की आपूर्ति के कुप्रबंधन पर रिपोर्टिंग को रोकने के लिए मजबूर किया। कभी–कभी न्यायाधीश अपने ही सहयोगियों की सुरक्षा के लिए कानून का दुरुपयोग करते हैं: जुलाई २००९ में, सल्वाडोर में अखबार A Tarde आ तार्दे, बाहिया को आरोपों पर रिपोर्ट करने से रोक दिया गया था कि एक अपील अदालत के न्यायाधीश ने वाक्य बेच दिए थे। पूर्व सेंसरशिप के कई उदाहरण स्थानीय या क्षेत्रीय मीडिया को लक्षित करते हैं, लेकिन ब्राजील़ के कुछ प्रमुख राष्ट्रीय प्रकाशन भी प्रभावित होते हैं। जुलाई २००१ में, एक रियो दे जनेरियो के न्यायाधीश ने शहर के प्रमुख समाचार पत्र (O Globo) ओ ग्लोबो पर प्रतिबंध लगा दिया, जिसमें राज्य के राज्यपाल एंथोनी गारोटिन्हो ने फोन पर बातचीत में रिश्वत को अधिकृत करने की बात का प्रतिलेख मुद्रित किया था। (बोआस, २०१२) मीडिया कर्मियों के साथ व्यवहार पर Boas तर्क करते हैं कि मानहानि कानूनों का उपयोग कई देशों में पत्रकारों और मीडिया आउटलेट्स को उनकी रिपोर्टों के छपने या प्रसारित होने के बाद दंडित करने के लिए किया जाता है। नवंबर २००६ में, ब्राजील के मातो ग्रोसो दो सुल के एक अदालत ने गवर्नर–उम्मीदवार पर आरोप लगाने के लिए कि मेयर के रूप में अपने पिछले कार्यकाल के दौरान भ्रष्टाचार की। अखबार (Correio do Estado) कोररियो दो एस्तादो के संपादक को दस महीने जेल की सजा सुनाई। मेक्सिको में, पत्रकार लीदिया काचो ने २००५ में एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें एक धनी व्यापारी को बाल वेश्यावृत्ति की जाल में फंसाया गया, उसने पूएब्ला राज्य के गवर्नर के साथ मिलकर उसे गिरफ्तार करने और पुलिस से परेशान करने की साजिश रची। जनवरी २०१० में, पेरू के बगुआ में स्थित समाचार पत्र (Nor Oriente) नोर ओरिएंते के संपादक को एक स्थानीय पब्लिक स्कूल में भ्रष्टाचार पर कई लेख लिखने के बाद मानहानि के आरोप में एक साल की जेल की सजा सुनाई गई थी। पूर्व सेंसरशिप के साथ मानहानि कानूनों का दुरुपयोग छोटे, क्षेत्रीय मीडिया तक सीमित नहीं है। २००१ और २००२ में, शहर और राज्य सरकार के भ्रष्टाचार पर रिपोर्टिंग करने के लिए मेक्सिको के शहर के प्रमुख अखबारों में से एक (Reforma) रिफोर्मा के अध्यक्ष और प्रकाशक के खिलाफ मानहानि के आरोप दायर किए गए थे। (बोआस, २०१२)

निष्कर्ष: भाजपा की रणनीति के बाद कई अन्य दलों और राजनेताओं ने लोगों से जुड़ने के लिए मीडिया के डिजिटल तरीकों का इस्तेमाल किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC), समाजवादी पार्टी (SP), राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी (NCP), शिव सेना (SS), बहुजन समाज पार्टी (BSP), राष्ट्रीय जनता दल (RJD), DMK, AIADMK, आदि ने मीडिया के माध्यम से सशक्त संवाद करने का प्रयास किया। लोगों ने भाजपा और प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के संवाद को सबसे प्रभावी पाया और २०१९ में फिर से देश का नेतृत्व करने के लिए चुना।

Boas के अनुसार; ब्राजील़, मैक्सिको और चिली हमें दिखाते हैं कि बड़े पैमाने पर अपने उम्मीदवारों के साथ व्यवहार में जन मीडिया अपेक्षाकृत संतुलित हो सकता है। यहाँ तक कि उन देशों में भी जहाँ अतीत में मजबूत समर्थक स्थापना पक्षपात मौजूद था। राजनीतिक लोकतंत्रीकरण, मीडिया नेतृत्व में बदलाव, और पत्रकारिता में प्रतिस्पर्धा एवं व्यावसायिकता में वृद्धि ने इन परिणामों में योगदान दिया है, लेकिन कम से कम चिली और ब्राजील में वामपंथियों का उदार प्रवृत्ति है। (बोआस, २०१२)

(नोट : इस शोध पत्र के कुछ भाग को राष्ट्रीय मीडिया कांक्लेव, भुवनेश्वर २०१९ में प्रस्तुत किया गया था।)

संपर्क: महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र। **मो. 9921678464**

गांधी, हिंदी और पत्रकारिता

डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय

महात्मा गांधी का भारतीय राजनीति, स्वतंत्रता आंदोलन के अन्यतम नायकों में शीर्षतम स्थान है। उनका स्वाधीनता–संग्राम और स्वाधीनता प्राप्ति में ऐतिहासिक अमिट योगदान है। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में आजादी की ज्वाला को उद्दीप्त करने वाले महापुरुषों में, नेताओं में, महात्मा गांधी का नाम अग्रगण्य है। महात्मा गांधी महामानव, राजनेता, देशभक्त, स्वतंत्रता प्रेमी, समाज सुधारक अनन्य हिंदी सेवी तथा सांप्रदायिक एकता के अग्रदूत थे। गांधी जी विश्व विख्यात राजनीतिज्ञ, राष्ट्रनायक, भारतीय पत्रकारिता के प्रतिमान परम आर्दशवादी तथा अनेकों आंदोलनों के जन्मदाता हैं। जनता में राष्ट्रपिता, महात्मा तथा बापू के नाम से विख्यात हैं। महात्मा गांधी एक निर्भीक पत्रकार के साथ ही स्वतंत्रता–आंदोलन के अन्यतम नेताओं में थे। गांधी जी ने राजनीति तथा पत्रकारिता को नई ऊँचाई प्रदान की। महात्मा गांधी के कई रूपों के साथ उनके पत्रकार रूप का कम महत्व नहीं है। गांधी जी के लेखन में पत्रकारिता छलकती है। समाज की ऐसी कोई समस्या नहीं होगी, जहाँ उनकी कलम नहीं चली। गांधी जी राष्ट्र भाषा हिंदी के अनन्य सेवी, अद्वितीय प्रचारक–प्रसारक, राष्ट्रभाषा चिंतक तथा समर्थक थे। हिंदी के प्रति उनके मन में सम्मान और स्वीकृति का भाव हमेशा बना रहा। हिंदी उनके लिए राष्ट्रीय अस्मिता थी। आम तौर पर यह धारणा है कि कांग्रेस का आंदोलन जैसे–जैसे बढ़ता गया, कांग्रेस के नेताओं ने हिंदी को इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया। शुरू में लोकमान्य तिलक ने हिंदी को इस देश की राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के संकेत दिए और बाद में महात्मा गांधी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए देश के लिए इसकी अनिवार्यता तथा प्रचार–प्रसार में पूरा जीवन लगा दिया। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश की राष्ट्रीयता की आधारशिला है। राष्ट्र की परिकल्पना बिना राष्ट्रभाषा अधूरी है। भाषा केवल भाषा, भावों, विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, अपितु वह देश की संस्कृति, धर्म, दर्शन लोक परंपराओं की संवाहिका है। वस्तुतः भाषा, संस्कृति एवं मातृभूमि के समवेत भाव को ही राष्ट्र कहते हैं। इन्हीं तीनों तत्वों के समन्वय से राष्ट्रीयता की अवधारणा प्राप्त होती है। गांधी जी के हिंदी प्रेम में व्यापकता तथा गहराई थी। उनकी मान्यता थी कि किसी भी देश की सभ्यता–संस्कृति, इतिहास का सम्यक ज्ञान देश की राष्ट्रभाषा में ही संभव है। गांधी ने अंग्रेजी में बहुत लिखा है, जो सारे संसार में समादुत है। पर उन्होंने अंग्रेजी को शासन अथवा शिक्षा में लाए रखने का सदैव घोर विरोध किया। कारण वे जानते थे कि भारत को गुलामी से मुक्त करने के लिए समाजवादी, गणतांत्रिक भारत के निर्माण के लिए, देश की एकता के लिए हिंदी जरूरी है, अंग्रेजी नहीं।

हिंदी के निर्माताओं में उसके प्रचार–प्रसार में, सेवा में, उसके महत्व को दर्शाने में महात्मा गांधी का नाम शीर्षस्थ है। हिंदी ने अपने देश की स्वतंत्रता और संस्कृति की पराधीनता के विरुद्ध व्यापक और दीर्घकालीन संघर्ष किया और उससे मुक्ति दिलायी। गांधी जी चाहते थे कि हिंदी भाषा तथा अन्य प्रांतों की भाषाएं विकसित हों, उन्नत हों, उनमें शासन और शिक्षा हो, इसी में देश का कल्याण और विकास है। राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा, संवर्धन, विकास और प्रचार–प्रसार का जो दायित्व गांधी जी ने निभाया, प्रयास किया वह अतुलनीय है। सारे देश को एक सूत्र में जोड़ने के लिए एक राष्ट्रभाषा की परिकल्पना करने वाले महनीय व्यक्तियों में महात्मा गांधी का नाम आदर के साथ स्मरण किया जाता है। राष्ट्रीय आंदोलन, स्वतंत्रता संग्राम के साथ राष्ट्रभाषा की

परिकल्पना सभी राष्ट्रीय नेता तथा विद्वान करते रहे हैं। लेकिन राष्ट्रभाषा की आवश्यकता और व्यापक प्रचार करने वाले सूत्रधार महात्मा गांधी रहे हैं।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा बनाने के लिए अहिंदी भाषा प्रान्तों में राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का जाल बिछा दिया था। उन्होंने कहा था आज की पहली और सबसे बड़ी देश सेवा, समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशीय भाषाओं की ओर मुड़े तथा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करें, क्योंकि हर भाषा की अपनी संस्कार और संस्कृति होती है। भाषा का प्रश्न हमारी राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक लगाव तथा राष्ट्रीय अस्मिता से जुड़ा हुआ है। हमें अपने देश की एकता, अस्मिता की रक्षा के लिए सर्वप्रथम अपनी भाषा, राष्ट्रभाषा की रक्षा करनी होगी। हिंदी भारतीयता की पहचान है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का काम अहिंदी भाषी नेताओं तथा विद्वानों ने आरंभ किया था। गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, केरल, बंगाल सभी क्षेत्रों के महापुरुषों दयानंद सरस्वती, राष्ट्रपिता बापू, लोकमान्य तिलक, बंकिमचंद्र चटर्जी, केशवचन्द्र सेन जैसे नेताओं ने राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ करने देश को आजादी दिलाने के लिए हिंदी भाषा के महत्व को समझा था। गांधी जी ने भारत राष्ट्र की एक भाषा के साथ एक ही देवनागरी लिपि होने की आवश्यकता पर बल दिया था। हिंदी भारतीय भाषाओं में निहित ज्ञान राशि को आत्मसात कर समष्टि की भाषा बन चुकी है। इसने कई भाषाओं के तमाम शब्दकोश को सहजता से अपनाया है तथा भारत के सामयिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति में पूर्णत: सक्षम है। गांधी जी ने राष्ट्रभाषा और प्रांतीय भाषाओं की चर्चा करते हुए अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया था–"मेरा नम्र निवेदन है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी–अपनी प्रांतीय भाषाओं को योग्य स्थान नहीं देंगे तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं। बालशौरि रेड्डी ने लिखा है– "हिंदी के व्यापक प्रचार को देख कुछ प्रदेशों में गलतफहमी हो गई है कि हिंदी प्रचार के कारण प्रांतीय भाषा का विकास अवरूद्ध होगा। उनकी शंका समाधान करते हुए गांधी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था–हम किसी हालत में भी प्रांतीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रांतो के पारस्परिक संबंध के लिए हिंदी भाषा सीखें। हिंदी को हम राष्ट्र भाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है जिसे अधिक संख्या के लोग जानते–बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिंदी ही है।''(राजभाषा हिंदी, पृ०–२६)

गांधी जी १९०६ से ही देशी भाषाओं के माध्यम के लिए वकालत करने लगे थे। १९१७ से उन्होंने स्पष्टत: उसका प्रचार, प्रारंभ कर दिया। उनका कहना था कि विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे तो उठा सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते। भारत में स्वाधीनता आंदोलन के साथ स्वभाषा आंदोलन भी चलता रहा। १९१६ में डॉ. मेहता ने भारतीय स्कूल तथा कॉलेजों में देश की भाषाएं शिक्षा का माध्यम बनें नामक एक पुस्तक लिखी, जिसकी प्रस्तावना गांधी ने लिखी। अपनी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा देश की भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने का सवाल राष्ट्रीय महत्व का है। देश की भाषाओं की उपेक्षा करना, देश के लिए आत्मघातक है। गांधी जी ने राष्ट्रभाषा और प्रांतीय भाषाओं की चर्चा करते हुए अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया था–"मेरा नम्र निवेदन, दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम भाषा को राष्ट्रीय और अपनी–अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं।'' गांधी जी ने न केवल हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा, बल्कि उसे शासन, शिक्षा, व्यापार, वाणिज्य न्याय की भाषा के भी पक्षधर थे। वे हर हालत में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को प्रतिष्ठित करना चाहते थे। राष्ट्रपिता ने कहा था कि 'हिंदी के बिना राष्ट्र गूंगा है'। गांधी जी का हिंदी प्रेम सर्वविदित और स्पष्ट है। गांधी जी

ने स्वराज्य के साथ जुड़े भाषा के सवाल को बड़ी गंभीरता पूर्वक विचार करके सुलझाया है। विदेशी भाषा किसी भी देशवासी को किस तरह गुलाम बना सकती है। इस संबंध में उन्होंने स्पष्ट मत व्यक्त किया था। गांधी ने कहा था– "लाखों लोगों को अंग्रेजी का अध्ययन कराना उन्हें गुलाम बनाना है। मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी उसने सबको गुलाम बना दिया है। अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीय लोगों को और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो नि:संदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों, निरक्षरों और दलितों व अत्यंजो और इन सबके लिए होने वाला हो तो हिंदी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है। गांधी जी द्वारा स्थापित हिंदी प्रचार सभा परिषदें करोड़ों–करोड़ों लोगों को हिंदी सिखा चुकी हैं। गांधी जी ने हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी के प्रचार–प्रसार का संकल्प किया और सर्वप्रथम दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार का प्रस्ताव रखा और बड़ी दृढ़ता के साथ उसे पारित करवाया। १९१८ में उन्होंने इंदौर से अपने पुत्र श्री देवदास गांधी तथा स्वामी सत्यदेव को मद्रास भेजा। सभी सुशिक्षित तथा देशभक्त भारतवासियों ने गांधी जी के विचारों को स्वीकार किया और कई संस्थाओं तथा उनके माध्यम से हजारों प्रचारकों ने हिंदी के प्रचार में अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया। हिंदी का प्रचार गांधी जी के राष्ट्रीय आंदोलन का एक प्रमुख अंग बन गया। इसीलिए हमारे संविधान में हिंदी को राजभाषा का स्थान दिया गया है। १९४६ में गांधी जी ने दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की रजत जयंती के उद्घाटन के अवसर पर दीक्षांत भाषण देते हुए कहा था–"कुछ समय के बाद हिंदुस्तान आजाद होगा और आजाद हिंदुस्तान की राजभाषा हिंदी होगी। इसलिए मैं युवा पीढ़ी से अपील करता हूँ कि वे अभी से हिंदी सीखना शुरू करें और देश के आजाद होते ही शासन के समस्त कार्यकलाप हिंदी में संपन्न करें ताकि अंग्रेजी का वर्चस्व अपने आप समाप्त हो जाए।'' वास्तव में हिंदी की शक्ति उसे अपनाने, प्यार करने वाली जनता की शक्ति है। हमें अपनी राष्ट्रभाषा के जातीय रूप की रक्षा करनी चाहिए। वर्धा शिक्षा सम्मेलन १९३७ में भी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा पर ही बल दिया गया था।

शंकर दयालसिंह ने लिखा है कि–"१९१६ में भाषा और लिपि के संबंध में एक सभा हुई, जिसमें लोकमान्य तिलक ने देवनागरी लिपि और हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाये जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, किंतु उन्होंने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया–यद्यपि मैं हिंदी भाषा में बोल नहीं सकता और यह बात मैंने सम्मेलन उद्योगियों से प्रकट भी कर दी थी, फिर भी उन लोगों ने जब आग्रह किया कि अवश्य ही मैं यहाँ आकर राष्ट्रभाषा के विषय में अपने कुछ विचार प्रकट करूँ तो मैंने आज्ञा को शिरोधार्य किया।'' तिलक जी के बाद गांधी जी बोलने के लिए उठे और उन्होंने कहा–"सभापति जी के व्याख्यान से मैं दुखी तथा सुखी दोनों हुआ हूँ, क्योंकि आपने विद्वतापूर्ण बातें कहीं हैं। वे यदि हिंदी में कही होती तो कितना लाभ होता। उनके लिए हिंदी सीख लेना कोई कठिन नहीं है, जबकि लार्ड डफरिन तथा महारानी विक्टोरिया ने हिंदी सीख ली थी।'' कहना न होगा कि इसके बाद लोकमान्य तिलक ने हिंदी सीखी और वे महासभा के मंचों से हिंदी धारा प्रवाह बोलने लगे। (हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा, पृ. ५४)

गांधी जी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रबल पक्षधर थे। वे राष्ट्रभाषा को इतना महत्व देते थे कि वे किसी भी मूल्य पर, वे भाषा के स्तर पर समझौते के लिए तैयार नहीं थे। मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा के संबंध में गांधी जी का दृढ़ निश्चय उनकी वाणी में सर्वत्र मुखरित हुआ है। भारत की आत्मा को पहचानने के लिए हिंदी भाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। प्रसिद्ध हिंदी सेवी, साहित्यकार बालशौरि रेड्डी ने अपने लेख राष्ट्रभाषा हिंदी और महात्मा गांधी में लिखा है–"सारे देश को एक सूत्र में जोड़ने के लिए एक राष्ट्रभाषा की परिकल्पना करने वाले महनीय व्यक्तियों में आचार्य केशवचन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी, काका कालेलकर, सुभाषचंद्र बोस आदि के नाम आदर के साथ ले सकते हैं।' दरअसल राष्ट्रीय आंदोलन

के साथ राष्ट्रभाषा की परिकल्पना प्राय: सभी राष्ट्रीय नेता एवं विद्वान करते रहे हैं, परंतु राष्ट्रभाषा की आवश्यकता और उनका व्यापक प्रचार करने वाले सूत्रधार महात्मा गांधी रहे हैं। १९१८ में हिंदी साहित्य सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन इंदौर में संपन्न हुआ। उस अधिवेशन के सभापति महात्मा गांधी थे। उस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा की स्पष्ट व्याख्या की और हिंदीतर प्रदेशों में उसके प्रचार की आवश्यकता पर जोरदार शब्दों में समर्थन किया। उन्होंने कहा था–"साहित्य का प्रदेश भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। भाषा सागर में स्नान करने के लिए पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण से पुनीत महात्मा आएंगे तो सागर का महत्व स्नान करने वालों के अनुरूप होना चाहिए। इसलिए साहित्य की दृष्टि से भी हिंदी का स्थान विचारणीय है।' (राजभाषा हिन्दी, पृ.२५)

बापू का यह कथन सदा स्मरणीय है–"अगर मेरे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए दी जाने वाली हमारे लड़कों और लकड़ियों की शिक्षा बंद कर दूँ और सारे शिक्षा को तथा प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ या उन्हें बर्खास्त करा दूँ। मैं पाठ्यपुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूँगा, वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे अपने आप चली आएंगी। यह एक ऐसी बुराई है जिसका तुरंत इलाज होनी चाहिए।'' शंकरदयाल सिंह के शब्दों में– "एक विचित्र संयोग ही है कि १८८५ में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र का देहावसान हुआ और उसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। तब से हिंदी शनै-शनै अपना स्थान लोगों के दिलों में बनाती चली गई। कारण इसे राष्ट्रीयता का द्योतक बनाया गया। १९१७-१८ में जब गांधी जी के हाथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर तथा राष्ट्र नेतृत्व गया तभी से भारतीय भाषाओं तथा विशेषकर हिंदी को सही मायने में राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होने लगा। इसके लिए हिंदी और अहिन्दी दोनों क्षेत्रों में जागृति उत्पन्न हुई। गांधी जी ने यदि राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की भाषा आहवानित न किया होता तो कभी भी राष्ट्रीय चेतना इस प्रकार उत्पन्न नहीं होती।''(हिंदी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा, लेखक-शंकर दयाल सिंह, पृ. १२)

महात्मा गांधी ने कलकत्ता में २७ दिसम्बर,१९१७ को अपने एक भाषण में कहा था–"यदि अंग्रेजी के आदी नहीं हो गए होते, तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कटकर हो गई है, हम अपनी जनता से अलग हो गए हैं, जाति की सर्वश्रेष्ठ विभागों का काम रुक गया है। अंग्रेजी के कारण अनेक दुर्गति हुई है। यह तो 'राष्ट्रीय शोक' ट्रेजडी का विषय है। आज की पहली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़े और हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्रवाइयां अपनी-अपनी भाषाओं में चलानी चाहिए तथा हमारी कार्रवाइयों की भाषा हिंदी होनी चाहिए।'' गांधी जी ने १९३७ में 'हरिजन' में लिखा था–"मैंने अपने मन में कहा, गुजराती मेरी मातृभाषा है, पर वह राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। देश के ३० वें हिस्से से अधिक की जनसंख्या गुजराती भाषा नहीं है। उसमें मुझे तुलसीदास की रामायण कहाँ मिलेगी ? मराठी भाषा से मुझे प्रेम है। मराठी बोलने वाले लोगों में मेरे साथ काम करने वाले कुछ बड़े पक्के और सच्चे साथी हैं, महाराष्ट्रियों की योग्यता, आत्मबलिदान, उनकी शक्ति और विद्वता का मैं कायल हूँ। तो भी जिस मराठी भाषा का लोकमान्य तिलक ने गजब का उपयोग किया, उसे राष्ट्रभाषा बनाने की कल्पना मेरे मन में नहीं उठी। जिस वक्त मैं इस प्रश्न पर अपने दिल से दलीलें कर रहा था, मैं आपसे बता दूँ कि उस वक्त मुझे हिंदी भाषा-भाषियों की ठीक-ठाक संख्या भी मालूम नहीं थी। उस वक्त मुझे खुद-ब-खुद यह लग रहा था कि राष्ट्रभाषा की जगह एक हिंदी ही ले सकती है-दूसरी कोई जबान नहीं। क्या मैंने बंगला की प्रशंसा नहीं की ? मैंने की है और चैतन्य, राममोहनराय, रामकृष्ण, विवेकानंद तथा

रवींद्रनाथ ठाकुर की मातृभाषा होने के कारण उसे मैंने सम्मान की दृष्टि से देखा है। फिर मुझे लगा कि बंगला को हम अंप्रांतीय आदान-प्रदान की भाषा नहीं बना सकते तो क्या दक्षिण भारत की कोई भाषा बन सकती है, यह बात नहीं कि इन भाषाओं से मैं अनभिज्ञ था। पर तमिल दक्षिण की ओर कोई भाषा कैसे हो सकती है? गुजरात के भड़ौच नायक स्थापन पर आयोजित द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में २० अक्तूबर-१९१७ को गांधी ने स्पष्ट रूप से कहा कि केवल हिंदी राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिंदी और उर्दू एक ही है, केवल उनकी शैली में अंतर है। गांधी जी और राष्ट्रभाषा या हिंदी को कृत्रिम रूप से समझने के लिए उनके साथ हमें कुछ प्रसंगों में झांकना होगा। १९१८ में गांधी जी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के अपने भाषण में कहा था-"भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह लोगों में नहीं है। शिक्षित वर्ग अंग्रेजी के मोह में फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय मातृभाषा से उसे असंतोष हो गया है। पहली माता से (अर्थात अंग्रेजी से) जो दूध मिलता है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है और दूसरी माता से (अर्थात हिंदी से) शुद्ध दूध मिलता है। बिना इस शुद्ध दूध के हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अंधा है, वह देख नहीं सकता और गुलाम नहीं जानता कि अपनी बेड़ियां किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं। हमारी प्रजा, अज्ञान में डूबी रही है, हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में कांग्रेस के प्रांतीय सभाओं में अंग्रेजी का व्यवहार बिल्कुल त्याग दें।... हमारी प्रार्थना है कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें।'' १९३६ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन के अवसर पर गांधी जी ने भारतीय साहित्य परिषद के निर्माण का स्वागत किया। उन्होंने उसकी अध्यक्षता स्वीकार कर ली। क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यिक सम्मेलनों का एक संघ-स्वरूप ही इस परिषद का उद्देश्य गांधी जी की प्रेरणा से ही सर्वप्रथम उसके संविधान में हिंदी हिंदुस्तानी शब्द प्रकट हुए। १६ जून, १९२० के 'यंग इंडिया' में गांधी जी ने दक्षिण वालों के संबंध में लिखा था-"आज अंग्रेजी का प्रभुत्व करने के लिए वे जितनी मेहनत करते हैं, उसका आठवां हिस्सा भी हिंदी सीखने में करें, तो बाकी हिंदुस्तान के जो दरवाजे आज उनके लिए बंद हैं, वे खुल जाएं और वे इस तरह हमारे साथ एक हो जाएं, जैसे पहले कभी नहीं थे। कोई भी द्रविण यह न सोचे कि हिंदी सीखना जरा भी मुश्किल है। अगर रोज के मनोरंजनों में से थोड़ा समय निकाला जाए तो साधारण आदमी एक साल में हिंदी सीख सकता है। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि द्रविण बालक अद्भूत सरलता से हिंदी सीख लेता है।'' गांधी जी ने २५ अगस्त,१९४६ के 'हरिजन' में लिखा है-"मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हों-मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह बच्चा अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदायिनी दूध दे सकती है। अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा। कुछ अंग्रेजी, कुछ लोगों के सीखने की चीज हो सकती है लाखों करोड़ों की नहीं।''

शंकर दयाल सिंह लिखते हैं-"महात्मा गांधी के प्रयास से १९३५ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने हिंदी भाषा को स्वीकार किया। उस समय कांग्रेस ने हिंदी के संबंध में यह प्रस्ताव स्वीकार किया- कांग्रेस की यह सभा प्रस्ताव पास करती कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और कमेटी की कार्रवाई आम तौर पर हिंदुस्तानी में (हिंदी में) चलेगी, अगर कोई वक्ता हिंदुस्तानी न जानता हो या दूसरी आवश्यक पड़ने पर अंग्रेजी भाषा इस्तेमाल की जा सकती है।' इस प्रस्ताव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए गांधी जी ने कहा था-"हिंदुस्तानी के उपयोग के बारे में जो प्रस्ताव पारित हुआ है, वह लोकमत को बहुत आगे ले जाने वाला है। हमें अब तक अपना काम-काज ज्यादातर अंग्रेजी में करना पड़ता है। वह निस्संदेह प्रतिनिधियों और कांग्रेस की महासमिति के

ज्यादातर सदस्यों पर होने वाला एक अत्याचार ही है। इस बारे में किसी न किसी दिन हमें आखिरी फैसला करना होगा। जब ऐसा होगा, तब कुछ वक्त के लिए थोड़ी दिक्कतें पैदा होंगी, थोड़ा असंतोष होगा, लेकिन राष्ट्र के विकास के लिए यह अच्छा होगा कि जितनी जल्दी हो सके हम अपना काम हिंदुस्तानी में करने लगें।'' उत्तर भारत के हिंदीतर प्रदेशों में जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, उड़ीसा, बंगाल, असम इत्यादि प्रांतों में तथा प्रवासी भारतीयों को हिंदी सिखाने के लिए विदेशों में भी हिंदी प्रचार हेतु १९३५ में महात्मा गांधी ने वर्धा में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की। फिर क्रमश: विभिन्न राज्यों में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएं स्थापित हुई। उनके माध्यम से हिंदी प्रचार का क्षेत्र व्यापक हुआ। बालशौरि देड़ही का यह कथन बिलकुल सत्य है–"इसके परिणाम स्वरूप भारत जब आजाद हुआ तब संविधान की रचना करते समय हिंदी को राजभाषा बनाने का प्रश्न उठा। यदि हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी प्रचार न हुआ होता तो कदापि हिंदी राजभाषा के रूप में स्वीकृत न होती। अत: महात्मा गांधी जी की दूरदर्शिता के कारण ही हिंदी राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा एवं राजभाषा के रूप में स्वीकृत प्राप्त कर सकीं। भारत के स्वतंत्र होने पर एक ब्रिटिश पत्रकार ने गांधी से संदेश माँगा तब गांधी जी ने तुरंत कह दिया था–"दुनिया से कह दो गांधी अंग्रेजी भूल गया।' (राजभाषा हिंदी, पृ.२८)

हिंदी हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आंदोलन की ही नहीं अपितु राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतंत्रता आंदोलन के अभिव्यक्ति की भाषा भी रही है। भारत का जन–जन इसका प्रयोग करने में आत्म–सम्मान तथा आत्मगौरव की अनुभूति करता था। सच्ची एवं शुद्ध भारतीयता की यह परख समझी जाती थी। इसलिए महात्मा गांधी ने उसे राष्ट्र भाषा के पद पर विभूषित किया था। गांधी जी आजीवन हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार, संवर्धन, उन्नति तथा उसे सम्मान जनक स्थान दिलाने के लिए प्राणप्रण से समर्पित रहे। हिंदी और गांधी जी को अगर हम पर्याय माने तो कोई अनुचित नहीं, अतिश्योक्ति नहीं। भारत में अभी तक इतना बड़ा हिंदी सेवक आज तक पैदा नहीं हुआ।

राजनेता, महामानव तथा महात्मा बनाने में उनकी पत्रकारिता को सबसे बड़ा श्रेय जाता है। उनकी दक्षिण अफ्रीका से राजनीति और पत्रकारिता की शुरुआत हुई। अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है–"महात्मा गांधी का पत्रकारिता से परिचय लंदन में हुआ, जब वे बैरिस्टरी करने के लिए वहाँ गये थे, उस समय उन्होंने 'द वेजीटेरियन' में बारह लेखों की शृंखला लिखकर पत्रकारिता में प्रवेश किया। इसका पहला लेख ७ फरवरी १८९१ में प्रकाशित हुआ। दक्षिण अफ्रीका में तीन वर्ष तक गांधी वकील से अधिक पत्रकार के रूप में लोकप्रिय थे। वहाँ के सामाचार पत्रों में सम्मानित स्तंभकार थे। उन्होंने अक्तूबर १८९९ में स्वतंत्र पत्रकार के रूप में बोअर युद्ध मैदान में जाकर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए समाचार भेजे थे। 'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक मि. विअरस्टेट ने गांधी द्वारा युद्धस्थल से भेजी गई रपटों और चित्रों का प्रकाशन किया था। दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी ने १९०३ में 'इंडियन ओपिनियन' आरंभ किया और वे जब तक वहाँ रहे, इस समाचार पत्र को निकालते रहे। वे जब भारत आए तो उन्होंने 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' तथा 'हरिजन' का संपादन–प्रकाशन किया और इस प्रकार वे चार दशकों तक पत्रकारिता से सीधे जुड़े रहें।'' (गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान, लेखक–डॉ. कमल किशोर गोयनका–भूमिका ले.– अच्युतानंद मिश्र, पृ०–१२), महात्मा गांधी ने चार भाषाओं (हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती, तमिल) में 'इंडियन ओपीनियन' का प्रकाशन किया। बाद में उन्होंने 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी में), अहमदाबाद में ८ अक्टूबर १९१९ में 'नवजीवन'(हिंदी, गुजराती) अहमदाबाद से ७ अक्तूबर १९१९में, हिंदी नवजीवन का नाम 'हरिजन' (११ फरवरी,१९३३) नाम से प्रकाशन शुरू किया। १९१९ में गांधी ने 'यंग इंडिया' का संपादन किया और इसके माध्यम से अपने राजनीतिक दर्शन कार्यक्रम और नीतियों का प्रचार किया। १९३३ के बाद उन्होंने हरिजन अंग्रेजी,

हिंदी और कई अन्य देशी भाषाओं में साप्ताहिक का भी प्रकाशन शुरू किया। फिर हिंदी पत्रकारिता का गांधी युग शुरू हुआ। इतिहासकारों का मत है कि बाल गंगाधार तिलक ने अंग्रेजों के हाथ से शासन माँगने का प्रश्न उठाया था, परन्तु गाँवों में रहने वाले किसानों और मजदूरों तक वह आवाज नहीं पहुँची थी। यह महान कार्य गांधीयुग ने संपन्न हुआ जो १९१९ में रॉयल एक्ट के विरोध के साथ ही आविर्भूत हुआ था। रॉयल एक्ट के विरोध में जो आंदोलन उठा उसका ढंग ऐसा था कि वह जनता की चीज बनने लगा। गाँव-गाँव कांग्रेस का प्रचार होने लगा और स्वराज की माँग जनता के सामने रखी गई। किसानों की बात करते समय जन के संपर्क में आने से उनके दृष्टिकोण से भी बहुत-सी बातें कहीं गई।' गांधी जी ने जब दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' समाचार पत्र निकाला, उसमें हिंदुस्तानी (इंडियन) दृष्टिकोण प्रमुख था। गांधी जी ने जब वर्ष १९१९ में 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' तथा १९३३ में 'हरिजन' निकाला उनके सामने युवाभारत, भारत का नवजीवन तथा भारतीय जनता ही थी। समाचारो पत्रों के इन नामकरणों से सिद्ध होता है कि गांधी की पत्रकारिता की बुनियाद भारतप्रेम और राष्ट्रीयता ही थी।

गांधी जी ने 'इंडियन ओपिनियन' में कई बार अपने उद्देश्यों की घोषणा की, जिसमें प्रमुख रूप से भारतीय समाज का कल्याण प्रमुख लक्ष्य था। डॉ. कमल किशोर गोयनका के शब्दों में-"इंडियन ओपिनियन के द्वारा वे भारतीयों के कष्टों को दूर करने तथा उन्हें सुनीति की शिक्षा देना चाहते थे। उन्होंने कहा कि पत्रकारिता का लक्ष्य आजीविका कमाना नहीं है, बल्कि लोक शिक्षा, लोक चेतना ही उसका मुख्य कार्य है। इसी कारण गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' को समाचार-पत्र न बनाकर विचारपत्र बनाया बल्कि वह जागरण-पत्र भी था। दक्षिण अफ्रीका में जो भारतीय समाज था, वह एक प्रकार से मिनी भारत ही था। जिसमें कई धर्मों, जातियों, भाषियों एवं क्षेत्रों के लोग थे। इसी कारण गांधी ने इंडियन ओपिनियन (२० अप्रैल-१९०६) के अंक में लिखा कि इस समाचार-पत्र की मदद करना हर एक भारतीय का कर्म है।'(पाण्डुलिपि-जनवरी-मार्च-२०११,पृ०-३१७)

अंग्रेजी शासन काल के दौरान बहुत से भारतीय जीविकोपार्जन के लिए अंग्रेजी-उपनिवेशों में जा बसे थे। एशिया, द.-पूर्व एशिया, अफ्रीका, अमेरिका, इंग्लैंड, कनाडा कई द्वीप-देशों में आज भी भारतीय बहुत बड़ी संख्या में निवास करते हैं। वे अपनी भाषा और संस्कृति भी ले गए थे। विश्व की भाषाओं में हिंदी का स्थान आज दूसरा है। गांधी जी ने आत्मकथा में लिखा कि इंडियन ओपिनियन मेरे जीवन का निचोड़ है और इसने हिंदुस्तानी समाज की अच्छी सेवा की है, इस अखबार के बिना सत्याग्रह की लड़ाई चल नहीं सकती थी, गांधी जी ने लोक सेवा, लोक-शिक्षा, लोक-जागृति, लोक संघर्ष से इंडियन ओपिनियन को जोड़कर प्रवासी हिंदुस्तानियों का मुख-पत्र बना दिया और अपने देश बन्धुओं को एक मंच पर लाकर मुक्ति और संघर्ष के अपने दर्शन का सहभागी बना दिया। "गांधी जी स्वयं पत्रकार थे और पत्रकारिता को वे वैचारिक क्रांति का एक सशक्त माध्यम मानते थे। उनके हाथ में अपने पत्र थे। विभिन्न भाषाओं में अनेक पत्र प्रकाशित हो रहे थे, जिन पर गांधी जी का प्रभाव था। और जो सत्याग्रह-आंदोलन के प्रति प्रतिश्रुत थे।'' (ए हिंदी ऑफ द प्रेस इन इंडिया, लेखक-एस. नटराजन, पृ. १९०-९१)। गांधी युग की हिंदी पत्रकारिता की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इस युग में साहित्यिक पत्रकारिता राजनीतिक पत्रकारिता से पृथक हुई। 'मतवाला', 'सुधा', 'चाँद', 'माधुरी', 'हंस' और 'विशाल भारत'-जैसी पत्रिकाएं इसी समय निकलीं। इन पत्रिकाओं में गांधी-युग की मूल-चेतना मुखर है। ऐतिहासिक दृष्टि से बींसवीं शताब्दी के साथ ही आविर्भूत 'सरस्वती' साहित्यिक महत्व और जातीय स्वर की दृष्टि से इसी युग की पत्रिका थी। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र के शब्दों में-"देश का विवेक गांधी जी के सक्रिय समर्थन में था। पूरे जातीय बौद्धिक परिदृश्य पर गांधी के व्यक्तित्व का प्रभाव था। साहित्यिक पत्रकारिता

में गांधी जी के प्रभाव के रूप में समय-संवेदना मुखर थी। ध्यातव्य है कि गांधी युग ही हिंदी कविता का छायावादी युग है।'(हिंदी पत्रकारिता : जातीय अस्मिता की जागरण भूमिका, लेखक-डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ.५४)

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ शताब्दी में प्रारम्भ हो गया था और इसी समय हिंदी पत्रकारिता का उद्‌भव हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन की भाँति उस युग की पत्रकारिता समाज-सुधार मूलक, चरित्र प्रतिष्ठापक और जीवन मूल्यों की ओर संलग्न है। राष्ट्रीय फलक पर गांधी जी के आगमन के पश्चात राष्ट्रीयता और पत्रकारिता की धारा व्यापक रूप से प्रवाहित, व्यापक रूप से विस्तृत और प्राणवान हुई। जिसके परिणाम स्वरूप भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधारों को एक ओर जहाँ सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा और उनके जुल्मों का शिकार बनना पड़ा, वहीं पर पत्र-पत्रिकाओं, उसके संपादक, प्रकाशक तथा मुद्रकों को भी यातना सहने में बराबर का सहभागी बनना पड़ा। पद्माकर पाण्डेय के शब्दों में-"१९१५ में गांधी का भारत में आना और उनके द्वारा रचे गए विभिन्न कार्यक्रमों को अंजाम देने से लेकर १९४२ के अंग्रेजों भारत छोड़ों आंदोलन के साथ ही जो राष्ट्रीय चेतना पल्लवित-पुष्पित हुई, वह राष्ट्रीय आंदोलन की समाप्ति स्वराज्य प्राप्ति के साथ पूर्ण हुई। कहना न होगा कि भारत की पत्रकारिता ने और विशेष कर हिंदी पत्रकारिता ने इन आंदोलनों को अपने प्रकाशन के करोड़ों पृष्ठों के माध्यम से देश के कोने-कोने में जनसाधारण को न केवल परिचित कराया, अपितु विषय परिस्थितियों में उनमें उत्साह का संचार भी किया। राष्ट्रीय आंदोलन के कर्णधारों के साथ ही साथ पत्रिकाओं, उनके संपादकों तथा अन्य सम्बद्ध सभी लोगों को महान आहुतियां देनी पड़ी।'(राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और हिंदी पत्रकारिता, संपादक-डॉ. श्रीनिवास शर्मा, पृ०-२९९)

गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में पत्रकारिता में जो अनुभव प्राप्त किए थे, वे इतने विशद और पर्याप्त थे कि वे भारत में किसी भी समाचार-पत्र का संचालन तथा संपादन कर सकते थे। १९१४-१८ के प्रथम विश्वयुद्ध के समय, गांधी और उदारवादी नेताओं ने जनता की माँगों की पूर्ति के सरकारी आश्वासनों का भरोसा किया और वे युद्ध में सरकार की भरपूर मदद के पक्ष में थे। तिलक के नेतृत्व में कुछ अन्य लोगों का विचार था कि स्वायत्त शासन के लिए शीघ्रातिशीघ्र आंदोलन शुरू किया जाए। डॉ. एनी बिसेंट भी इस मांग के पक्ष में थीं और उन्होंने मद्रास स्टैंडर्ड (अंग्रेजी) को अपने हाथों में ले लिया और इसे नाम दिया 'न्यू इंडिया'। यह होमरूल आंदोलन का मुख पत्र था। ए.आर. देसाई ने लिखा है-"युद्धोत्तर काल में राष्ट्रीय जन आंदोलन की पहली लहर उठी। यह गहरे राजनीतिक एवं आर्थिक संकट और तज्जन्य जन विद्रोह का परिणाम थी। गांधी, सी.आर.दास, मोतीलाल नेहरु, अलीबंधु, हजरत मोहानी और कांग्रेस एवं खिलाफत संगठनों के अन्य नेताओं ने इस आंदोलन का पथ प्रदर्शन किया। इस आंदोलन ने भारतीय जनता की राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्ति और गति प्रदान की और इसके कारण भारतीय राष्ट्रवादी अखबारों की संख्या और बढ़ी।' (राष्ट्रीय मुक्त संघर्ष और हिंदी पत्रकारिता, पृ०-३४६-४७)। गांधी जी की पत्रकारिता में लोक, प्रयोग तथा अनुभव में निजी स्वार्थ तथा धनार्जन का लेश मात्र भी न था। बल्कि वे हिंदुस्तानियों के अधिकारों, स्वाभिमान, संस्कृति, अस्मिता की रक्षा हेतु महान लक्ष्यों तथा महान आर्दशों को लेकर उतरे थे। उन्होंने देशवासियों को, हिंदुस्तानियों को शिक्षित किया और उनमें नई आधुनिक चेतना पैदा की। डॉ. कमल किशोर गोयनका लिखते हैं- "गांधी ने अंग्रेजी समाचार-पत्र 'यंग इंडिया' और गुजराती समाचार पत्र 'नवजीवन' का कार्यभार लगभग एक साथ संभाल लिया था। गांधी के लिए इनकी व्यवस्था आसान नहीं थी, क्योंकि 'यंग इंडिया' और 'बॉम्बे क्रानिकल' दोनों बम्बई से निकलते थे और 'नवजीवन' अहमदाबाद से। इसी बीच 'बॉम्बे क्रानिकल' फिर जी उठा था। इस कारण 'यंग इंडिया' को पुन: साप्ताहिक बना दिया गया। गांधी

ने एक निर्णय लिया कि वे 'यंग इंडिया' को भी अहमदाबाद ले आए। गांधी को दो स्थानों से समाचार-पत्र को निकालने में कठिनाई होती थी तथा दो अलग-अलग स्थानों से निकलते थे। खर्च भी अधिक पड़ता था।'' (गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान, लेखक-डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ.८६)

डॉ. कमलकिशोर गोयनका के शब्दों में-"गांधी जी अपनी स्वतंत्रता तथा संस्कृति के लिए सामाजिक सुधार तथा एकता के लिए प्रयत्न किया, भारतीयों को संगठित किया, स्वाभिमान तथा अधिकारों के लिए समाचार पत्र निकाले तथा जेल यात्राएं की। दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' परदेश में भी स्वेदशानुभूति एवं देशाभिमान से परिपूर्ण समाचार पत्र था। गांधी जी ने सही लिखा था कि 'इंडियन ओपिनियन' में उन्होंने अपनी आत्मा उड़ेल दी थी। यह भारतीय आत्मा ही थी, जिसने गांधी से नेटाल 'इंडियन कांग्रेस' की स्थापना कराई, 'हरी पुस्तिका' एवं 'हिंद स्वराज' लिखवाया। 'इंडियन ओपिनियन', 'नवजीवन', 'यंग इंडिया', 'हरिजन' आदि समाचार पत्रों को निकलवाया और समाचार पत्रों का उपयोग राष्ट्रीय चैतन्य एवं मुक्ति के लिए करवाया।'(पाण्डुलिपि-३,जनवरी-मार्च-२०११,पृ०-३१७)। इस प्रकार हम देखते हैं कि दक्षिण अफ्रीका हो या भारत, पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय मुक्ति के लिए एक ही दर्शन था। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समूल नष्ट करके स्वराज्य प्राप्ति का संघर्ष था। गांधी ऐसे समाचार-पत्रों को राष्ट्रवादी अखबार मानते हैं जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हैं, लोकमत जागृत करते हैं तथा जो स्वराज्य आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाते हैं। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिंद स्वराज' गांधी के स्वराज्य दर्शन का जीवन है, जिसके मूल में भारत का राष्ट्रहित एवं सांस्कृतिक उत्कर्ष है। गांधी की यह राष्ट्रीयता ही भारतीय पत्रकारिता का मूलाधार है। पराधीन भारत में पत्रकारिता का यही एक मात्र प्रतिमान हो सकता था।

गांधी जी ने 'इंडियन ओपिनियन' से अपनी पत्रकारिता का आरंभ किया था। १९१५ में भारत में आने के बाद 'बॉम्बे क्रानिकल' एवं 'सत्याग्रही' का १०-१५ दिन संपादन करने के बाद नवजीवन, यंग इंडिया तथा हरिजन का संपादन किया। 'बॉम्बे क्रानिकल' तथा 'सत्याग्रही' के तो एक-दो अंक ही गांधी जी के संपादकत्व में निकला। गांधी का मार्ग देश को आजादी दिलाना, लोक सेवा और लोक जागृति था। उनका मानना था कि पत्रकारिता को व्यवसाय बनाने से दूषित होती है और लोक सेवा के लक्ष्य से दूर हो जाती है। वे लिखते हैं-"इंडियन ओपिनियन को यदि धनार्जन का एक व्यवसाय बनाएं तो हमें जनता से यह आशा भी छोड़नी होगी कि वह समाचार पत्र को, देश-भक्ति, परोपकार या लोक-कल्याण का काम करने वाले माने और वह जनता की शुभकामना, सदाशयता और सहायता पर पूर्ण रूप से निर्भर रहे।'' (गांधी वाङ्मय खण्ड-९,पृ०-४७९)। पत्रकारिता उनके मिशन एवं सेवा का आधार बनी। उन्होंने पत्रकारिता को व्यापार से अस्वीकार किया। डॉ. कमल किशोर गोयनका के शब्दों में-"लगभग १०-११ वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका में पत्रकारिता की और सत्याग्रह के जीवन दर्शन के साथ पत्रकारिता के अपने प्रतिमानों को अपने अनुभवों और प्रयोगों द्वारा आविष्कृत किया। पत्रकारिता का उन्होंने अध्ययन नहीं किया था और न वे प्राफेशनल पत्रकार थे, किंतु उन्होंने पत्रकारिता के वैश्विक परिदृश्य को गंभीरता से देखा-परखा था।''(गांधी पत्रकारिता के प्रतिमान, लेखक-डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृ.-५८)। पत्रकारिता की मशाल उनके हृदय में सदा जलती रही उनके लक्ष्यों को सर्वत्र प्रकाशित करती रही। इंडियन ओपिनियन के आरंभ होने से पहले गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीय प्रवासियों की समस्याओं के समाधान के लिए बराबर लगे रहे। उक्त पत्र के प्रकाशन संपादन, प्रबंधन एवं संचालन के लगभग ग्यारह वर्षों की अपनी पत्रकारिता से गांधी ने अपना एक मॉडल तैयार किया। दक्षिण अफ्रीका में आज भी गांधी के नाम के आगे लोगों के सिर झुक जाते हैं। गांधी जी ने सबसे पहले दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी और उन्हें कई काले कानूनों से मुक्ति दिलाई।

गांधी जी ने 'हरिजन' का संपादन किया। वे अंग्रेजी शासन के इस प्रतिबंध को मान लिए थे कि वे हरिजन-सेवा तक सीमित रहेंगे और राजनीतिक विषयक सामग्री से दूर रहेंगे। यही कारण है कि उक्त पत्र अस्पृश्यता निवारण और उसके आंदोलन तक सीमित रहा। गांधी जी सामाजिक सुधार से स्वराज्य तक पहुँचना चाहते थे। गांधी की सोच थी कि पत्रकारिता नि:स्वार्थ भाव से समाज तथा देश की सेवा के लिए होनी चाहिए तथा जनता के मनोभावों को निर्भयता तथा निश्चयात्मक रूप में व्यक्त करना चाहिए, इसलिए घोषणा करते हैं कि 'नवजीवन' का उद्देश्य 'स्वराज्य' प्राप्ति है। यह पत्र भारतीय भाषा गुजराती में और बाद में हिंदी आदि भाषाओं में निकलता रहा जो राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण था। भारत-लोक की सेवा तथा लोकशिक्षा ही गांधी की राष्ट्रीयता के अंग थे। 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) का भी वैचारिक आधार राष्ट्रीयता थी। गांधी जी का रचनात्मक सत्याग्रह लोकमत के जागरण और स्वराज्य के लिए था। वे लिखते हैं-"अन्याय का विरोध करने के लिए भाषण, सभा-सम्मेलन तथा मुद्रण की स्वतंत्रता शक्तिशाली और महत्वपूर्ण है।'' (यंग इंडिया,१२ जनवरी-१९२२)। गांधी जी पत्र के ग्राहकों तथा पाठकों के साथ आत्मीय संबंध जोड़ते हैं। गांधी का मानना था-"पत्रकारों का कर्तव्य है कि वे पाठकों को सिर्फ शुद्ध तथ्य ही दें। अपने पापी पेट के लिए उत्तेजक तथा घबराहट उत्पन्न करने वाले समाचार छापकर समाचार-पत्र की बिक्री बढ़ाने का काम देशहित में नहीं है। समाचार-पत्र राज्य की चौथी शक्ति अथवा चौथा स्तंभ है, इस कारण उसे धनार्जन का साधन बनाकर उसकी गरिमा को ठेस पहुँचाना उचित नहीं है।'' (संपूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड-६९,पृ०-१७५)। गांधी जी अपनी देश-भक्ति एवं पवित्र उद्देश्यों से भारतीय पत्रकारिता में एक उच्च कोटि की परंपरा का विकास किया और जिसे उन्होंने पत्रकारिता की सर्वोच्य परंपरा कहा था। गांधी जी की सर्वोत्तम आर्दश मूलक पत्रकारिता में राष्ट्रहित, नैतिकता, सत्यता, नि:स्वार्थता आदि श्रेष्ठ मानवीयगुण थे, जो आचारण मूलक थे। गांधी ने इस पत्रकारिता को अपने जीवन में उतारा उसका व्यवहार में, आचरण में सार्थकता दी। यही कारण है कि पत्रकारिता में एक सर्वोत्तम प्रतिमान तथा परंपरा का विकास किया। वे पत्रकार के लिए निर्भयता आवश्यक मानते हैं। वे जीवन के समान पत्रकार में भी नैतकिता और शुद्धता चाहते हैं। उनके लिए साध्य और साधन की दोनों की पवित्रता आवश्यक है। पत्रकार दब्बू न हो, आदर्शच्यूत न हो, दब्बू एवं कायर न हो। अपने विश्वासों पर मजबूत होकर सरकार के कार्यों की आलोचना करें। गांधी जी भारतीय पत्रकारिता के आदर्श पुरुष थे, मसीहा थे। उन्होंने भारतीय पत्रकारिता के प्रतिमानों का निर्माण किया। आज के आर्दश पत्रकार, प्रतिष्ठित संपादक गांधी जी की पत्रकारिता दर्शन से प्रेरणा ले रहे हैं। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में वर्तमान और भविष्य में गांधी जी की प्रासंगिकता तथा स्थान सदैव अमिट रहेगा।

गांधी के लोकनायकत्व पर देश की आम जनता और बुद्धिजीवी समाज की आस्था दृढ़तर हो चली थी। तिलकपंथी बाबूराव विष्णु पराड़कर, माखनलाल चतुर्वेदी और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे शीर्षस्थ कृति संपादकों ने अपना प्रत्यय गांधी-विचारधारा से जोड़ लिया था और गांधी के सत्याग्रह तथा राजनीतिक कार्य-पंथा के प्रवक्ता बन गए थे। इस युग की पत्रिका 'मतवाला' देश के उद्धार के लिए गांधी जी के नेतृत्व को अपरिहार्य मानती थी। गांधी ने अपने दायित्व बोध और असाधारण संवेदनशील व्यक्तित्व से अपने समय और समाज को आंदोलित और प्रभावित किया। उनके बहुआयामी जीवन, व्यक्तित्व में देश की स्वतंत्रता, देश की समृद्धि, हिंदी का प्रचार-प्रसार का लक्ष्य, उनके आचरण की शुद्धता तथा आत्म एवं देश गौरव की प्रबल भावना से आयत्त था। उनकी पत्रकारिता में ऊँचाइयों और मानदंडों की स्थापना का सत्प्रयास था। गांधी हिंदी तथा भारतीय पत्रकारिता के सर्वश्रेष्ठ प्रतिमान हैं। कमल किशोर गोयनका ने लिखा है-"भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में महात्मा गांधी की पत्रकारिता का प्रमुख स्थान है। उनकी पत्रकारिता का मूलाधार

राष्ट्रीयता थी, पत्रकारों के दायित्व बोध की रूपरेखा प्रस्तुत की थी, प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन एवं विज्ञापन का बहिष्कार किया था, पाठकों से सीधा संपर्क किया था, संवाद–समितियों की कार्य–प्रणाली के तथ्य दिए थे, देशी भाषाओं की पत्रकारिता को प्रोत्साहन दिया था तथा पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना था। गांधी पत्रकार–संघ को मजबूत करना चाहते थे और वे इस पक्ष में थे कि पत्रकारों को स्वयं ही अपने लिए आचार–संहिता बनानी चाहिए।'' इतिहासकारों का मत है कि बालगंगाधर तिलक ने अंग्रेजों के हाथ से शासन माँगने की चेतना जगाई थी और सबसे पहले उन्होंने ही स्वराज्य को अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया था परंतु गाँवों में रहने वाले किसानों और मजदूरों तक वह आवाज नहीं पहुँची थी। यह महत कार्य गांधी युग ने पूरा किया, जो १९१९ में रॉयल एक्ट के विरोध के साथ आरंभ हुआ था। श्री लुइफिशर ने लिखा है कि–"गांधी ने भारत के किसानों, मजदूरों, बुद्धिजीवियों को समाज में अपनी निजी महत्व की भावना प्रदान की। उन्होंने उन्हें सिर्फ स्वतंत्रता आंदोलन में भरती ही नहीं किया, बल्कि उनका व्यक्तिगत–मान भी बढ़ाया इस प्रकार उन्हें सर्ववादी सिद्धांत का विरोधी बना दिया।''(श्री लुइफिशर, साप्ताहिक हिंदुस्तान, ५ अक्तूबर–१९५२)

गांधी युग की हिंदी पत्रकारिता इसी जातीय संवेदना पर केंद्रित थी। गांधी जी ऐसे महापुरूष थे, जिनमें जनता के हृदय तक पहुँच जाने की विलक्षण स्वभाव–सिद्ध कला थी। बाबूराव विष्णु पराड़कर, लक्ष्मण नारायण गर्दे और झावरमल शर्मा हिंदी के ऐसे ही कृति पत्रकार हैं, जिनके विवेक ने गांधी जी की क्षमता पहचान ली थी। 'आज' में १३ फरवरी–१९२५ को पराड़कर जी ने लिखा था–"महात्मा जी के असीम विश्वास के सामने लाला जी ने भी सिर झुकाया था। नागपुर में महात्मा जी का नेतृत्व स्वीकार करना पड़ा।' महात्मा जी पत्रकारिता के ऊँचे आदर्शों और पत्रकार के गुरुतर दायित्व को पूर्णता समझते थे। अपनी जागरूक चर्या द्वारा लोकनायक का दायित्व पूरा करने के लिए सदा सक्रिय रहते थे।

गांधी जी के लोकनायकत्व पर देश की आम जनता और बुद्धिजीवी समाज की आस्था दृढ़ हो चली थी। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने लिखा है–"इस युग की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'मतवाला' देश के उद्धार के लिए गांधी के नेतृत्व को अपरिहार्य मानती थी। स्मरणीय है, 'मतवाला मंडल' में निराला और उग्र जैसे उग्र विचार के कृति रचनाकार थे। ३१ मई १९२४ की संपादकीय टिप्पणी की अंतिम पंक्तियां दृष्टव्य है– 'यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाषी है, अपने देश में स्वराज्य की प्रतिष्ठा चाहते हैं, तो तन, मन, धन से अपने नेता गांधी जी के आदेशों का पालन करना आरंभ कीजिए।' इसी बल के साथ मतवाला २६ जनवरी १९२४ की संपादकीय टिप्पणी के द्वारा गांधी जी के पक्ष–समर्थन किया था। हमें बिना विलंब सत्याग्रह की शरण लेकर लीडरों को अपना पिछलगुआ बनने के लिए बाध्य करना चाहिए, क्योंकि गांधीविहीन स्वराज्य यदि स्वर्ग से भी सुंदर हो तो वह नरक के समान त्याज्य है। उस पर एक महात्मा पर ही शत–शत स्वराज्य न्यौछावर करने योग्य है।'' (राष्ट्रीय मुक्त संघर्ष और हिंदी पत्रकारिता, संपादक–डॉ. श्रीनिवास शर्मा,पृ०–२८६)। "गांधी जी स्वयं महान पत्रकार और कृति संपादक थे। और पत्रकारिता विषयक उनके अपने प्रतिमान थे। हिंदी 'नवजीवन' में प्रकाशित गांधी जी के पत्रकारिता विषयक आदर्श को गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' में १७ नवंबर १९२४ को उद्धृत किया था– ''संपादक का पद आजीविका के लिए नहीं बल्कि केवल लोक–सेवा के लिए है।'' ''गांधी जी राष्ट्रीय भूमिका पर कार्य करते हुए मानव–मांगल्य के लिए सचेत एवं चिंतित रहते थे और उसके लिए वे लगातार ऐसे उपक्रम, प्रयास करते रहते थे, जिससे मानवता बर्बरता की ओर न बढ़े। गांधी जी अपने युग के ऐसे नेता थे जिनका देश की समग्र चेतना पर प्रभाव था। राजनीति के साथ ही शिक्षा और साहित्य पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा। उनका पैगंबर

जैसी दृष्टि थी और उन्होंने महसूस किया कि युद्धों से राष्ट्रों के बीच की खाई और अधिक चौड़ी होगी और उनके बीच समझदारी घटेगी इस प्रकार अधिक युद्धों तथा अधिक घृणा के लिए रास्ता तैयार होगा और अंतत: मानवता बर्बरता तक पहुँच जाएगी। यह विश्व शांति के लिए गांधी जी की देन है।'' (लूई फिशर–साप्ताहिक हिंदुस्तान, ५ अक्तूबर–१९५३)।

महात्मा गांधी देश के जन–जन तक अपनी बात पहुँचाकर उनके मन में स्वांतत्र्य जगाने के व्रती थे। इस व्रत के अपेक्षित साधन और अनुशासन के रूप में उन्होंने पत्रकारिता और हिंदी भाषा की महत्ता को सटीक ढंग से समझा था। हिंदी नवजीवन के संपादक महात्मा गांधी थे। २७ मार्च १९३० के अंक में गांधी जी के प्रमुख संपादकीय निबंध का शीर्षक है–'राजद्रोह धर्म है'। स्वातंत्र्य–चेतना का जागरण और प्रसार उस युग के हिंदी पत्रकारों का एकांत लक्ष्य था, गणेश शंकर विद्यार्थी की अकुंठ साधना लोकशक्ति को जगाने के मूल में उनकी वही अवधारणा थी, जिसके प्रवक्ता उस काल के नायक, पत्रकारिता के प्रतिमान महात्मा गांधी थे, कि साम्राज्यवादी गुमान को नमित करने और शासन की निरंकुशता (प्रताप ८ दिसंबर १९२४) को मर्यादित करने वाली यह एक मात्र शक्ति है?

'यंग इंडिया' की कुछ टिप्पणियों के कारण गांधी जी १३ मार्च १९२२ को गिरफ्तार कर लिए गए। सेठ गोविन्द दास ने इसकी चर्चा इस प्रकार की है–"आखिर १३ मार्च १९२२ को गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गए और राजद्रोह के अपराध में उन्हें सेशन सुपुर्द कर दिया गया। यह ऐतिहासिक मुकदमा १८ मार्च को अहमदाबाद में आरंभ हुआ। गांधी जी पर 'यंग इंडिया' में लेख लिखे गए। कतिपय लेखों को लेकर मुकदमा चलाया गया था। कैसा विचित्र कैदी था यह जिसकी शांत, कुश और अजेय देह का अदालत में प्रवेश होते ही सब उसके सम्मानार्थ उठ खड़े हुए। अभियोग के पढ़े जाने पर उसे एक दम स्वीकार कर लिया गांधी जी ने। इसके बाद जो लिखित बयान गांधी जी ने दिया, वह संसार के इतिहास की उत्कृष्ट सामग्री है।''

डॉ. कमल किशोर गोयनका के शब्दों में– ''भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को समूल नष्ट करके स्वराज्य प्राप्ति का संघर्ष था। हिंदुस्तानियों के इस स्वराज्य संघर्ष में गांधी ने अपनी पत्रकारिता का उपयोग लोक–सेवा, लोक शिक्षा, लोक–जागरण और लोक–संघर्ष में करके उसे राष्ट्रीयता के उच्चतम शिखर तक पहुँचा दिया। गांधी का लक्ष्य जनता का स्वराज्य था, इस कारण गांधी ने देश की भाषाओं में पत्रकारिता को महत्व दिया। उनका उद्देश्य पवित्र था, अत: पत्रकारिता भी पवित्र थी। उनकी पत्रकारिता में पवित्रता, नैतिकता, शुद्धता, सत्यता, लोक–हित, लोक–सेवा, स्वार्थ विसर्जन तथा मानवीयता विद्यमान थी। वे राष्ट्रीय पत्रकार थे। उन्होंने अपनी पत्रकारिता में राष्ट्रीयता को मूलाधार बनाकर पत्रकारिता की एक सर्वोत्तम परंपरा विकसित की तथा उसे अपने आचरण में उतार एक सर्वोत्तम प्रतिमान एवं परंपरा का रूप दिया और अपने युग का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय–दर्शन बनें। (पाण्डुलिपि, अंक–३,पृ. ३१९)

गांधी जी पत्रकारिता इस बात में बहुत बड़ी है कि वे लोक–जीवन के रंग में घुल–मिल जाते थे। उस समय उन्हें अपनी इकाई की गुरूता बिल्कुल याद नहीं रहती थी, केवल उत्तरदायित्व और सोचे हुए कार्य का ही उन्हें भान रहता था। जिस दिन हमने गांधी जी को खोया, उस दिन सारी पत्रकारिता देश–भक्ति के धर्म से हटकर पुन: राजनीति का जकड़–व्याल हो गई। सच्चे पत्रकार के नाते, वह लिखते थे, जिसकी जनजीवन की आवश्यकता होती थी। उनकी समस्त पत्रकारिता में –समस्त अभिव्यक्ति में एक महान दर्शन है। वे घटना के सत्य की जितनी रक्षा करते थे, उतना ही दार्शनिक पहलू को भी संभाला करते थे। आज तो भ्रष्ट और विद्रूप पत्रकारिता का दौर शुरू हो गया है। पत्रकारिता के आदर्श मानदंड समाप्त हो गए हैं। वास्तव में गांधी जी भारतीय पत्रकारिता के मार्तदंड, मानदंड और प्रतिमान पुरूष थे।

संपर्क: संपादक (नया परिदृश्य), गेट बाजार (एन.जे.पी.), पो. भक्तिनगर, सिलीगुड़ी (प. बंगाल), **मो. 9434494430**

वैकल्पिक मीडिया : बढ़ता दायरा और विकल्प

डॉ. रामशंकर

दुनियाभर में इक्कीसवीं सदी में एक खास मीडिया का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे वैकल्पिक मीडिया के नाम से जाना जाता है। वैकल्पिक मीडिया का आशय ऐसी मीडिया (समाचार पत्र-पत्रिकाएं, रेडियो, टीवी सिनेमा व इंटरनेट आदि) से है, जो मुख्यधारा की मीडिया के प्रतिपक्ष में वैकल्पिक जानकारी प्रदान करती हैं। वैकल्पिक मीडिया को मुख्यधारा की मीडिया से हटकर देखा जाता है। मुख्यधारा के मीडिया वाणिज्यिक, सार्वजनिक रूप से समर्थित या सरकार के स्वामित्व वाली होती हैं। वैकल्पिक मीडिया के अंतर्गत उन खबरों को प्रसारित किया जाता है, जिन्हें मुख्यधारा के मीडिया में स्थान नहीं दिया जाता, लेकिन वे जन-सरोकारों से पूर्णत: जुड़ी होती हैं। प्राचीन काल में डुग्गी व मुनादी के माध्यम से खबरों का प्रसारण किया जाता था। औद्योगिक व विज्ञान के विकास ने संचार का चेहरा बदल दिया है, जिसमें मुनादी, डुग्गी आज की शैली में पैम्फ्लेट, पोस्टर व दीवार लेखन (भित्ति चित्र) में बदल गए हैं।

आज ज्यों ही हम मीडिया की बात करते हैं, हमारे जेहन में त्यों ही चौबीस घंटे वाचाल की तरह बोलने वाले तमाम समाचार चैनल व व्यवसाय निहितार्थ अखबार घूम जाते हैं। दिन भर एक्सक्लूसिव के नाम पर अपना राग अलापते रहते हैं। इस भागमभाग की स्थिति ने हमें तमाम समाचारों से वंचित कर दिया है। यही आज मुख्यधारा का मीडिया कहलाता है। मुख्यधारा का मीडिया आज सारे समाज पर छाया हुआ है, किंतु नीतिगत मसलों पर सामग्री का एक सिरे से अभाव नजर आता है। नीतिगत मसलों को मुख्यधारा मीडिया सतही रूप में पेश करता है, जबकि गैर मुनाफे से चलने वाले मीडिया संगठनों के प्रकाशनों में नीतिगत मसलों पर गंभीर विश्लेषण मिलता है।

वैकल्पिक मीडिया को व्यापक रूप में फैलाने में मुख्यधारा के मीडिया की अहम भूमिका है। जब मुख्यधारा की मीडिया में जन-सामान्य की बात को भुलाया जाने लगा और मसालेदार, औचित्यविहीन खबरें परोसी जाने लगी और साथ ही साथ जनता की अभिव्यक्ति को जन माध्यम में रोका जाने लगा, अखबारी खबरों पर संदेह किया जाने लगा, तब शनै: शनै: वैकल्पिक मीडिया का उत्थान इस सूचना युग में हुआ। यह वह संचार माध्यम का स्वरूप हो गया जो बार-बार मुख्यधारा की मीडिया के साथ खड़ा होने की कोशिश करता है।

वैकल्पिक मीडिया हमारे विकास के साथ बढ़ा है। स्वतंत्रता के समय लोग पर्चे छापकर अपने विरोध को दर्ज करते थे। अपनी बात लोगों तक पहुँचाते थे। तब भी अखबार थे, लेकिन उसमें ब्रिटिश

सरकार के खिलाफ नहीं लिखा जा सकता था। आज वहीं मुख्यधारा के मीडिया से कट जाने वाली खबरें वैकल्पिक मीडिया के द्वारा अपनी अलग पहचान बना रही हैं। मुख्यधारा के टीवी चैनल और अखबार जैसे संचार माध्यमों की जगह अब सच्चे जन–पक्ष का निर्माण करने में लघु पत्रिकाएँ और सामुदायिक रेडियो बड़ी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। किसी विशेष व्यवस्था परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर अनेक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित की जा रही हैं।

इंटरनेट के माध्यम से वेबसाइट, फेसबुक, ट्वीटर और सोशल नेटवर्किंग साइट्स का भी तेजी से विकास हो रहा है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सामुदायिक रेडियो बड़ी तेजी से पुष्पित एवं पल्लवित हो रहे हैं। किसी विशेष समुदाय में विभिन्न प्रकार से लोगों को वैकल्पिक संचार माध्यमों द्वारा जानकारी उपलब्ध कराई जा रही है। अफ्रीका, मिश्र व मध्य पूर्व देशों में तानाशाही और स्वयंभू व्यवस्थाओं के खिलाफ हुए विद्रोह वैकल्पिक मीडिया की ही देन हैं। पंचायतों में जहाँ पहले महिलाएं प्रतिनिधि पर या पति आश्रित हुआ करती थीं, वहीं आज महिलाएं पंचायतों में साहस पूर्वक राजनीति कर रही हैं। बैनर, पोस्टर, होर्डिंग, दीवारों पर लिखे वक्तव्य, कैटलाग, कार्टून, मेले में लगी प्रदर्शनी, सामुदायिक रेडियो आदि सभी कुछ वैकल्पिक मीडिया का अंग है। इंटरनेट और मोबाइल के विकास ने इसे द्रुत गति प्रदान किया है।

मिशेल अल्बर्ट (Michael Albert) (2004) ने अपने मेनिफेस्टो `What makes alternative media alternative?' में वैकल्पिक मीडिया को परिभाषित करते हुए लिखा है "An alternative media institution does not maximize profits, does not primarily sell audience to advertisers for revenues, is structured to subvert society's defining hierarchical social relationships, and is structurally profoundly different from and as independent of other major social institution, particularly corporations, as it can be. Many segments of civil society are politically motivated communities promoting numerous causes and holding various versions of democracy" ''एक वैकल्पिक मीडिया अधिकतम संस्था मुनाफा नहीं, मुख्य रूप से दर्शकों को राजस्व के लिए विज्ञापनदाताओं को बेचा नहीं करता है, विकृत समाज के पदानुक्रमित सामाजिक रिश्तों को परिभाषित करने के लिए संरचित है और संरचनात्मक गहराई से और अन्य प्रमुख सामाजिक संस्था, विशेषकर निगमों से यह स्वतंत्र रूप से अलग हो सकता है। सामाजिक संस्थाओं के कई खंड, राजनीति से प्रेरित समुदायों को बढ़ावा देने के लिए लोकतंत्र के विभिन्न संस्करणों में सम्मिलित हैं।''

John Ehrenberg (1999) ने कहा है कि– "A democratic sphere of public action that limits the thrust of state power" सार्वजनिक क्षेत्र की सीमा के एक लोकतांत्रिक राज्य की सत्ता पर विशेष बल दिया जाता है।

वैकल्पिक मीडिया पर युनेस्को रिपोर्ट के अनुसार "ये समूह द्वारा इस प्रकार के लिए सचेतन राजनीतिक और सामाजिक माँगे हैं, जिनसे संचार होता है लेकिन दूसरे तथ्यों के प्रसंग में विषम संरचना और एक अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक वास्तविकता बनाते हैं।" वैकल्पिक मीडिया की अवधारणात्मक स्पष्टता देते हुए लिखा है कि "यहाँ तक वैकल्पिक मीडिया के एक ही क्षेत्र के अंदर बहुत विविधताएँ हैं। (शैली, योगदान व संदर्भ के दृष्टिकोण से)" फ्रांस में सर्वप्रथम मई १९६८ ई. में छात्र और श्रमिकों के विद्रोह के बाद 'वैकल्पिक' अखबार दिखाई पड़ा। इसका प्रथम प्रकाशन १८ अप्रैल १९७३ ई. को आया, जिसमें इसके प्रकाश में आने का उल्लेख था।

सामान्य मीडिया यानी मुख्यधारा मीडिया को भी हवा में संचालित नहीं किया जा सकता। उसके लिए भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक ढाँचा व राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्दे होते हैं। लेकिन वैकल्पिक मीडिया भी

स्थानीय, सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना की बात करते हैं। ये एक पूर्ण उद्देश्य को लेकर चलते हैं, जिसमें स्थानीयता का बोध होता है। ये खासकर अपनी ब्रांडिंग के लिए कार्य नहीं करते हैं। ये पूर्णत: समाज पर आश्रित होते हैं। इनका मॉडल सहभागी मॉडल होता है।

वैकल्पिक मीडिया को परिभाषित करते हुए निको कार्पेंटियर (Nico Carpentier) और उसके साथियों ने अपनी पुस्तक 'अंडरस्टैंडिंग अल्टरनेटिव मीडिया' में लिखा है कि ''ऐसा मीडिया जो एक समय में विविधता और आकस्मिता को समावेशित करता हो, वैकल्पिक मीडिया कहलाता है। इसे अन्य नामों जैसे कम्यूनिटी (सामुदायिक) मीडिया, सिविल सोसाइटी मीडिया और रिजोमैटिक (rhizomatic) मीडिया आदि के रूप में जाना जाता है। हालाँकि मुख्यधारा के मीडिया ने वर्तमान में दर्शकों की भागीदारी को व्यवस्थित करने का प्रयास किया है, लेकिन वैकल्पिक मीडिया विशेष रूप से मीडिया में भागीदारी के रूपों को और अधिक सफल बनाने में साबित हुआ है, चाहे यह ऑनलाइन हो या ऑफलाइन। दोनों ही रूपों में अपने को कुशल रूप में दिखने की कोशिश करता है।''

विद्यमान वर्चस्ववादी व्यवस्था की आलोचनात्मक प्रवृत्ति को धारण कर असहमति का स्वर मुखर करने वाले मीडिया का कोई रूप जैसे समाचार पत्रिका, पर्चा, अखबार, रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, इंटरनेट आदि वैकल्पिक मीडिया होने का दावा कर सकता है। वैकल्पिक मीडिया से मिलते-जुलते कई प्रकार के मीडिया भी सक्रिय हैं, जिन्हें टेक्टिकल मीडिया, स्ट्रेटजिक मीडिया या अंडर ग्राउंड प्रेस के नाम से भी जाना जाता है। वैकल्पिक मीडिया उपरोक्त रूपों के अलावा अन्य रूपों में भी हो सकता है। वैकल्पिक मीडिया या उसके अन्य ये रूप कम से कम व्यवसायिक या सरकारी मीडिया से दो अर्थों में भिन्न होते हैं। पहला, व्यवसायिकता या सरकारी स्वामित्व वाला मीडिया खुद को निष्पक्ष व तटस्थ बताता है। लेकिन वैकल्पिक मीडिया कहता है कि मुख्यधारा के मीडिया की निष्पक्षता का विचार तो असल में एक आवरण है जिसके पीछे निहित स्वार्थों की चालाक तरफदारी छिपी होती है।

"वैकल्पिक मीडिया बिना किसी पक्षपात या लाग-लपेट के गरीबों, वंचितों, हाशियाग्रस्त समूहों की पैरोकारी करने वाला या पक्षधर करार देता है।" अर्थात वैकल्पिक मीडिया गरीब जनता जिनकी आवाज या जिनके मुद्दों को मुख्यधारा के मीडिया में पर्याप्त स्थान नहीं दिया जाता, उनके ही पक्षधर होने की बात पर वैकल्पिक मीडिया पूर्णत: केंद्रित होती है। वैकल्पिक मीडिया की गरीब एवं वंचित लोगों की पक्षधर पत्रकारिता से इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में एडवोकेसी पत्रकारिता का लगभग जन्म माना जाता है। दूसरा, वैकल्पिक मीडिया अपने तेवर के साथ-साथ अपनी सारवस्तु, प्रस्तुतीकरण, उत्पादन, मुद्दों, वितरण और अपने पाठकों, दर्शकों एवं श्रोताओं के संबद्ध में मुख्यधारा के मीडिया से अलग होते हैं। वैकल्पिक मीडिया के संदर्भ में यदि किसी विशेष पहलू की बात करें तो व्यवसयिकता का समावेश न होना इसकी केंद्रीयता में शामिल है तथा इसकी भिन्नता भी अ-व्यवसायिक होना इसकी भिन्नता है।

प्रसिद्ध ब्लॉगर एवं फिल्म समीक्षक अजित राय ने लिखा है कि नॉम चोम्स्की ने कहा है कि "पूंजी और सत्ता के जन विरोधी दौर में प्रौद्योगिकी आम आदमी के पक्ष में खड़ी दिखाई दे रही है।" प्रौद्योगिकी के दौर में आज आम आदमी के मुद्दों को प्रमुखता दी जा रही है। अभिव्यक्ति के नए प्रौद्योगिकीय माध्यमों के आगमन से आमजन के मुद्दों को एक गतिशीलता मिली है। और वैकल्पिक मीडिया की अवधारणात्मक स्पष्टता को अधिक व्यापक बनाने में मदद मिल रही है।

Tony Dowmunt ने अपनी पुस्तक 'The Alternative Media Handbook cesb Alternative… or radical? अध्याय में "Atton Chris" ने वैकल्पिक मीडिया के अर्थ को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ऐसे मीडिया प्रोजेक्ट, नेटवर्क जो

विभिन्न तरह के विकास के प्रतिरोध के रूपों में, जो मुख्यधारा अपने फायदों के रूप में कार्य कर रहा है, वैकल्पिक मीडिया है। इस परिभाषा का अर्थ एक जन समग्र को कॉपीराइट के प्रतिरोध में अभियान को फैलाना है।" Atton Chris ऐसी मीडिया में विश्वास करते हैं जो विभिन्न स्तरों एवं रूपों में प्रकाशन स्वतंत्र हो, उस एक बड़े समूह का अधिकार न हो। वैकल्पिक मीडिया की विभिन्न विशेषताएँ हैं:

I. राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक पक्ष के मूलभूत सामग्री का प्रकाशन करना,

II. पुनरुत्पादन प्रौद्योगिकीय आविष्कारों को बढ़ावा देकर छापना।

III. संगठनों के सामाजिक योगदान एवं संबंधों की व्यवसायीकरण पर रोक।

IV. संचार प्रक्रिया का सफल स्थानांतरण।

वैकल्पिक मीडिया के बारे में Atton Chris का मानना है कि ऐसी मीडिया जो कमजोर वर्ग के लिए लिखती व सोचती हो और पूर्णत: साधारण (Common) हो। सामान्यत: मूलभूत व स्वतंत्र मीडिया जो एक ऐक्टिविस्ट की तरह कार्य करती है।

वैकल्पिक मीडिया से आशय एक ऐसी मीडिया से है जो मुख्यधारा मीडिया के संदर्भ में वैकल्पिक जानकारी प्रदान करती है। वैकल्पिक मीडिया में वैकल्पिक शब्द से तात्पर्य है कि वह सब जो मुख्यधारा के मीडिया के स्रोतों से प्राप्त न हो। वैकल्पिक मीडिया को पारिभाषित करते हुए कुछ तथ्य सामने आए हैं जो निम्नलिखित हैं–

I. "ऐसा समाचार प्रकाशक जो व्यापारिक न हो, उसके विचार या मुद्दे लाभ पर केंद्रित न हो, उसके विचारों एवं समाचारों के प्रकाशन का एक उद्देश्य हो।

II.उसके प्रकाशन की सामग्री पूर्णत: सामाजिक उत्तरदायित्व पर निर्भर हो। उसके लेखन में एक विशेष प्रकार का बोध होता हो।

III. समाचारों का प्रकाशन लगभग जनमानस को प्रेरित करने वाला हो।

IV. वैकल्पिक मीडिया छोटे–छोटे उद्देश्यों पर केंद्रित रहता है।

V. इसका कवरेज नियमित नहीं होता है।

VI. प्रकाशन लगभग समाचार उपलब्धता पर केंद्रित रहता है।"

वैकल्पिक मीडिया में लगभग उन समाचारों को कवर किया जाता है, जिन्हें मुख्यधारा की पत्रकारिता में स्थान नहीं दिया जाता है, जिनको मुख्यधारा की मीडिया और मार्केट प्लेस में स्थान नहीं मिलता और ये सामाजिक मुद्दों से जुड़ी होती हैं। वैकल्पिक मीडिया मुख्यधारा मीडिया का पूरक है, क्योंकि इसमें वैविध्य और आकस्मिकता विद्यमान होती है। Atton Chris का कहना है कि "वैकल्पिक मीडिया विचारधारा, प्रभुत्व और वर्चस्व की gramscian धारणा से अविभाज्य है।" Atton Chris के कथन से स्पष्ट है कि वैकल्पिक मीडिया प्रभुत्वहीन होती है इसका जनमानस से सीधा और सरलतम संबंध होता है।

वैकल्पिक मीडिया में जनमानस के हितों को प्रमुखता दी जाती है तथा ग्रामीण–जन अर्थात एक कमजोर वर्ग के हितों के लिए यह पूर्णत: समर्पित होते हैं। यह स्वतंत्र व मुक्त होकर काम करते हैं तथा इसमें विज्ञापन को अस्वीकृत किया जाता है, लेकिन विज्ञापन की अस्वीकार्यता का यह आशय नहीं कि इसमें विज्ञापन का समावेश नहीं ही होगा। विज्ञापन जनचेतना व जागरूकता से जुड़े होने पर उनको स्वीकार्यता मिलती है। विज्ञापन से प्राप्त आय का प्रयोग वैकल्पिक मीडिया को चलाये रखने के लिए किया जाता है। मुख्यधारा मीडिया की तरह अघोषित विज्ञापन के लिए नहीं किया जाता है।

टेक्टिकल और अंडरग्राउंड मीडिया को भी वैकल्पिक मीडिया के रूप में जाना जाता है। टेक्टिकल मीडिया की प्राथमिकता में स्थायित्व ग्रहण करने के विपरीत मीडिया स्फेयर में हस्तक्षेप कर हलचल मचाने की होती है। वैकल्पिक मीडिया की इन प्रवृत्तियों का जन्म साठ के दशक में उभरे प्रति–संस्कृति के आंदोलनों से हुआ।

लेकिन बर्लिन की दीवार गिरने के साथ इसका एक बार पुन: उदय हुआ। माना जाता है कि फ्रांसीसी दाशर्निक मिशेल दसर्त द्वारा १९८४ में लिखे गए निबंध 'द प्रेक्टिस ऑफ एवरीडे लाइफ' से मीडिया की इन प्रवृत्तियों को उनका यह नाम मिला। भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया हस्तक्षेप एवं प्रौद्योगिकी के विकास से मीडिया की इन प्रवृत्तियों का प्रचलन काफी तेज हुआ है। टेक्टिकल मीडिया ने कई तरह के कला एवं सामाजिक आंदोलनों से अपनी रणनीति ग्रहण की है। यह किसी व्यवसायिक मुद्दे और राजनीतिक मुहिम को आलोचनात्मक नजरिये से विश्लेषण करता है। यह मुख्यधारा के मीडिया के संदेशों को रैडिकली बदलकर प्रतिरोध में प्रभाव स्थापित करता है।

अंडरग्राउंड प्रेस का चलन बीसवीं सदी के साठ-सत्तर के दशक में प्रति-संस्कृति के आंदोलनों के मध्य शुरू हुआ। अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन और यूरोप के अन्य देशों में इस दौरान ऐसे पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन की शुरुआत हुई जो प्रेस की आजादी एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का लाभ उठाते हुए खुले तौर पर छपते थे और बाँटे जाते थे। इन अंडरग्राउंड प्रेस से निकलने वाले पर्चे, पोस्टर एवं अखबारों में छपी सामग्री असहमति के आंदोलनों को मजबूत कर रही थी। असहमति के स्वर को बुलंद करने के कारण प्रशासन के प्रकोप का भी सामना करना पड़ता था। इसी समय सोवियत संघ के देशों में भी अंडरग्राउंड प्रेस की परिकल्पना का उद्‌भव हुआ, यह परिकल्पना बिलकुल चालीस के दशक में हिटलर के नाजी कब्जे के देशों में प्रकाशित होने वाले भूमिगत अखबारों के बिलकुल समानांतर थीं। सोवियत संघ के सामिज्दात और पोलैंड में बिबुता जैसे प्रकाशन उल्लेखनीय हैं।

वैकल्पिकता किसी मीडिया की स्थिति जरूरी नहीं स्थायी ही हो। जैसे किसी मुद्दे को लेकर मीडिया के किसी भी वैकल्पिक माध्यम द्वारा किसी मुद्दे को मुखरता स्थापित की जा रही हो और मुद्दों की पूर्ति हो गई हो तो वह मीडिया समाप्त भी हो सकता है या वह परिस्थिति सापेक्ष भी हो सकता है। मसलन, किसी अधिनायकवादी सत्ता का विरोध कर रहे आंदोलन का दृष्टिकोण पेश करने वाला मीडिया वैकल्पिक की श्रेणी में माना जाता है। पर, उस सत्ता को अपदस्थ करके सरकार में आने वाली राजनीतिक ताकत का समर्थन करने वाला वही मीडिया वैकल्पिक होने का श्रेय लेने में नाकाम हो सकता है। लेकिन, अगर परिस्थिति बदलने पर भी यह मीडिया सत्तासीनों के प्रति आलोचनात्मक अपनाता रहता है, तो वह वैकल्पिक गुण को रखने में कामयाब हो पाता है।

भारत में वैकल्पिक मीडिया को देखने में उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन के दौरान अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के मीडिया की भूमिका इस परिस्थिति सापेक्षता की ऐतिहासिक प्रमाण हैं। अंग्रेजी के अधिकतर अखबार ब्रिटिश समर्थक होने के नाते सत्ता प्रदत्त सुविधाओं के समर्थक थे। आजादी के दृष्टिकोण का समर्थक होने के नाते भारतीय भाषाओं का मीडिया बहुत ही कम संसाधनों में कार्य कर रहा था। आजादी के सार्थक अखबारों का लगभग विज्ञापनों से लेना-देना अर्थात आश्रय कम था एक उद्देश्यों की पत्रकारिता की जा रही थी। १९४७ के बाद यह स्थिति लगभग बदल गई, भारतीय भाषाओं के लगभग अखबारों में व्यवसायिकता, मुनाफाखोरी एवं व्यवस्था पोषक नीति का अनुसरण करने लगे। एडवोकेसी पत्रकारिता तो पूरी तरह परिस्थिति सापेक्ष है। यह पूर्णत: मुद्दा आधारित है, मुद्दा महत्वपूर्ण न रहने पर तर्क और आधार समाप्त हो जाते हैं।

वैकल्पिक मीडिया के 'वैकल्पिक' होने के बारे में दो तरह के विवाद हैं। पहला प्रश्न यह अक्सर पूछा जाता है कि क्या गैर-शासकीय गैर-व्यवसायिकता होने पर ही किसी मीडिया को वैकल्पिक मीडिया कहा जा सकता है? जो भी मीडिया गैर-व्यवसायिक हैं, वे सभी वैकल्पिक मीडिया ही हैं? क्या कोई अपना विज्ञापन करने के लिए इन मीडिया का इस्तेमाल नहीं कर सकता है? और यदि कोई इनका इस्तेमाल अपने प्रमोशन के लिए करते हैं तो क्या ये मीडिया अपने वैकल्पिक होने का हक खो देंगे?

यह सवाल बीसवीं सदी के अस्सी के दशक में सारी दुनिया में सक्रिय हुए गैर सरकारी संगठनों की परिघटना के बाद खास तौर पर सक्रिय हो गए हैं। तीसरी दुनिया के देशों में 'विकास' को आमजन तक पहुँचाने के लिए इन्हें अमीर देशों से आर्थिक सहायता भी मिली है। इनके जरिए बड़े पैमाने पर छपी सामग्री प्रसारित की जाती है। तकनीकी रूप से इनकी छवि न मुनाफा कमाने वाले संगठन के रूप में है और न ही सरकार इन्हें अपना अंग मानती है। इनमें काम करने वाले की आत्मछवि वैकल्पिक समाज और राजनीति की जद्दोजहद में लगे जैसे लोगों की होती है।

सत्ता की वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ कर फेंकने वाले क्रांतिकारी समूहों की मान्यता है कि मीडिया के ऐसे रूप अधिकतर दबाव-गुट के रूप में ही कार्य कर पाते हैं, आमूल परिवर्तन के लिए रास्ता साफ करने के बजाय वे व्यवस्था में सुधार के निमित्त बनकर अंततोगत्वा उसे मजबूत करने के ही काम आते हैं और मीडिया की कार्रवाई को अपने पक्ष में इस्तेमाल करते हैं।

वैकल्पिकता की अवधारणा से जुड़ा दूसरा प्रश्न विचारधारा का है। गैर-सरकारी संगठनों से निकलने वाले मीडिया को अगर छोड़ दिया जाए तो वैकल्पिक मीडिया के अधिकतर प्रकाशनों की चालक-शक्ति विभिन्न राजनीतिक विचारधाराएँ हैं। एक मुद्दे के पैरोकार व्यक्ति, एक मुद्दे पर अलग-अलग रवैये के पैरोकार दिखते हैं तो वैकल्पिक मीडिया की विचारधारा पर एक विमर्श किया जाता है। वैकल्पिक मीडिया की उपस्थिति पूरे विश्व में है, लेकिन भारत में इसकी विशिष्ट भूमिका रही है।

वर्तमान में जब हम वैकल्पिक पत्रकारिता की बात करते है, तो हमारे जेहन में गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रेमचंद जैसे संपादक और विशाल भारत, विप्लव, हंस जैसी पत्रिकाएँ आ जाती हैं। तब यह भले ही लगभग मुख्यधारा के अखबार व पत्रिकाएँ थी पर इनके सामाजिक सरोकार, इनकी प्रतिबद्धता और अभिव्यक्ति की आजादी वैकल्पिक पत्रकारिता सरीखी थी। धर्मयुग, हिंदुस्तान साप्ताहिक, सारिका, दिनमान जैसी पत्रिकाएँ बड़े प्रतिष्ठानों से निकलने के बावजूद एक बड़े वर्ग के पाठक तक पहुँच रखती थी। उस समय इन सभी पत्रिकाओं का जोश व उत्साह चरम पर था। वर्तमान में उत्तर प्रदेश में कई लोगों द्वारा पर्चा तथा पोस्टर मुहिम चलायी जा रही है। लखीमपुर के जिला मुख्यालय के पास 'वाल मैगजीन' का प्रकाशन किया जाता है जिसमें कभी हाथ से लिखकर कभी अखबारों की कटिंग को बोर्ड पर चस्पा किया जाता है। इस 'वाल मैगजीन' में राजनीतिक जागरूकता, मतदाता जागरूकता से संबंधित समाचार, तथा महिलाओं के विरुद्ध हिंसा से संबंधित समाचार होते हैं।

उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड से ग्रामीण महिलाओं द्वारा निकलने वाला समाचारपत्र 'खबर लहरिया' एक पाक्षिक समाचार पत्र है, जो वहाँ की समस्याओं को प्रकाशित करता है। यह अखबार वैकल्पिक पत्रकरिता के प्रतिमान प्रतिस्थापित करता है। जौनपुर से निकलने वाले अखबार 'गुनागर' के अप्रैल २००४ के अंक में भीमराव अंबेडकर के जन्म दिवस पर उनके जीवन संबंधी बातें छपी हैं। उड़िया न्यूजलेटर 'मित्र' के दिसंबर २००४ अंक में गांव के प्राथमिक विद्यालयों में होने वाली जाति संबंधी परेशानियों पर लिखा गया, जिसकी एक प्रति प्रखंड विकास पदाधिकारी के पास भेजी गई। अधिकारियों ने इसे शिकायत के तौर पर दर्ज कर दोषी स्कूल शिक्षक के विरुद्ध कार्रवाई की। इनके अलावा अन्य कई समाचार पत्र जैसे वाराणसी से 'पुरवई', प्रतापगढ से 'भिंसर', सीतापुर से 'देहरिया', मथुरा से 'भैयली' और चित्रकूट से 'महिला डाकिया' (इस शृंखला का पहला न्यूजलेटर) ने भी समय के साथ अपनी पहचान बनाई है।

महिलाओं के शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए काम करने वाली उत्तर प्रदेश की एक गैर सरकारी संस्था 'महिला सामख्या' इन ग्रामीण समाचार पत्र (न्यूजलेटर) की मदद करती है। चित्रकूट से निकलने वाले 'खबर

लहरिया' को महिलाओं के लिए काम करने वाली दिल्ली स्थित एक गैर सरकारी संस्थान का निरंतर सहयोग प्राप्त है। इन न्यूजलेटर में से कुछ महीने में एक, कुछ तीन महीने में एक और कुछ साल में दो बार निकलते हैं।

इन न्यूजलेटर में चापाकल, खड़ंजा, सड़क जैसी मूलभूत समस्याओं से लेकर दहेज, नशाखोरी और महिलाओं से हिंसा जैसे मुद्दों पर खबरें प्रकाशित होती हैं। इसके अलावा हत्या और अन्य अपराध से जुड़ी खबरें भी होती हैं। घर और बगीचा संभालने से जुड़ी जानकारी, हालिया शोध की विस्तृत जानकारी आदि इन न्यूजलेटर के अन्य आकर्षण हैं। इस वैकल्पिक मीडिया के मुद्रित या इलेक्ट्रॉनिक औजारों ने पुरानी रूढिवादी विचारधारा को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

वैकल्पिक मीडिया हमारे विकास के साथ बढ़ा है। स्वतंत्रता के समय लोग पर्चे छापकर अपने विरोध को दर्ज करते थे। अपनी बात लोगों तक पहुँचाते थे। तब भी अखबार थे। लेकिन उसमें ब्रिटिश सरकार के खिलाफ नहीं लिखा जा सकता था। आज वही मुख्यधारा के मीडिया से कट जाने वाली खबरें वैकल्पिक मीडिया के द्वारा अपनी अलग पहचान बना रही हैं। मुख्यधारा के टीवी चैनल और अखबार जैसे संचार माध्यमों की जगह अब सच्चे जन पक्ष का निर्माण करने में लघु पत्रिकाओं और सामुदायिक रेडियो बड़ी भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। किसी विशेष व्यवस्था परिवर्तन के उद्देश्य को लेकर अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित की जा रही हैं, जो एक बेहतर जनपक्ष के वैकल्पिक मीडिया के रूप में उभर रही हैं।

संपर्कः सहायक प्राध्यापक, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
आईआईएमटी कॉलेज ऑफ मैनेजमेंट, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
ईमेलः ramshankarpal108@gmail.com, **मो. 9890631370**

वैश्विक संचार में हिंदी भाषा का भविष्य

डॉ. ललित कुमार

शोध सारांश : वर्ष २०१४ से लेकर २०१९ के लोकसभा चुनाव में 'अबकी बार मोदी सरकार'और 'एक बार फिर मोदी सरकार' जैसे नारे इतने लोकप्रिय हुए कि इनकी गूंज समूचे विश्व में सुनाई पड़ी। दुनिया के सबसे शक्तिशाली देश अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने खुद अपने चुनावी अभियान की शुरुआत ही भारतीय–अमेरिकी समुदाय को लुभाने के लिए 'अबकी बार ट्रंप सरकार' जैसे नारे से की थी। हालाँकि बाद में वे सफल भी हुए।

विदेशी सरजमीं पर जब कहीं किसी मंच से हिंदी में भाषण दिया जाता है तो वह भारतीय समाज के लिए एक बड़ी उपलब्धि होती है। भारत में हिंदी को राजभाषा का दर्जा हासिल है इसलिए वह देश की सबसे बड़ी संपर्क भाषा है। हालांकि अब विश्व के ज्यादातर देशों में हिंदी भाषा को सबसे अधिक महत्व दिया जा रहा है। इसके पीछे का मुख्य कारण है कि भारत के प्रधानमंत्री द्वारा वैश्विक स्तर पर हिंदी भाषा को बड़े पैमाने पर दुनिया के सामने रखने का प्रयास किया जा रहा है।

वैश्विक संचार तंत्र में देशी–विदेशी भाषाओं को बढ़ावा देने में नवाचार तकनीक की भूमिका बहुत अहम है। यही कारण है आज हिंदी को एक वैश्विक भाषा के तौर पर देखा जा रहा है। वैश्विक स्तर पर हिंदी को एक बड़ा खतरा इसलिए भी माना जा रहा है क्योंकि विदेशी बाजारों के साथ प्रतिस्पर्धा में हिंदी भाषा कहीं पीछे छूट जाएगी और अंग्रेजी उसका स्थान ले लेगी। चूँकि वैश्वीकरण विकसित देशों से होते हुए भारत पहुँचा जहाँ मुख्य रूप से भारतीय भाषाएँ बड़े स्तर पर बोली जाती हैं। लेकिन भारतीय बाजार ने विदेशी कंपनियों को हिंदी भाषा सीखने पर मजबूर किया है। उदाहरण के तौर पर कोका–कोला, डोमिनोज और नेस्ले जैसी कई बड़ी विदेशी कंपनियों ने अपने उत्पादों को भारतीय बाजारों तक पहुँचाने के लिए स्थानीय भाषाओं का सहारा लिया। पिछले तीन दशकों में ग्लोबलाइजेशन ने विकास के साथ–साथ वैश्विक व्यवस्था को भी अपनी गिरफ्त में लिया है, जिसने अन्य देशों के साथ व्यापार बढ़ाने में भी मदद की। भूमंडलीकरण की बढ़ती रफ्तार ने विश्व की ज्यादातर कंपनियों के साथ मिलकर बाजारवाद को एक नया सिद्धांत दिया, जिसकी वजह से उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिला। भूमंडलीकरण शब्द सीधे तौर पर बाजारवाद से जुड़ा हुआ है, जिसका संबंध सीधे भाषा से है और भाषा के जरिए ही बाजार से रिश्ते बनते और बिगड़ते हैं, जो बाद में स्थाई हो जाते है।

आज अंतरराष्ट्रीय बाजार जिस तेजी से भारतीय भाषाओं को अपनाकर सात समुंदर पार के उत्पाद को भारत में बेचने पर आमादा है, उसी तेजी से भारतीय बाजार में उनके उत्पाद की कीमत लगातार बढ़ती जा रही है। उपभोक्ताओं को व्यवस्था के तहत अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वस्तुओं, सेवाओं तथा संसाधनों के मुक्त आदान–प्रदान से छूट मिली है तो दूसरी ओर हिंदी भाषा के विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। भारतीय बाजार में संबंधित भाषा पर निर्भर होना यानी नई चुनौतियों का सामना करना है। बाजार में रुकने के लिए जो भाषा जितनी उदार होगी, उसकी माँग भी उतनी ही अधिक होगी और समय के साथ उसकी लोकप्रियता भी उतनी ही बढ़ेगी। यदि आज किसी देशी–विदेशी कंपनी को अपना कोई उत्पाद बाजार में उतारना हो तो सबसे पहले उसकी नजर भारतीय भाषाओं पर होती है, क्योंकि उनको पता है कि अगर हमारा उत्पाद भारतीय

भाषा में होगा तो उपभोक्ता तक हमारी पहुँच और ज्यादा आसान होगी। इसलिए धीरे-धीरे हिंदी भाषा वैश्विक (ग्लोबल) बनती जा रही है। क्योंकि विश्व बाजार आज पूरी तरह से हिंदी भाषा पर निर्भर है।

भाषा: वैश्विक संचार माध्यम: जनसंचार माध्यमों में चाहे हिंदी के समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, हिंदी सिनेमा या विज्ञापन ही क्यों न हो, सभी जगह पर भारतीयों भाषाओं में विज्ञापन का स्वरूप एक जैसा है। एक ही कंपनी के विज्ञापन का सभी भाषाओं में अनुवाद करके उसे देशभर में प्रसारित किया जाता है। वर्तमान दौर में हिंदी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करने के साथ-साथ उसके बोलने वालों की संख्या, हिंदी फिल्में, पत्र-पत्रिकाओं, हिंदी टीवी चैनल्स और विज्ञापन एजेंसियों का विश्वस्तरीय साहित्य आदि में इनका विशेष योगदान है। इन सबके अलावा हिंदी को विश्वभाषा बनाने में इंटरनेट की सबसे बड़ी भूमिका है, जिसने वैश्विक संचार के जरिए विदेशी कंपनियों को भारत में लाने के लिए बाध्य किया। भारतीय मीडिया के सहारे ही विदेशी कंपनियों के ज्यादातर उत्पाद भाषा के जरिए ही उपभोक्ताओं तक का सफर तय करते हैं। किसी भी उत्पाद को बाजार में टिके रहने के लिए भाषा एक बड़ी समस्या हो सकती है, लेकिन उपभोक्ता तक उत्पाद की संरचना सीधे तौर पर भाषा को एक साथ ले चलने में अहम भूमिका होती है।

वैश्विक संचार ने हिंदी भाषा के लिए सभी देशों में बड़े पैमाने पर पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा प्रभावी रूप से काम किया है। यही कारण है दुनिया के अधिकतर देश भारतीय भाषाओं के मुरीद हो चुके हैं। किसी भी देश की भाषा उसकी संस्कृति की वाहक होती हैं और संचार माध्यमों पर प्रसारित कार्यक्रमों से समाज के बदलते सच को हिंदी के बहाने ही उजागर किया जाता है। डिजिटल दौर में हिंदी भाषा की माँग अंग्रेजी भाषा की तुलना में पाँच गुना ज्यादा तेज हुई है। मतलब भारत का हर पाँचवा उपभोक्ता इंटरनेट का उपयोग हिंदी में करता है। देश में जहाँ हिंदी सामग्री की खपत डिजिटल माध्यम में ९४ फीसदी की दर से बढ़ी है, वहीं अंग्रेजी सामग्री की खपत केवल १९ फीसदी की दर से बढ़ी है।

भारत में स्मार्टफोन ने लोगों के बीच अपनी लोकप्रियता को बढ़ाने के साथ-साथ गाँव देहात में हर घर-घर तक अपनी पहुँच बनाई है। अब सभी ऑपरेटिंग सिस्टमों द्वारा हिंदी में संदेश भेजना, पढ़ना, सुनना या उसे देखना लगभग उतना ही आसान है जितना अंग्रेजी की सामग्री को। इसलिए कंप्यूटर पर सभी भाषाओं में टाइपिंग का ज्यादातर प्रयोग होता है। साथ ही इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं का उपयोग सबसे ज्यादा हिंदी में ही होता है, लेकिन मोबाइल तकनीकी ने आज सभी भारतीय भाषाओं को एक ऐसा मंच दिया है, जिसके जरिए वैश्विक संचार का विकास हुआ। यानी यह सब स्मार्टफोन की बदौलत ही संभव हो पाया, जो मोबाइल पर अपनी मनपसंद सामग्री को खोजने में सक्षम हैं। लेकिन पिछले पाँच सालों की तुलना में उसकी चेतना का विकास पहले से कहीं ज्यादा हुआ है। अंग्रेजी में १९ फीसदी प्रति वर्ष के मुकाबले भारतीय भाषाओं की सामग्री ९० फीसदी की रफ्तार से बढ़ी है।

दूसरी ओर अब लोगों में हिंदी भाषा के प्रति अन्य भाषा की अपेक्षा अधिक रुझान बढ़ा है। भारत में ५० करोड़ से ज्यादातर लोग हिंदी बोलते हैं, जबकि २१ प्रतिशत से अधिक भारतीय हिंदी में इंटरनेट का प्रयोग करते हैं। भारतीय युवाओं के स्मार्टफोन में औसतन ३२ मोबाइल ऐप होते हैं, जिसमें ८-९ ऐप हिंदी के होते हैं। यही वजह है भारतीय युवा यूट्यूब पर ९३ फीसदी से ज्यादा अन्य भाषा की तुलना में हिंदी में वीडियो देखते हैं। हिंदी मीडिया के कुछ निम्न घटक इस प्रकार हैं, जिसमें हिंदी फिल्में, रेडियो, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, टीवी चैनल्स और सोशल मीडिया आदि शामिल हैं।

संचार के जरिए भाषा का भविष्य: आज की पीढ़ी के लिए विशालकाय जनसंख्या वाले भारत और चीन जैसे देशों में हिंदी और चीनी भाषा एक संपर्क की भाषा बनकर उभर रही है, जो विद्यालयों, महाविद्यालयों,

विश्वविद्यालयों तथा अंतरराष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में इसके द्वारा शिक्षित और प्रशिक्षित हो रहे हैं। जो सन् २०२५ तक विधिवत रूप से प्रशिक्षित होकर अपनी सेवाएँ विश्व के सामने उपलब्ध कराएँगे। दूसरी ओर जापान की ६० प्रतिशत से अधिक आबादी ६० साल पार करके बुढ़ापे की ओर आगे बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है। ऐसी स्थिति में भारत में सबसे ज्यादा युवा होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तादात लगातार बढ़ेगी। जाहिर सी बात है जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे तो वे वहाँ की व्यवस्था के चलते इसका सशक्त माध्यम बनेंगे तभी उनके साथ हिंदी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में होगा, वहाँ हिंदी स्वयं विश्व मंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह कहा जा सकता है कि हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर आगे बढ़ रही है, आने वाले भविष्य में वह ओर बड़ी भूमिका निभाएगी। हिंदी जिस गति से तथा आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है, उसे देखकर यही अंदाजा लगाया जा सकता है कि सन २०२० तक वह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी।

वैश्वीकरण: भाषा एक संवाहक के रूप में: भाषा के संबंध को समझने से पहले हमें यह समझना होगा कि वैश्वीकरण है क्या ? अगर साधारण से शब्दों में कहें तो वैश्वीकरण का संबंध सीधे तौर पर बाजार से जुड़ा है। जिसके दायरे में विश्व की भौगोलिक सीमाएं, पहचान और भाषाओं का आदान–प्रदान मायने रखता है, जो एक दूसरे को करीब लाने में हमेशा मदद करती है। भाषा वैज्ञानिक नोम चॉमस्की के शब्दों में 'वैश्वीकरण' का अर्थ– अंतरराष्ट्रीय का एकीकरण करना है। हालाँकि जिस तेजी से पूरे विश्व को एक गाँव की संज्ञा दी जा रही है, उसी तेजी से वैश्विक स्तर पर भाषाओं की भूमिका बहुत अहम होती जा रही है। विश्व स्तर का वैश्विक बाजार भाषाओं के साथ तालमेल करने में लगा हुआ है कि कैसे वह अपने बाजार को उस दहलीज तक लेकर जाएँ, जहाँ उसका उपभोक्ता उसके इंतजार में खड़ा है। दो देशों के आपसी रिश्ते भाषा के जरिए ही मजबूत बनते हैं। पड़ोसी देशों का मेल–जोल भाषा के जरिए उसके खान–पान, तीज–त्यौहार और पसंद–नापसंद के द्वारा ही समझने में हमारी मदद करते हैं। अगर देखा जाए तो अन्य भाषाओं के मुकाबले हिंदी भाषा का कद जिस तेजी से वैश्विक स्तर पर बढ़ा है, जिसने हिंदी की व्यापकता को बढ़ाने का काम किया है। सरल, सहज और ग्राह्य शक्ति यानी दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण और स्वीकार करने में हिंदी की क्षमता अन्य भाषाओं के मुकाबले विश्व को अचंभित करने वाली है।

वैश्वीकरण के दौर में ग्लोबल होती भाषाएं: वैश्वीकरण और बाजारीकरण के दौर में टेक्नोलॉजी की भाषा को आम आदमी तक पहुँचाने की आवश्यकता है। इसलिए कंप्यूटर के अनुप्रयोगों को वैश्विक बाजार में स्वीकार्य बनाया जाना जरूरी है। हालाँकि हिंदी भाषा में ज्यादातर कंप्यूटर शब्दावली का निर्माण किया जा रहा है, लेकिन फिर भी हिंदी भाषा तकनीकी रूप से पूरी तरह विकसित नहीं हो पाई है। आज इंटरनेट की ८३ फीसदी सामग्री अंग्रेजी में उपलब्ध है। भारत के लिए आवश्यक है कि इंटरनेट की सामग्री लोगों तक हिंदी भाषा के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से पहुँचे। नए आविष्कारों और प्रौद्योगिकी से अपनों को जोड़े रखने और नई तकनीकी को हिंदी भाषा सहित भारतीय भाषाओं में विकसित किया जाए। आज जब हम इस भूमंडलीकरण के दौर से गुजर रहे हैं और जिस तेजी से व्यापार, उदारीकरण, बाजारीकरण, निजीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति धड़ल्ले से आगे बढ़ रही है, जो वास्तव में स्थानीय देशी तथा मौलिक संस्कृति को चुनौती दे रही है, ऐसी परिस्थिति में भारतीय संस्कृति एवं अस्मिता के प्रतीक के रूप में हिंदी भाषा का संरक्षण आवश्यक है अन्यथा हमारी हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति लुप्त हो जाएगी। हिंदी भाषा को भूमंडलीकरण के सामान्य परिवेश में तथा

अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखकर विकास के मार्ग पर इस प्रकार बढ़ाया जाए, जिससे उसकी संस्कृति सुरक्षित रहे, जो साथ ही वैश्वीकरण एवं बाजारवाद के दौर में भाषाओं का सामना करने में सक्षम हो।

आज विश्व में चीन के बाद सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले समाचार-पत्र आधे से ज्यादा हिंदी भाषा के हैं। विदेशों में हिंदी समाचार पत्र-पत्रिकाएं बड़ी मात्रा में प्रकाशित किया जाना इस बात की ओर संकेत करता है कि हिंदी भाषा के पढ़े-लिखे लोगों के साथ-साथ हिंदी के जानकार भी इसके महत्व को समझ रहे हैं। यही कारण है आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं, बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा और अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के माध्यम से प्रसारित किए जा रहे हैं और बड़ी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिंदी भाषा के सात टीवी चैनल धूम मचाए हुए हैं। पिछले कुछ वर्षों में एफएम रेडियो चैनल्स ने हिंदी कार्यक्रमों के जरिए नया श्रोता वर्ग पैदा किया है। इसीलिए हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी नवाचार के साथ विश्वव्यापी बनती जा रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एसएमएस एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्र-पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध वेबसाइटों पर उपलब्ध हैं।

माइक्रोसाफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे के साथ हिंदी प्रयोग को बढ़ावा दे रही है। यह बात सही है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तेजी से वैश्विक पटल पर सुख दु:ख एवं आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनभर देशों में हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रिया और न्यूजीलैंड आदि जैसे विकसित देशों में हिंदी के लेखक एवं रचनाकार अपनी सृजनात्मकता के साथ उदारतापूर्वक विश्व पटल पर हिंदी का प्रचार-प्रसार करने में लगे हैं।

निष्कर्ष: आजादी से पहले की अगर बात करें तो भारत पर इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया का शासन स्थापित हुआ, तब इस बात की जरूरत महसूस की गई कि भारत पर राज करने के लिए हिंदी सीखना बेहद जरूरी है। यही वजह थी कि सिविल सेवा के अधिकारियों के लिए हिंदी सीखना अनिवार्य कर दिया गया। इसके अलावा मॉरीशस, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, फिजी, गुयाना और टोबैगो आदि जैसे देशों में गिरमिटिया समुदाय के रूप में मजदूरी के लिए गए अधिकतर भारतीय वहाँ जाकर बस गए, जिसके फलस्वरूप इन देशों में हिंदी संपर्क भाषा का कार्य कर रही है। हालाँकि स्थानीय शब्दों को आत्मसात करने की वजह से इन देशों में हिंदी का स्वरूप परिवर्तित हुआ है। इन देशों में खड़ी बोली और भोजपुरी का प्रयोग किया जा रहा है और साथ ही वहाँ का साहित्य भी इन्हीं भाषाओं में लिखा जा रहा है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैश्विक स्तर पर जिस तरह से संचार व्यवस्थाओं का विस्तार तेजी से बढ़ रहा है, उसी तेजी से आज भारतीय भाषाएं भी अपने दायित्व-बोध के प्रति संकल्पित होती दिख रही हैं। साथ ही वह निकट भविष्य में और बड़ी भूमिका निभाएगी। आज हिंदी भाषा जिस तेज गति और आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है, उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि २०३० तक वह दुनिया की सबसे अधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी। यदि हम इन तथ्यों पर नजर डाले तो संख्या बल के आधार पर हिंदी, विश्व भाषा जरूर है, लेकिन यह भी संभव है कि यह मातृभाषा न होकर विश्व की दूसरी, तीसरी या चौथी भाषा हो सकती है।

संपर्क: अतिथि अध्यापक, जनसंचार विभाग, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
मोबाइल: 8972141813, ई-मेल: medialalit@gmail.com

वर्ग-संघर्ष का प्रश्न और प्रगतिवाद आलोचक

डॉ. राहुल पाण्डेय

आलोचना वह सम्यक दृष्टिकोण है जो पूर्वाग्रहों और निजता से मुक्त होकर किसी विषय की संवेदना का मूल्यांकन करती है। आलोचना किसी विषय विशेष को समझने की एक नई दृष्टि है। प्रगतिवादी आलोचना ने भी रचनाओं का मूल्यांकन करते हुए बहुतेरे नवीन विचार दिए हैं। उदाहरण स्वरूप, स्त्री-चिंतन विषयक साहित्य और आलोचना पहले से होती आई है, किंतु इसमें अश्लीलता का प्रश्न सबसे पहले प्रगतिवादी आलोचना ने ही उठाया। स्त्री की मुक्ति को भले ही तुलसी 'पराधीन सपनेंहु सुख नाहीं' कहकर प्रश्नांकित कर चुके हों, किंतु उसे केंद्रीय-विषय की तरह प्रगतिवादी आलोचना ने मूल्यांकित किया। इस प्रकार रूप और वस्तु की प्रासंगिकता पर प्रगतिवादी आलोचना ही बात कर सकी। यद्यपि प्रयोगवाद ने इस प्रकरा को ज्यादा गहराई के साथ उठाया, किंतु प्रयोगवाद का वह मूल्यांकन प्रगति क्रियावादी ज्यादा दिखाई देता है। इसी प्रकार सामाजिक यथार्थ के दायरे में समाज के हर हिस्से को लाने की कोशिश भी प्रगतिवादी आलोचना करती है। यहाँ यथार्थ का आशय केवल सत्य और समस्याएँ ही नहीं है, बल्कि जिंदगी का वह प्रत्येक कोना है जिनसे यह उपजती है। इन्हीं सब के बीच वर्ग-संघर्ष का प्रश्न भी प्रगतिवादी आलोचना उठाती है। वर्ण से वर्ग की यात्रा की पूरी समझ विकसित करने में प्रगतिवादी आलोचना की महत्वपूर्ण भूमिका है।

वर्ग-संघर्ष सामाजिक शब्दावली से अधिक जीवन वैज्ञानिक शब्द है। डार्विन का दर्शन 'योग्यतम की उत्तरजीविता' इसी आधार पर टिका है। किंतु प्रश्न यह उठता है कि जब आदिम परिस्थितियों से निकलकर मनुष्य सभ्य हो चुका है, क्या तब भी यही परिस्थिति रहनी चाहिए ? प्रगतिवादी आलोचना वर्ग-संघर्ष का पुनर्मूल्यांकन करती है।

यह मूल्यांकन उन पूँजीगत मान्यताओं और सर्वहारा-वर्ग के बीच का संघर्ष है, जिसकी वजह वितरण की असमानता है और व्यवस्थागत विद्रूपन है। वर्ग संघर्ष की अवधारणा विभेद के आधार को आर्थिक परिस्थितियों से जोड़कर देखती है। यूरोप में पूँजीगत असमानता से उपजे असंतोष ने लोगों में आंदोलन की भावना भर दी थी। भारत भी व्यापक स्तर पर इन सबके संपर्क में आया। अत: इन बातों का प्रभाव हुआ और १९वीं शताब्दी तक आते-आते भारतीय साहित्य में आर्थिक असमानताओं पर लेखन जोर पकड़ने लगता है और प्रगतिवादी आलोचना उसका मूल्यांकन कर उसके विकास में सहयोग करती है।

वर्ग संघर्ष का प्रश्न सर्वप्रथम कार्ल मार्क्स ने उठाया। उन्होंने शोषक वर्ग और शोषित वर्ग में समाज का बँटवारा किया। प्रगतिवादी आलोचकों ने देखा कि मानव संस्कृति के विकास में किस वर्ग की, किसी युग-विशेष में कैसी भूमिका रही है। मार्क्सवाद इन वर्गों की रची हुई संस्कृति को ठुकराता नहीं है, न ही काल्पनिक नए मानव-संस्कृति की रचना करता है। प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति होती है और उस संस्कृति का विकासक्रम किसी विशेष वर्ग के हाथों में होता है। वह उच्च वर्ग भी हो सकता है और निम्न वर्ग भी। इसलिए समाज के किसी भी वर्ग को उपेक्षित नहीं कहा जा सकता है। वर्ग युक्त समाज में दो तरह की संस्कृतियाँ होती हैं। एक जो मेहनत-मजदूरी करके जीवन-यापन करती है और दूसरे प्रकार की संस्कृति उनसे लाभ उठाने वाली। लाभ उठाने वाली संस्कृति सामंती समाज का द्योतक बनती है। स्पष्ट रूप से चिह्नित इन दो वर्गों के संघर्ष को वर्ग-संघर्ष कहा जाता है। वर्ग-संघर्ष पूँजीवादी सामन्तवाद को समाप्त करके समाजवाद की स्थापना करने के लिए अपरिहार्य है। 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक निबंध में शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है- ''प्रगतिशील

साहित्यकार के सम्मुख पहला कार्य यह है कि वह श्रेणी संघर्ष को साहित्य में जागृत करे और प्रतिक्रियावादी और आदर्शवादी लेखकों और साहित्यकारों के छिछलेपन और आंतरिक कलुष का पर्दाफाश कर दे।''१

मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार सामाजिक विकास का इतिहास वर्ग–संघर्ष का इतिहास है। उत्पादन के साधनों पर शोषक–वर्ग का नियंत्रण होने के कारण सत्ता पर भी उनका नियंत्रण है। वह शोषित वर्ग के श्रम का शोषण करता है। वर्ग–संघर्ष के कारण सामाजिक संरचनाओं में बदलाव आता रहता है। सामंतवादी समाज में जहाँ दास का स्थान किसान लेता है, वहीं पूँजीवादी समाज व्यवस्था में किसानों का स्थान मजदूर लेता जा रहा है। समाज व्यवस्था में शोषण समाप्त नहीं होता। यह अवश्य है कि शोषित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में बदलाव आता रहता है। समाज की वर्ग–व्यवस्था में परिवर्तन करने पर ही शोषित वर्ग को शोषण से मुक्ति मिलेगी। शिवदान सिंह चौहान लिखते हैं– ''साम्राज्यवाद के इस काल में अगर कोई भी प्रगतिशील साहित्य खड़ा होना चाहता है तो उसे मूलत: साम्राज्यवाद विरोधी होना पड़ेगा लेकिन साथ ही उसे साम्राज्यशाही के सहायक भारत के महंतवाद, सामंतवाद तथा चमगादड़रूपी पूँजीवाद का दुश्मन होना ही पड़ेगा। श्रेणी संघर्ष को गरीब और अमीर, पूँजीवाद और मजदूर, किसान और जमींदार, स्त्री और पुरुष, अछूत और सवर्ण, धर्म और नास्तिकता, आदर्शवाद और यथार्थवाद तथा नवीन और पुरातन में भेद भी करना पड़ेगा। साथ ही साथ समस्त प्रगतिशील वर्गों और शक्तियों के संयुक्त मोर्चे के सूत्रों को मजबूत करना पड़ेगा।''२

प्रगतिशील आंदोलन के उदय होने के उपरांत शोषक और शोषित वर्ग को नए सिरे से परिभाषित किया गया। अब केवल किसान और मजदूर ही नहीं, बल्कि हर वह व्यक्ति शोषित है जो समाज की जरूरतों से वंचित हैं, चाहे वह किसान हो या दलित या कोई स्त्री अथवा अन्य कोई भी। सामंती व्यवस्था समाज में नींव सी जमी खड़ी थी तो कालांतर में वही पूँजीपतियों के अभ्युदय पर शोषक वर्ग बनकर सामने उपस्थित हुई। शोषक वर्ग की तानाशाही युक्त सामाजिक व्यवस्था को समाप्त करने के लिए सर्वहारा वर्ग को अधिनायकत्व का ताज पहनना पड़ेगा। इसे ही सर्वहारा–वर्ग की क्रांति से समाज में बदलाव की अवस्था कहते हैं अथवा संक्रमण की अवस्था कहते हैं। कार्ल मार्क्स कहते हैं कि अभी तक आविर्भूत समस्त सामाजों का इतिहास वर्ग–संघर्ष का इतिहास रहा है। अंतत: इस संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की विजय होगी और उसी वर्ग का आधिपत्य स्थापित होगा। इस प्रकार मार्क्सवाद सामाजिक बदलाव का दर्शन है जो साम्यवाद की स्थापना का व्यापक विचार धारण करता है।

प्रगतिशील विचारधारा को 'राजनीतिक प्रचार' तथा प्रगतिशील साहित्य को 'प्रॉपगैंडा' कहकर बदनाम करने की चेष्टा प्रतिक्रियावादी लेखकों ने की थी। इसका प्रमुख कारण यही था कि उन्होंने साहित्य की वर्गीय अंतर्वस्तु से हमेशा से अपने को दूर रखा। प्रगतिवादी समीक्षा का यह मुख्य दायित्व था कि वह आरोप–प्रत्यारोप, आक्रमण–प्रत्याक्रमण के उस वातावरण में प्रगतिशील साहित्य को सैद्धांतिक आधार पर खड़ा करे। प्रगतिशील आलोचकों ने मार्क्सवाद के इस बुनियादी उसूल को लेकर विश्व इतिहास की केवल व्याख्या की, लेकिन प्रश्न विश्व को बदलने का है। रामविलास शर्मा ने साहित्यकार की प्रगतिशीलता और समालोचक की प्रगतिशीलता की व्याख्या की और कहा कि न तो साहित्यकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है, न आलोचक। वे प्रगतिशील तभी होते हैं, जब वे जनसाधारण का पक्ष लेते हैं। रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''मार्क्सवाद के अनुसार समाज तथा संस्कृति का विकास सीधी रेखा पर, समतल भूमि पर अबाध रूप से एक ही दिशा में नहीं होता है। विकास के साथ पीछे हटने का क्रम भी देखा जाता है। सीधी रेखा और समतल भूमि के बदले असंगतियों से होकर, विरोधी तत्वों की एकता की विषय भूमि पर भी यह विकास होता है। उदाहरण स्वरूप जब मनुष्य ने वन्य जीवन छोड़कर नागरिक जीवन बिताना आरंभ किया तब

अनेक नए मूल्यों की प्राप्ति के साथ उसने अनेक महत्वपूर्ण मूल्यों को छोड़ भी दिया।''३

रामविलास शर्मा का यह कथन एक बड़ा प्रश्न खड़ा करता है, वह यह कि सामाजिक विकास परिवर्तनगामी है। इस परिवर्तन में बहुत से पुराने मूल्य छूट जाते हैं तथा नवीन मूल्य समाहित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रगतिशील आलोचक की जनपक्षधरता पुराने मूल्य के साथ हो अथवा नवीन मूल्य के साथ हो ? अगर पुराने मूल्य के साथ है, तब वर्तमान समय में उसकी जनपक्षधरता न्यायसंगत कैसे सिद्ध होगी और अगर वह नए मूल्यों के साथ है तो उसकी आलोचना एक गतिशील यथार्थ के चित्रण से अधिक और कुछ नहीं है। इसका उत्तर देते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''युग जीवन की वास्तविकता अखण्ड इकाई नहीं है। कोई भी युग सत्य द्वंद्व से परे नहीं होता। आज के युग का सत्य यह है। एक तरफ जनता साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही है, दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतें और उनके हिमायती उसे दबाने और गुलाम बनाए रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस द्वंद्व में कलाकार किसी अद्वैत, युगसत्य का सहारा न लेकर जनता या उसके विरोधियों का पक्ष लेता है। इसलिए स्वभावत: प्रगतिशील न होकर उसे युग विशेष और समाज विशेष के संघर्ष में जनता का पक्ष लेने पर ही प्रगतिशील कहा जा सकता है।''४

हिंदी साहित्य में वर्ग–संघर्ष का प्रश्न हो या जातीय मुक्ति के संघर्ष का आंदोलन या नारी पराधीनता की छटपटाहट सभी प्रसंगों पर प्रगतिशील लेखकों एवं आलोचकों ने विस्तारपूर्वक लिखा है। सामाजिक पहलू में सबसे बड़ी बात यह है कि यथार्थ गतिशील पक्षों का अंतरंग उद्घाटन ही प्रगतिवादी यथार्थवाद का प्राणतत्व है। प्रगतिशील समीक्षा में इन्हीं प्राणतत्वों के आधार पर साहित्य की विषयवस्तु का विश्लेषण किया गया है। वर्ग संघर्ष ने समाज को प्रभावित किया है। मुक्तिबोध जैसे ही नई कविता को लेकर विचार विमर्श करते हैं, वैसे ही वर्ग–संघर्ष का एक उभरता स्वरूप दिखाई पड़ता है। मुक्तिबोध ने नई कविता से ही रचनाकारों का उनकी वर्गीय स्थिति के आधार पर विभाजन किया है– ''नई कविता के क्षेत्र में भी दो दल तैयार हो रहे हैं– एक दल वह है, जो उच्च मध्यवर्ग का अंग है, दूसरे वे हैं जो निचले मध्यवर्ग से संबंधित हैं। उनकी वर्गीय प्रवृत्तियाँ न केवल उनके काव्य में वरन साहित्य संबंधी उनके सिद्धांतों में भी परिलक्षित होती हैं।५

वर्ग–संघर्ष प्रगतिवादी आलोचना के केंद्र में रहा है। तत्कालीन समय और परिस्थितियाँ ही प्रगतिवादी आलोचकों के लिए यथार्थ है और यथार्थ का चित्रण करते हुए जनपक्षधरता ही उनका साहित्यिक उद्देश्य रहा है। यही उनको प्रगतिशील बनाता है। प्रगतिशील आलोचकों के साहित्य में यह जनपक्षधरता आद्यन्त दिखाई पड़ती है।

संदर्भ ग्रंथ :

१. आलोचना में सहमति–असहमति, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०१३, पृ. सं. १२४

२. शिवदान सिंह चौहान: हिंदी के पहले प्रगतिशील आलोचक, सम्पादक अमरेन्द्र त्रिपाठी, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २०१४, पृष्ठ संख्या १७८

३. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण २००८, पृ. सं. २६६

४. प्रगतिवादी और समानान्तर साहित्य, रेखा अवस्थी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९२, पृष्ठ संख्या २७४.

५. हिंदी आलोचना, विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९२, पृ. सं. ४६।

संपर्क: १५ रीडर्स फ्लैट, लखनऊ विश्वविद्यालय मुख्य परिसर
फैजाबाद रोड, बाबूगंज, लखनऊ– 226020, ईमेल: rahul30nov@gmail.com

भारतीय मीडिया में मजदूर पलायन की वजह

अजय सिंह एवं विपुल प्रताप

जैसे ही हम भारतीय मीडिया कहते हैं, जो हमारे जेहन में कई सारी तस्वीरें एक साथ घुमड़ने लगती हैं। देश भर में कोरोना वायरस का प्रकोप थमने का नाम नहीं ले रहा है। हर दिन के आँकड़े, पिछले आँकड़ों की तुलना में ज्यादा भयावह साबित हो रही है। कोरोना वायरस से बचाव के लिए देश में हुए लॉकडाउन को महीनों हो चले। फैक्ट्रियाँ बंद पड़ी हुई है। बाजार पूरी तरह से सुचारु नहीं है। जो मजदूर रोड के किनारे रेहड़ी लगाने का काम करते थे, वे भी घरों में रहने को बाध्य हैं। देखें तो मजदूरी करने वालों पर आफत टूट पड़ी है। हर रोज कमाने और खाने वाली इस वर्ग के पास राशन खत्म हो रहा है। इस वजह से दिल्ली सहित अन्य महानगरों से सैकड़ों की तादाद में मजदूर के परिवार पैदल ही पलायन करने लगे हैं। पैदल इसलिए, क्योंकि यातायात को कोरोना न फैले इसलिए रोक दिया गया है। भारतीय मीडिया इन तमाम बातों पर नजर जमाए हुए है। भारतीय मीडिया मजदूरों के पलायन की खबरों से भरी पड़ी है। गौर करने वाली बात यह है कि ज्यादातर खबरें सूचनात्मक रूप में ही दिखाए जा रहे हैं। उनका विश्लेषण या समग्रता से दूर–दूर तक कोई लेना देना नहीं है। जिस दायरे तक मीडिया खबरों को कवर करती है, वह महज एक औपचारिकता मात्र है। अगर इतने बड़े पैमाने पर मजदूरों का पलायन नहीं हुआ होता तो शायद ही भारतीय मीडिया मजदूरों से जुड़ी खबरों को वरीयता देती। इस बात को लिखने के पीछे वाजिब वजह है। हाल ही में औरंगाबाद के पास १६ मजदूर रेल द्वारा कुचल दिए गए। ये मजदूर अपने घरों की ओर लौट रहे थे। रास्ते में थकान के कारण पटरियों पर ही सो गए थे। उन्हें लगा कि ट्रेनों का परिचालन पूरे देश में अभी बंद है। ऐसे में कोई ट्रेन अभी इन पटरियों पर नहीं आएगी। जबकि उन्हें नहीं पता था कि माल गाड़ी का चलना नहीं रोका गया है। केवल पैसेंजर ट्रेनों के चलने पर ही पाबंदी लगी है। यहाँ से जो बड़ा सवाल निकलकर आता है, वह यह है कि अंग्रेजी के कितने संस्करणों ने मजदूरों के नामों को छापने का काम किया है ? शायद, मजदूरों के भाग्य में बेनाम ही जाना था। गरीबों के प्रति यह रवैया कोई नई बात नहीं है। इस तरह के उदाहरणों से भारतीय मीडिया पहले भी हमें वाकिफ करवा चुकी है। थोड़ी देर के लिए सोचिए, अगर यह प्लेन दुर्घटना होती तो क्या सारे मरने वालों के नाम और विस्तृत ब्योरा नहीं छपता। ३०० के आस–पास भी अगर प्लेन दुर्घटना में मरते तो उनका नाम अखबारों में जरूर रहता। मरने वाले १६ मजदूर मध्य प्रदेश के गौंड आदिवासी थे। ऐसे में कोई अखबार इनके लिए क्यों जगह और मेहनत खर्च करना चाहेगा। जाहिर सी बात है, कोरोना वायरस से उपजे हालात में अगर सबसे ज्यादा किसी को मुसीबत झेलनी पड़ी है तो वह मजदूर वर्ग ही है। सबसे ज्यादा अगर अनिश्चितता किसी के सामने बाँह पसारे खड़ी है तो वह मजदूर वर्ग ही है। यह अनिश्चितता ही वजह थी जो कि इस वर्ग को हजारों किलोमीटर की दूरी तय करने को बाध्य कर दी। यह अनिश्चितता कई तरह से उनके सामने प्रकट हुई। खाने की अनिश्चितता, काम की अनिश्चितता, चिकित्सा की अनिश्चितता, बेहतर भविष्य की अनिश्चितता। इन सबसे बचने के लिए ही मजदूरों की बड़ी आबादी शहरों को छोड़कर गाँव की ओर पलायन करने लगी। मजदूरों के पलायन की कई वजह है। कुछ जैसा कि मीडिया में बड़े पैमाने पर दिखाया जा रहा है, ज्ञात है। कुछ जो कम सामने आ रहा है, वह एक तरह से कहें तो अज्ञात की श्रेणी में आ जाता है। हम क्रमवार तरीके से कारणों की बात करें तो कुछ निम्न है: रोजी–रोजगार बंद होना, महामारी का डर,स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का अभाव,जमा पूंजी का खर्च होना, अनिश्चितता के समय अपने लोग और अपनी जमीन के बीच पहुँचने की लालसा, महानगरीय अलगाव, सरकार और शासन का उन तक न पहुँच पाना, संचार माध्यमों की असफलता, मकान मालिकों की बेरुखी।

रोजी-रोजगार का बंद होना: मजदूरों का तबका शहरों में रोज कमाने और रोज खाने वाला है। जिस दिन उनकी कमाई नहीं होगी, उस दिन उनके खाने की चुनौती उत्पन्न हो जाती है। जाहिर सी बात है कि कोरोना महामारी से उत्पन्न हालात में महीनों तक मिलों के साथ ही अन्य काम के जगहों में तालाबंदी हो गया है। ऐसे में मजदूरों के सामने रोजी रोजगार की विकट समस्या उत्पन्न हो गई है। मजदूरों के पास ना तो करने के लिए कोई काम है, और न ही खाने के लिए पैसा बचा हुआ है। दिन-रात काम करने वाले इन मजदूरों को ऐसे खाली बैठने की आदत नहीं है, इसलिए यह मुश्किल और भी बढ़ रही है। जानकारों का मानना है कि मजदूरों के लिए यह लॉकडाउन सामाजिक और आर्थिक लड़ाई के साथ-साथ एक मनोवैज्ञानिक लड़ाई भी है। जाहिर सी बात है, जिन हाथों को १२ से लेकर १५ घंटे तक काम करने की आदत थी, वे अचानक बिना काम के हो जाए तो समस्या तो होगी ही। लॉकडाउन के मद्देनजर उभरे हालात में मालिकों ने भी मजदूरों से किनारा कर लिया। उन्हें बकाया भुगतान नहीं हुई। कुछ भी निश्चित बताने की स्थिति में मालिक नहीं थे। इन सबों का मनोवैज्ञानिक दबाव मजदूरों के ऊपर पड़ा। लॉकडाउन की वजह से मुख्यधारा का मीडिया कोरोना केंद्रित सरकारी रुख के महिमामंडन में लगा हुआ था, लेकिन सोशल मीडिया और समांतर समाचार वेबसाइट पर हजार, दो हजार किलोमीटर दूर अपने घरों की ओर भूख-प्यास से जूझते और रास्ते में पुलिस से मार खाते चल पड़े, हजारों लोगों की तस्वीरें और वीडियों घरों में सुरक्षित बैठे लोगों के सामने आने लगी। देश के दर्शकों ने, ऐसी विकट हालात शायद ही कभी टीवी स्क्रीन पर देखी हो। यूँ तो किताबों में आजादी के समय, ऐसे पलायन के कई वाकया पढ़ने को मिलते हैं। कई ऐतिहासिक फिल्मों में ऐसे दृश्य दिखते हैं, जिसमें बड़े पैमाने पर लोग पलायन को बाध्य हैं। लेकिन पूरे देश ने पहली बार यह देखा, कैसे लोग परिस्थिति के आगे मजबूर होकर हजारों किलोमीटर चलने को बाध्य हैं।

महामारी का डर: हम जानते हैं कि भारत की आबादी विश्व में दूसरे नंबर पर आती है। अगर भारतीय महानगरों की बात करें तो यहाँ पर आबादी भारत के किसी अन्य प्रदेशों की तुलना में सबसे ज्यादा है। उसमें भी अगर महानगरों के उन इलाकों की बात करें जहाँ मजदूर रहते हैं तो इन इलाकों की आबादी और भी ज्यादा है। मजदूर वर्ग छोटे-छोटे कमरों में रहते हैं। उसमें भी कई की संख्याओं में रहते है। कोरोना महामारी के बारे में बहुत स्पष्ट है कि यह छुआ-छूत की बीमारी है। एक-दूसरे के संपर्क में आने से फैलती है। अत: इन इलाकों में महामारी का खतरा सबसे ज्यादा हो जाता है। तंग इलाका होने की वजह से यहाँ पर बड़े वाहन के द्वारा रासायनिक छिड़काव भी संभव नहीं हो पाता है। यहाँ रहने वाले मजदूर इन वजहों से बहुत डर गए थे।

जबकि मजदूर जिन क्षेत्रों से महानगरों की ओर आए थे वे इलाके उतने सघन नहीं हैं। वहाँ पर महामारी के फैलने का खतरा महानगरों की तुलना में काफी कम इनको जान पड़ा। सच है कि २४ घंटे चलने वाले हमारे समाचार चैनल लगातार महानगरों में महामारी के फैलने की खबरें दिखा रहे हैं। जबकि भारत के सुदूर इलाकों के बारे में उतनी भयावह तस्वीर समाचार चैनल नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं। स्वाभाविक है कि महानगरों के मजदूर जो सुदूर इलाकों से वहाँ आए हैं, अपने क्षेत्रों की ओर जाना चाहेंगे। सोशल मीडिया पर एक चिट्ठी वायरल हुआ, जिसमें मुंबई के बांद्रा में फंसे कटिहार (बिहार) के मजदूर हेमंत पोद्दार, अभिषेक कुमार और जितेंद्र पोद्दार बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और देश के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से अपने गांव पहुंचाने की गुहार लगा रहे हैं। इस चिट्ठी में इन मजदूरों ने लिखा हैं कि उन्होंने १४ अप्रैल तक घर में रहकर लॉकडाउन का पालन किया और सरकार की बात मानी। अब सरकार को भी उनकी बात मानते हुए उन्हें १५ अप्रैल को उनके घर पहुँचाने का इंतजाम करना चाहिए। इस चिट्ठी में इन मजदूरों ने मुंबई और उसके आस-पास के स्लम एरिया प्रमुखत: धारावी में कोरोना के तेजी से फैलने का भी जिक्र किया है, जिससे वे लोग डरे हुए हैं।

स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं की अनिश्चितता: कोरोना अभी तक लाइलाज बनी हुई है। इस बीमारी का अभी तक कोई इलाज नहीं खोजा जा सका है। ऐसे में अगर कोई इसकी जद में आ जाता है तो सब कुछ फिर भगवान भरोसे हो जाता है। क्या खास और क्या आम, आज भारत की पूरी जनसंख्या इस बीमारी से अनजान लड़ाई लड़ रही है। भले ही कोई इससे ग्रसित हो या न हो पर खौफ के माहौल में तो पूरा देश है। जाहिर तौर पर मजदूर इस बीमारी के लिए अपवाद नहीं हैं। वे भी इसकी चपेट में आ सकते हैं और अगर एक बार आ जाते हैं तो महँगी इलाज का डर एक बड़ी समस्या बन खड़ी हो जाती है। इसलिए स्वयं की रक्षा सबसे अपरिहार्य हो जाती है। इन कारणों से ही मजदूरों ने महानगरों को छोड़ अपने इलाकों की ओर लौटना कबूल किया। हर शहर में इस बीमारी के लिए कुछ खास अस्पताल ही निर्धारित किए गए हैं। वहाँ पहले से ही काफी भीड़ है। ऐसे में इन मजदूरों को यह डर सता रहा था कि हो सकता है उनको उनकी पृष्ठभूमि के कारण इलाज में वरीयता मिले या न मिले। बेहतर उनको घर लौटना ही लगा।

जमा पूंजी खर्च होना: मजदूरों का जीवन रमता जोगी बहता पानी की तरह होता है। जमा पूंजी उनके पास नहीं होती है। रोज कमाना, रोज खाना उनकी आदतों में शुमार होता है। कुछ तो परिस्थितिवश मजबूर होते हैं, कुछ आदतन भी होते हैं। कुल मिलाकर बात यह है कि कुछ दिन तो गुजर-बसर बिना कमाई भी कर सकते हैं। जब बात महीनों की हो तो फिर मामला संजीदगी भरा हो जाता है। रोज का खाना-पानी, दवाई का खर्चा, महीना भाड़ा, केवल अपना ही पेट भरना हो तो थोड़ी बात समझ में आती है। अक्सर देखा गया है कि मजदूरों का परिवार लंबा-चौड़ा होता है। ऐसे में बिना कमाई किए महीनों का खर्चा चला पाना कठिन चुनौती है। छतरपुर के रहने वाले अनिल बताते हैं कि वह और उनके गाँव के कुछ लोग दिल्ली में रिक्शा चलाकर अपने परिवार का गुजर-बसर करते हैं। लॉकडाउन की वजह से उनके पास कमाई का कोई जरिया नहीं बचा और जमा-पूँजी भी खत्म हो गई। तब मजबूरी में उन्हें अपने घर के लिए लौटना पड़ा। अब ऐसे में उनके पास कोई जरिया नहीं है। वो यहाँ रह कर भी क्या करेंगे। इसलिए उन्होंने यहाँ से अपने रिक्शे से ही अपने घर तक जाना उचित समझा और निकल लिए। इस तरह के समाचारों के उदाहरण से भारतीय मीडिया भरी पड़ी है, लेकिन बड़ा सवाल है कि आजादी के इतने साल बाद भी मजदूरों की दशा और दिशा क्यों नहीं बदली ? इसका जवाब देने वाला कोई नहीं है।

अपने लोग और अपनी जमीन के बीच पहुँचने की लालसा: मनुष्य की स्वाभाविक मानसिकता है कि बुरे समय में वह अपने परिचित के बीच रहना चाहता है। अपने पैतृक भूमि जाना चाहता है। मजदूरों का बड़ा तबका भले ही शहरों में आ गया है, पर शहर में उनका कोई अपना मकान या जमीन नहीं है। जिन क्षेत्रों से वें आएं हैं, उन इलाकों में उनका अपना मकान और जमीन है। वहाँ उनको जानने वाले लोग हैं, जिनसे उनका संबंध मजदूर और मालिक का न होकर पारिवारिक या समकक्ष का होता है। बुरे वक्त में उन्हें यह उम्मीद होती है कि एक बार अगर वह अपने गाँव और अपनी जमीन को लौट जाएंगे तो उनकी मनोदशा के साथ ही अन्य दशाएँ भी ठीक हो जाएंगी। और उसे अगर कोई जरूरत महसूस होगी तो उसे वहाँ उपलब्ध हो जाएगी। अपने लोगों से माँगने में उसे शर्म भी महसूस नहीं होगी। एक डर यह भी होता है कि खुदा-न-खास्ता अगर उसे कुछ हो जाता है तो शहर में ही दफना दिया जाएगा या जला दिया जाएगा। अपनी मिट्टी तक वह नहीं पहुँच पाएगा। इस तरह की कई अनजान डर की वजह से लोग अपने लोगों और जमीन तक पहुँचना चाहते हैं। प्रवासी मजदूरों के लिए काम करने वाली संस्था आजीविका ब्यूरो के दीपक परडकर ने बताया, ''हमारे लिए सबसे मुश्किल काम मजदूरों को यहाँ पर रुकने के लिए समझाना है। जैसे-जैसे लॉकडाउन बढ़ रहा है, इन लोगों के सब्र का बाँध टूट रहा है। ये अब यहाँ रुकना नहीं चाहते और अपने घर जाना चाहते हैं। इनके पास कोई काम नहीं है तो दिन भर एक छोटे से

कमरे में इनके लिए रुकना काफी मुश्किल हो रहा है।'' इसके अलावा इन्हें घरवालों की फिक्र भी होती है। जब घर से फोन आता है तो यह फिक्र बेचैनी में बदल जाती है।

महानगरीय अलगाव: गाँव और शहर के समाज की अगर तुलना करें तो दोनों के समाजों में काफी अंतर देखने को मिलेगा। गाँवों का समाज आपस में जुड़ा होता है और हर व्यक्ति की उस समाज में पहचान होती है जरूरत पड़ने पर लोग एक-दूसरे का हालचाल लेते हैं। जहाँ तक संभव हो पाता है, सहायता भी करते हैं। वहीं अगर शहरों की बात करें तो यहाँ का समाज बिलकुल गाँवों से विपरीत है। मानसिकता और व्यवहार दोनों के आधार पर मजदूर वर्ग खुद को कभी भी शहर का अभिन्न हिस्सा नहीं मानते हैं। मुश्किल होने पर उनको गाँवों और गाँव के लोग ही याद आते हैं। महानगरीय अलगाव की वजह से लोगों में सुरक्षा-बोध की कमी रहती है। कोरोना महामारी में लोग एक-दूसरे से कम बात करना चाहते हैं, कम मिलना चाहते हैं। नए संपर्क का आधार तो कल्पना से परे है। ऐसे में जरूरतमंद मजदूरों का हालचाल कौन लेना चाहता है?

सरकार और शासन का उन तक न पहुँच पाना: हमारे न्यूज चैनल और अखबार सरकारी घोषणाओं से भरे पड़े हैं। हर राज्य बड़ा-बड़ा दावा कर रहे हैं। हर सरकारी रहनुमा खुद को मजदूरों का मसीहा बता रहा है। साथ ही यह भी दावा कर रहा है कि इस महामारी के दौरान मजदूरों को किसी भी चीज की दिक्कत नहीं होगी। जिसमें खाना-पानी, दवाई और जरूरत की सारे सामान शामिल हैं। अब यहाँ से सवाल यह निकलता है कि जिस आक्रामकता के साथ बड़े-बड़े विज्ञापन और बड़ी-बड़ी घोषणाएँ, सरकारी और निजी चैनलों में दिखाई दे रहे हैं अगर उसी अनुपात में जमीन पर काम हुआ होता तो आज लाखों की तादाद में मजदूर हजारों किलोमीटर दूर अपने घर बिना किसी साधन के ही जाने को बाध्य न होते। ऐसा भी नहीं है कि जिन लोगों ने अच्छा काम किया उनको जनमाध्यमों ने वरीयता नहीं दी। कुछ ऐसे भी उदाहरण दिखाई दिए, जिन्होंने प्रशंसनीय काम किया है। २२ अप्रैल जो जब कारोना वायरस के खतरे को देखते हुए पूरे देश में प्रधानमंत्री ने लॉकडाउन की घोषणा कर दी तब मजदूरों में रोजगार और खाने-पीने को लेकर एक असमंजस की स्थिति पैदा हो गई। इसमें कुछ अफवाहों ने भी आग में घी का काम किया। देखते ही देखते दिल्ली सहित पूरे देश से मजदूरों ने अपने घरों के लिए पलायन करना शुरू कर दिया। मजदूरों में डर इतना बैठ गया कि परिवहन सेवा बंद होने के बावजूद भी वे पैदल ही हजारों किलोमीटर दूर अपने घरों को निकल पड़े । जिस कारण कई लोगों को अपनी जान भी गँवानी पड़ी। इसी तरह सफदरजंग की झुग्गी में रहने वाले लोग भी पलायन करने की योजना बनाने लगे थे। इस मौके पर जब ये मजदूर अपने परिजनों के साथ अपने घरों को निकलने की तैयारी में थे तब इंस्पेक्टर नितिन मेहरा ने इन सभी मजदूर परिवारों को भरोसे में लेकर न सिर्फ उन्हें रोका बल्कि तभी से अपनी एक टीम के साथ उनके खाने-पीने और सुरक्षा उपकरण मास्क आदि का इंतजाम भी करवाया। शुरुआत में नितिन को इन मजदूरों को समझाने और भरोसा पाने में काफी दिक्कत हुई, लेकिन जिस तरीके से उन्होंने मजदूरों के खान-पान का प्रबंध किया, साफ-सफाई की शुरुआत की और सोशल डिस्टेंसिंग को अंजाम दिया, उससे इनमें जागरुकता के अलावा भरोसा भी पैदा हुआ। नितिन ने इन्हें पलायन में होने वाली समस्याओं से भी अवगत करवाया।

संचार माध्यमों की असफलता: हमारे २४ घंटे चलने वाले समाचार चैनल देखें तो कभी-कभी यह सरकारी मुखपत्र से ज्यादा कुछ और प्रतीत नहीं होता। अगर सही-सही इसने दोनों पक्षों के बीच समन्वय करते हुए समाचार को दिखाया होता तो दिग्भ्रम की स्थिति न पैदा होती। जहाँ पर संचार में खालीपन है, वहाँ सूचना पहुँचाकर जरूरतमंदों को सहायता पहुँचाई जा सकती थी। हमारी मीडिया ने अपनी कर्त्तव्य का निर्वहन निष्पक्षता पूर्वक करने में कहीं न कहीं कोताही बरती, जिसका परिणाम है कि एक तरफ भारी-भरकम सरकारी घोषणाएँ हो रही थी और दूसरी तरफ हजारों की तादाद में लोग

सड़कों पर पैदल बदहवास अपनी घरों की ओर निकल पड़े थे। अभी भी मीडिया ने सही–सही मजदूर पलायन की तस्वीर दर्शकों के सामने नहीं प्रस्तुत की है। संचार माध्यमों ने मजदूरों को यह भी नहीं बताया है कि मजदूरों के लिए मूलभूत जरूरी सामान कहाँ मिलेगी और कैसे प्राप्त करेंगे? जिनसे बहुत ज्यादा उम्मीद थी मीडिया एक तरह से माध्यम की भूमिका अदा करती है पर इस मामले में मीडिया बिलकुल असफल होते दिखाई देती है। वर्तमान में तो ऐसा लगता है कि मीडिया उच्च–वर्ग और उच्च मध्यम वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करती है। मजदूर वर्ग की इसे तब याद आती है जब इन दो वर्गों का हित प्रभावित होता है। लाखों की तादाद में मजदूरों के अपने गाँव लौट जाने के बाद शहरों की बुनियाद शायद तहस–नहस हो जाए। शहर कारोबार या व्यावसायिक गतिविधियों और उद्योग–धंधों के बूते जिंदा रहे हैं और उन्हें जीवन देने वाले वे सस्ते मजदूर ही रहे हैं। इसलिए अब चिंता यह उभरी है कि सस्ते मजदूरों से खाली होने वाले शहरों की बुनियाद कैसे बचेगी? यह बेवजह नहीं है कि लॉकडाउन के शुरुआती दौर में मजदूरों और उनकी तकलीफों से पूरी बेरहमी से पल्ला झाड़ लेने वाले लोग और सरकारें इस नए विस्थापन से चिंतित नजर आ रही है। कई राज्य सरकारों ने अब मजदूरों को सब कुछ शुरू और ठीक होने का आश्वासन देना शुरू कर दिया है?

सवाल यह है कि हर ठौर से बेठौर कर दिए जाने वाले मजदूरों की फिक्र अब किसी को हो रही है तो ऐसा क्यों है? कब तक है और किस हद तक है? उत्पादन और व्यापार का ढांचा, रोजगार के अवसर, काम के हालात, काम के घंटे, मेहनताना और उसका भुगतान, सुरक्षा की शर्तें या आश्वासन क्या सब कुछ कम से कम पहले की तरह बने रहने देंगे और क्या अब पुराने मजदूर की पहचान मजदूर के रूप में रह सकेगी? या फिर, क्या वह अघोषित दास के हालत में जाने पर मजबूर होगा?

मकान मालिकों की बेरुखी: जहाँ एक ओर मजदूरों का रोजी–रोजगार ठप हो गया, वहीं दूसरी ओर उन पर मकान मालिकों की तरफ से मकान किराया देने के लिए दबाव बनाया गया। इस दो–तरफा वार से वे टूट गए। उन्हें कोई रास्ता नजर नहीं आया और मजबूरन उन्होंने घर वापसी का फैसला लिया। बड़े–बड़े सरकारी दावे खोखला साबित हुए। सारे आश्वासन धाराशायी हुए। कोरोना वायरस या कोविड–१९ महामारी के हवाले से २४ मार्च को जब अचानक ही देश भर में लॉकडाउन लगा तो उसके बाद सबसे बड़ी चुनौती उन लोगों के सामने खड़ी हो गई, जिनका रोजी–रोजगार छिन गया और वे कुछ घंटे के भीतर ही हर जगह से लाचार और बेठौर हो गए। पहले से ही असुरक्षित और अस्थायी नौकरियों से लेकर हर स्तर की दिहाड़ी छिन जाने और मकान मालिकों की बेरुखी के बाद हजारों लोगों के सामने सड़क पर आ जाने के सिवा कोई चारा नहीं बचा। अकेला विकल्प अपने गाँव लौट जाना था, जहाँ जाने के लिए सारे साधन बंद हो चुके थे।

निष्कर्ष: मजदूर वर्ग देश के लिए समस्या नहीं, बल्कि समस्या का समाधान है। देश के विकास में मजदूरों का योगदान किसी भी पूँजीपति से किसी भी मायने में कहीं से भी कम नहीं है। इस बात को हमारे हुक्मरानों को समझना होगा। जिन हाथों में इतनी ताकत है कि वह शहरों को बना सकें उन हाथों में यह भी क्षमता है कि वह सत्ता को गिरा दें। वर्तमान में मजदूरों में काफी आक्रोश है, भविष्य में इसके परिणाम दिखेंगे।

संपर्क:

अजय कुमार सिंह: असिस्टेंट प्रोफेसर, TIAS, नई दिल्ली, ईमेल: ajaybhu2010@gmail.com
मो. 9608010072

विपुल प्रताप: एसोसिएट प्रोफेसर, TIAS, नई दिल्ली, ईमेल: vipulpartap@rediffmail.com
मो. 9013494334

राजनीतिक सत्ता का संदर्भ एवं समकालीन पत्रकारिता

आनंद प्रसाद नोनिया

समकालीन हिंदी पत्रकारिता में राजनीति और सत्ता का प्रमुख स्थान है। इसलिए उसमें मूल्यों के विघटन एवं बदलाव में इन दोनों तत्वों की मुख्य भूमिका है।

पत्रकारिता में राजनीति के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए प्रमोद जोशी ने लिखा है– "पत्रकारिता खुद में एक प्रकार की राजनीति है, ऐसी राजनीति जिसका केंद्रिय विषय सार्वजनिक हित है, सत्ता पाना नहीं, सत्ता की राजनीति भी ऐसा ही दावा करती है, पर वह जिन आधारों पर चल रही है, वे संकीर्ण होते जा रहे हैं। पत्रकारिता की जिम्मेदारी है कि वह उन संकीर्ण आधारों पर चोट करे। इसके लिए उसे अपनी साख बनानी होगी।" किंतु समकालीन पत्रकारिता इस मुद्दे से विस्थापित होकर पूरी तरह 'जन पक्षधरता' के स्थान राजनीतिक 'दलीय पक्षधरता' को दर्शा रही है, जिसके विषय में प्रमोद जोशी ने संकेत किया है– "हाल के वर्षों में भारतीय पत्रकारिता में जो सवाल उठे हैं, वे दो तरह के हैं, एक, व्यावसायिकता के कारण ऐसी पत्रकारिता को बढ़ावा मिल रहा है, जो देश और समाज की वास्तविकता से दूर जा रही है। उसमें चाट मसाले की प्रवृत्तियाँ प्रवेश कर रही हैं। दूसरे, पत्रकार तटस्थ पर्यवेक्षक के बजाय किसी न किसी राजनीतिक पक्ष के अंध–समर्थक या आलोचक बन रहे हैं।" इस प्रकार की अवनति स्वतंत्रता के बाद भी पत्रकारिता में नहीं थी, जिसकी ओर ध्यानाकृष्ट करते हुए रामशरण जोशी ने लिखा है– "स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय पत्रकारिता का मिशनवादी चरित्र अक्षुण्ण नहीं रह सका। इस दौर की हिंदी पत्रकारिता पर सत्ता प्रतिष्ठान कभी हावी नहीं हो सकें। इस संदर्भ में क्षेत्रीय अखबारों की भूमिका उदाहरणीय रही है। मध्य प्रदेश में 'नई दुनिया', उत्तर प्रदेश में 'आज' व 'अमर उजाला', बिहार में 'आर्यावर्त', कलकत्ता में 'सन्मार्ग', राजस्थान में 'लोकवाणी' व 'राष्ट्रदूत' जैसे क्षेत्रीय दैनिक तत्कालीन सत्ता प्रतिष्ठान की कृपा पर कभी निर्भर नहीं रहे। इसके विपरीत तत्कालीन राज्य सरकारें इन दैनिकों के प्रभाव से भयभीत रहती थीं। इसकी सबसे बड़ी वजह यह थी कि पत्रकारिता और राजनीति ने अपनी–अपनी सीमाएँ तय कर रखी थीं। दोनों ने ऐसे गठबंधन को जन्म देने की कोशिश नहीं की, जिसकी वजह से वे किसी अपराध– बोध के तले दबते चले जाए और जनता के समक्ष स्वयं को गुनहगार समझे।" स्वातंत्र्योत्तर पत्रकारिता का कुछ काल सत्ता और राजनीति के वर्चस्व से बचा रहा, किन्तु १९६० के बाद जहाँ से समकालीन पत्रकारिता का दौर शुरू होता है वहाँ से पत्रकारिता का और राजनीति का संबंध धीरे–धीरे बदला और समकालीन पत्रकारिता में राजनीति की संगति दिखने लगी। ध्यातव्य है, रामशरण जोशी का मंतव्य–''१९६५ से १९७५ का युग हिंदी पत्रकारिता के लिए एक नए अनुभव का काल रहा,...जहाँ हिंदी पत्रकारिता में वैचारिक पत्रकारिता की धारा बही, वही व्यवहारवादी राजनीति की धारा भी दिखाई देती है। पत्रकारिता दो खेमों में विभाजित दिखाई देती है।

कांग्रेसी राजनीति के नेहरूकालीन आभा मंडल के विखंडन और तेज रफ्तारी इंदिरा ब्रांड राजनीति के उदय ने राजनीति एवं पत्रकारिता की आवश्यक दूरी को कम किया। इसी दौर में पत्रकारिता के राजनीतिकरण की प्रक्रिया शुरू हो गई। प्रेसपति, पत्रकार और राजनीतिज्ञ एक-दूसरे के करीब आए। पत्रकारिता में ऑब्जेक्टिविटी, व्यक्तिनिष्ठ एवं दलनिष्ठा दिखाई देने लगी। पत्रकारिता का स्वतंत्र अस्तित्व कटघरे में खड़ा दिखाई दिया।" अर्थात समकालीन पत्रकारिता में सत्ता एवं राजनीति के प्रवेश के कारण मूल्यों का स्खलन हुआ है।

समकालीन पत्रकारिता में गुणात्मक परिवर्तन भूमंडलीकरण के पश्चात भी आया। उसका राजनीति से संपर्क और घनिष्ठ होता गया तथा छद्म खबरों का प्रसारण उसकी नीति बनती चली गई। वह राजनीतिक जनमत का पुरोधा बन कर उभरी। राजनीति एवं सत्ता की समीपता के कारण जो पत्रकारिता लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करती थी, वह उन मूल्यों की संहारक बन गई। पत्रकारिता जनमत प्रकाशन का माध्यम होती है, किन्तु राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण वह 'जनमत निर्मिति' का आधार बनती चली गई। अमित कुमार के शब्दों में- "संचार-माध्यम अब केवल जनमत प्रकाशित करने तक सीमित नहीं है, अब यह जनमत निर्मित भी करने लगी है। सहारा चैनल या ऐसे ही अन्य कई चैनलों द्वारा अशोषित रूप से पार्टी-विशेष की विचारधारा को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्य किया जाता है। टीवी चैनलों द्वारा चुनाव पूर्व किए गए सर्वेक्षण के अध्ययन से भी यह निष्कर्ष सामने आता है कि इसमें पार्टी-विशेष के प्रति सहानुभूति को सुनियोजित तरीके से प्रचारित प्रसारित किया जाता है। इन चुनाव-पूर्व सर्वेक्षण में वैज्ञानिक विधियों का समावेश होता है, विशेषज्ञों का सहारा लिया जाता है, उसके बाद भी इसमें पूर्व निर्धारित निष्कर्ष को ही जनता की राय के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।"

वस्तुत: लोकतंत्र का सहज प्रहरी कही जाने वाली पत्रकारिता वर्तमान समय में लोकतंत्र के समक्ष नई चुनौतियों को खड़ा कर रही है। क्योंकि वर्तमान समय में पत्रकारिता अपने पुनीत कर्तव्य जन-जागरण से दूर होती जा रही है और सत्ता तथा राजनीतिक वर्चस्व के कारण वह विरोधाभाषी खबरों की संपोषक बनती जा रही है। इस तथ्य को पुरुषोत्तम अग्रवाल के शब्दों में संकेतित करना उचित होगा। "औसत पढ़ा-लिखा आदमी यह मानकर चलता है कि अखबार लोकतंत्र का प्रहरी है, उसकी स्वतंत्रता विवाद के परे है, लेकिन हमारे जैसे समाजों की स्थिति एकदम जुदा है। इसीलिए यह चिंताजनक लगता है कि हमारे यहाँ भी अखबार के 'स्वाभाविक काम' की धारणा ही गहरे में आत्मसात करती गई है। कोरे भंडाफोड़ को अखबार की प्रखरता का प्रमाण तथा राजनीतिक लंद-फंद में अखबार की सक्रिय हिस्सेदारी को उसकी राजनीतिक परिपक्वता का उदाहरण माना, जो यह माँग इसी चिंताजनक आत्मसातीकरण को सूचित करती है।"

सत्ता और राजनीतिक वर्चस्व के कारण समकालीन पत्रकारिता में मूल्यों का विघटन हुआ है, जिसकी ओर डॉ. सु. नागलक्ष्मी का कथन ध्यानाकर्षित करता है- "आज की बदलती परिस्थितियों में मूल्य दृष्टि संबंधी प्रतिमान बदल चुके हैं। आज की संस्कृति में उपयोग का भाव, स्पर्धा का भाव, कृत्रिमता का आधिक्य, मशीनरी सभ्यता की प्रवृत्ति तथा व्यावसायिक मानसिकता प्रधान है।

समकालीन पत्रकारिता में सत्ता के वर्चस्व का बीज मूलत: आजादी के बाद ही, प्रेस जब उद्योग में रूपांतरण हुआ तभी पड़ चुका था। इस पर जगदीश्वर चतुर्वेदी के शब्दों में विचार उचित प्रतीत होता है, "आजादी के बाद चौथा स्तंभ स्वयं उद्योग बन गया। उसका उद्योग में रूपांतरण हो गया। अब इसका एक ही लक्ष्य था, मुनाफा कमाना। अब प्रेस स्वयं में एक व्यापार हो गया, जिस पर व्यापारिक घरानों का स्वामित्व था। आजादी के पहले प्रेस को विवेकवाद के उपकरण के रूप में देखा जाता था, किंतु आजादी के बाद ऐसा नहीं रहा। अब प्रेस का लक्ष्य पैसा और सत्ता हो गया, पुरस्कार और दंड देना हो गया है।"

समकालीन पत्रकारिता में सत्ता के वर्चस्व का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है, राजनेताओं का महिमामंडन अथवा उनके बयानों की अवनतिकरण, जिसकी ओर संकेत करते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं, "पहले नेता का अपने संदेश पर नियंत्रण था, किंतु आज ऐसा नहीं है। मीडिया के द्वारा नेता के बयान का बार-बार प्रसारण उसको अधमरा कर देता है और कभी-कभी तो मार ही देती है अथवा यह भी संभव है हीरो या खलनायक बना दे।" आगे पत्रकारिता के क्षेत्र में विदेशी पूँजीनिवेश के महत्व को सर्वप्रमुख कारण के रूप में निरूपित करते हुए उन्होंने लिखा है, "मीडिया में विदेशी पूँजीनिवेश का प्रमुख परिणाम यह निकला कि लोकतंत्र का चौथा स्तंभ अंततः सरकार और कॉरपोरेट जगत का चौथा स्तंभ बन गया है।"

राजनीति और सत्ता के वर्चस्व के कारण पत्रकारिता का चरित्र भी बदलता जा रहा है, क्योंकि पत्रकारों का सत्ताधारी वर्ग के लोगों के साथ मित्रता का संबंध हो गया है, जिसके कारण सरकारी तंत्र के अनुसार वे काम करते हैं, यथा-"वह (पत्रकार) साक्षात्कार के दौरान सत्ताधारी लोगों की प्रशंसा में मशगूल रहता है। अब पत्रकार का सत्ता के लोगों के साथ भाईचारा आम बात है। इन दिनों टीवी में सरकार का मंत्री अथवा प्रवक्ता बयान नहीं पढ़ता, बल्कि अब संवाददाता स्वयं ही सरकारी स्रोत के आधार पर खबर तैयार करके पेश करते हैं। हमारे माध्यमों में ज्यादातर खबरों का स्रोत सरकारी संस्थान हैं।"

राजनीतिक दखल से मीडिया की स्वतंत्रता का हनन हुआ है, उसके खबरों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगे हैं, क्योंकि पत्रकारिता का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहेगा तो जनता में सच्ची खबरें नहीं पहुँच पाएंगी, जिसके कारण बौद्धिक दिवालियापन ही बढ़ेगा। क्योंकि "मीडिया जब प्रहरी की भूमिका अदा करता है तो उसका प्रधान कार्य है सरकार के कार्यों को पारदर्शी बनाना। सरकार को जवाबदेह बनाना, सत्ता में बैठे लोगों का सार्वजनिक मूल्यांकन करना, यह कार्य-नीतियों की असफलता को उजागर करके किया जाता है।" किंतु समकालीन पत्रकारिता में उपर्युक्त तथ्यों का अभाव सत्ता के वर्चस्व को ही दर्शाता है।

पत्रकारिता पर राजनीति का वर्चस्व इतना बढ़ चुका है कि वह राजनीतिक दलों के लिए एक प्रकार से जनमत संग्रह करने का औजार बनती जा रही है, क्योंकि "जनमत सर्वेक्षण अब राजनीतिक समर्थन हासिल करने का साधन बन गए हैं। इनके माध्यम से जनमत को निर्देशित करने की कोशिश की जाती है।"

समकालीन पत्रकारिता किस प्रकार नैतिकता का दामन छोड़कर राजनीति और सत्ता की परमुखापेक्षी बन चुकी है, उस पर विचार करते हुए सुनील अमर ने लिखा है- "अखबार का काम, राजकाज की प्रशंसा करना नहीं, अपितु राज में पर्दे के पीछे जो काज हो रहा हो, उसे जनता के सामने लाना होता है। आज से नहीं, देश की आजादी के समय से ही, सरकार जनता और देश के हित में जो काम और फैसले करती है, उसका तो बहुत व्यवस्थित प्रचार करती ही रहती है। आज के इस विकट समय में, जबकि जनता की आवाज कहे जाने वाले अखबार और अन्य समाचार माध्यम शुभ-लाभ के व्यावसायिक धंधों में लग गए हैं, उनसे अपेक्षा करना ही बेमानी है कि वे सरकारों से पंगा लेकर उनके राजकाज का पर्दाफाश कर सकेंगे।" अंततः यह कहना उचित होगा कि समकालीन हिंदी पत्रकारिता में राजनीति और सत्ता के वर्चस्व के फलस्वरूप नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन स्पष्टत रूप में दिखाई देता है ।

संपर्क : हिंदी अनुवादक, 36, एच.के. सेठ लेन, कोलकाता- 700050
ईमेल : anand87prasad@gmail.com **मो. 9748322234, 9123383470**

हालाँकि हिंदी तो हिंदी ही रहेगी

विनय बिहारी सिंह

कहने की जरूरत नहीं कि सारी भाषाएं मूल रूप से संस्कृत से निकली हैं। बांग्ला एक अत्यंत समृद्ध भाषा है। क्योंकि इसमें संस्कृत के शब्द बहुतायत में मिल जाएंगे। हिंदी भी वैसी ही समृद्ध है। लेकिन तनिक सी असावधानी दोनों भाषाओं का घालमेल कर देती है। एक भाषा में, दूसरी भाषा के शब्दों का आना सामान्य सी बात है। लेकिन शब्दों के मिलन में संतुलन की जरूरत होती है। जैसे यदि हिंदी में स्वच्छ की जगह बांग्ला का प्रचलित शब्द परिष्कार लिखा जाए तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन हिंदी के शब्द– नया की जगह बांग्ला का नतून नहीं चलेगा। तो कहां कौन सा शब्द लिखा जाए, इसे लेकर सावधानी जरूरी है।

शुरुआत एक रोचक घटना से करते हैं। एक परिवार में भोजन पर आमंत्रित था। समय काटने के लिए उनके बच्चे की हिंदी की कॉपी देख रहा था। बच्चों को ऐसे व्यक्ति पर लेख लिखना था, जो उनके लिए प्रेरणा का स्रोत हो। जिस परिवार में मैं आमंत्रित था उनकी बच्ची ने अपनी दीदी को प्रेरणा का स्रोत कहा था और उनके बारे में लिखा था। कॉपी जांचने वाली अध्यापिका शायद बांग्ला भाषा के परिवेश से थीं। उस बच्ची के लेख में उन्होंने एक पंक्ति जोड़ दी थी। पंक्ति इस प्रकार थी– मेरी दीदी मेरी सारी चाहिदाएं पूरी कर देती हैं। (चाहिदा बांग्ला शब्द है, जिसका अर्थ है इच्छा)। अध्यापिका लिखना चाहती थीं – मेरी दीदी मेरी सारी इच्छाएं पूरी कर देती हैं। लेकिन वह बांग्ला मिश्रित हिंदी हो गई। मुझे यह पढ़ कर झटका लगा। यह अबोध बच्ची तो बांग्ला मिश्रित हिंदी सीख रही है। मैंने इस ओर उस बच्ची के अभिभावकों का ध्यान खींचा। उन्होंने वादा किया कि वे स्कूल की प्रधानाध्यापिक से मिलेंगे और इस समस्या पर बातचीत करेंगे। उन्होंने आरोप लगाया कि कम वेतन देकर कुछ प्राइवेट स्कूल किसी को भी हिंदी का अध्यापक रख लेते हैं। हालांकि यह आरोप सारे प्राइवेट स्कूलों पर लागू नहीं होता। अनेक प्राइवेट स्कूल श्रेष्ठ पढ़ाई के लिए भी विख्यात हैं।

एक दूसरी घटना: एक कार्यालय में उत्तर प्रदेश से कुछ सामान भेजा गया। अंदर जो कागज मिला, उस पर लिखा गया था– भेजे गए सामान की सूची। इस सूची में लिखा गया– नए रजिस्टरों की संख्या– ९। अब हिंदी के अंकों को समझने वाला वहाँ कोई नहीं था। एक बांग्ला जानने वाले कर्मचारी से पूछा गया कि क्या वह हिंदी समझता है ? उस कर्मचारी ने कहा– हाँ, तो उससे कहा गया कि वह इन अंकों को बांग्ला में लिख दे। उस कर्मचारी को भी हिंदी का कोई खास ज्ञान नहीं था। पता नहीं क्यों, उसने कह दिया कि वह हिंदी जानता है। उसने बांग्ला में हिंदी के नौ को सात लिख दिया। अब दोनों कार्यालयों में पत्राचार शुरू हुआ। कोई किसी की बात मानने को राजी नहीं। अंत में जब सामान भेजने वाले कार्यालय की जांच टीम आई और हिंदी और बांग्ला अनुवाद आमने– सामने रखा गया तो गलती पकड़ में आई। कम ज्ञान वाले अनुवादक ने कहा– हिंदी का यह नौ बांग्ला के सात से मिलता जुलता था। सो मैंने सात लिख दिया।

किस्सा कोताह यह कि अनुवाद या साइन बोर्ड लेखन जानकार आदमी से कराना चाहिए।

कोलकाता के पास प्रसिद्ध स्थान दक्षिणेश्वर है। निश्चित ही यहां हिंदी भाषी प्रदेश के अनेक लोग रोज आते हैं और माँ काली का दर्शन करते हैं। यह वही स्थान है, जहाँ विख्यात संत रामकृष्ण परमहंस ने आध्यात्मिक साधनाएँ की थीं और माँ काली का साक्षात दर्शन किया था। और जहाँ उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने उनसे दीक्षा ली थी। शनिवार और मंगलवार को तो यहाँ भारी भीड़ होती है। कोलकाता आने वाला हर आस्तिक व्यक्ति यहाँ आना चाहता है। यहाँ बस स्टैंड पर कई सरकारी बोर्ड लगे हैं। इसमें एक पर लिखा है– बेलघरिया एक्सप्रेस हाईओय। बेलघरिया एक्सप्रेस हाईवे की जगह, यह अशुद्ध हिंदी आपको खटकती है तो खटके। लिखने वाले ने तो लिख दिया। यह अशुद्ध हिंदी हाई वे पर अनेक जगहों पर बार–बार दुहराई गई है। हिंदी की यह दुर्गति आप बार–बार होते देखेंगे तो आपका संवेदनशील मन दुखी होगा।

कोलकाता में अशुद्ध हिंदी का यह सिर्फ एक उदाहरण नहीं है। लेकिन किसी गलत साइन बोर्ड, किसी गलत सूचना पट्ट को सुधारने के लिए क्या करें? इसके प्रति कोई सक्रिय नहीं दिखता। आइए विस्तार से जानें कि असल बात क्या है। मेट्रो रेल के डिब्बे में एक स्टिकर चिपकाया गया है, जिस पर लिखा है– दरवाजों पास पास में खुलें। दरवाजों पर टेक न लगाएं। कहने की कोशिश है कि मेट्रो रेल के दरवाजे स्लाइडिंग हैं यानी खुलते और बंद होते वक्त डब्बे की दीवार में सरक कर चले जाते हैं या चले आते हैं। यह भी लिखा जा सकता है कि दरवाजे दीवारों में से सरक कर बंद होते या खुलते हैं। ब्रेकेट में स्लाइडिंग लिखा जा सकता है। लेकिन इसका अर्थ समझ में नहीं आता कि दरवाजों पास पास में खुलें। पहले लिखा जाता था– दरवाजे पास पास में खुलें। दरवाजों पर टे न लगाएं। यह भी भ्रम पैदा करने वाली सूचना है।

कोलकाता में आपको सुरक्षित स्थान के बदले सुरझित स्थान लिखा हुआ दिख जाएगा। निश्चित तौर पर इसे हिंदी न जानने वाला व्यक्ति लिखता है। वरना वह क्ष की जगह झ क्यों लिखता। लेकिन चल रहा है तो बस चल रहा है।

दक्षिण कोलकाता के बाजारों में सोने–चाँदी के गहनों की अनेक दुकानें हैं। हैं तो उत्तर कोलकाता में भी, लेकिन दक्षिण कोलकाता में अपेक्षाकृत ज्यादा हैं। किसी जमाने में यहां एक प्रसिद्ध ज्वेलर हुआ करते थे– लक्ष्मी बाबू (बांग्ला में इसे लक्खी बाबू कहते हैं)। उनका नाम प्रतिष्ठा और शुद्धता का पर्याय बन गया है। आप किसी न किसी दुकान पर यह लिखा जरूर देख सकते हैं– यहि लखि बाबु की असली दोकान हाय। (यह लक्खी बाबू की असली दुकान है)। इसी तरह अनेक जगहों पर चित्तू बाबू को चित्तु बाबु लिखना आम गलती है। यदि आपको अशुद्ध हिंदी खटकती है तो क्या किया जा सकता है। हिंदी में कई बार जहाँ बड़ी ई वाली मात्रा का प्रयोग होता है वहां बांग्ला में छोटी ई चलता है। जैसे– बीड़ी को ही लें। इसे बांग्ला में बिड़ि लिखा जाता है। बांग्ला लिखने वाला हिंदी में बीड़ी को बिड़ि ही लिखता है। उसे यही लिखने की आदत है। गलती के मूल में एक यह कारण भी है। यहाँ छपने वाले हिंदी के पैंफलेटों में कई बार इसी तरह की अशुद्धियाँ दिख जाती हैं। कई बार क्लिष्टता भी दिखती है, जैसे– स्वच्छता बनाए रखें को परिष्कारिता बनाए रखें, चेतना रैली को सचैतन्य रैली लिखा जाता है और आमसभा का अनुवाद साधारण सभा कर दिया जाता है। एक दिलचस्प घटना का जिक्र करना यहाँ जरूरी है। एक बार एक राजनीतिक दल ने एक रैली की। उसने बांग्ला में पर्चा छपवाया। उस पर रैली की तिथि, समय और उसमें आने का आह्वान किया गया था। अंत में लिखा गया था– दले दले आसून (दल बना कर आइए। यानी समूह बना कर आइए। निहितार्थ– रैली को सफल बनाइए)। किसी को हिंदी अनुवाद करने को कहा गया ताकि पर्चा हिंदी में भी छप सके। अनुवादक ने अंतिम पंक्ति का अनुवाद किया– दलदल में आइए। अब कौन दलदल में फंसने के लिए आएगा? पढ़ने वाले को सदमा लगे तो उसकी बला से।

एक और दिलचस्प वाकया का जिक्र न करने से यह आलेख अधूरा रह जाएगा। पश्चिम बंगाल में मूढ़ी (पफ्ड राइस) खाने का चलन है। आमतौर पर लोग शाम को मूढ़ी का नाश्ता ही करते हैं। यह सुपाच्य और बिना घी–तेल वाला नाश्ता है। हालांकि मूढ़ी में नमक, नमकीन और सरसों का तेल डलवा कर बेगुन भाजा (बांग्ला में बैंगन के पकौड़े को बेगुन भाजा कहते हैं) के साथ खाने वालों की भी कमी नहीं है। लेकिन स्वास्थ्य के प्रति सतर्क लोग सादी मूढ़ी ही खाते हैं। नाश्ता के रूप में अनेक लोग मूढ़ी को सर्वोपरि रखते हैं। लेकिन इधर एक राय यह बन गई है कि मूढ़ी में कोई पौष्टिक तत्व नहीं होता। भले वह सुपाच्य है। लेकिन मूढ़ी के प्रेमी इसे स्वास्थ्य के लिए अच्छा ही मानते हैं। एक जगह लिखा देखा– स्वादिष्ट और ताजी मुड़ी खाइए। अब यहां मुड़ी का अर्थ है सिर। किसी ने मूढ़ी की जगह मुड़ी लिख दिया था। ध्यान दें तो इसका अर्थ हुआ– स्वादिष्ट और ताजा सिर खाइए। किसी ने मूढ़ी वाले को टोक कर तख्ती पर लिखा बोर्ड हटवाया। पर हर बार यह करना संभव नहीं हो पाता। आमतौर पर लोग इसलिए नहीं टोकते कि लिखने का निहितार्थ समझ लिया जाता है और अशुद्धियों की उपेक्षा कर दी जाती है।

अब कुछ और रोचक तथ्य। कई मामलों में कुछ शब्द मानों हिंदी में भी बांग्ला उच्चारण जैसे ही लिख दिए जाते हैं। जैसे– पानी टंकी को टेंकी, बस को बास, गाय को गोरू, नमकीन को नुनता और स्वादिष्ट को दारुण। हालांकि हिंदी में दारुण अत्यंत कष्टकारी अर्थ में लिया जाता है। लेकिन बांग्ला में यदि कोई खाद्य सामग्री अत्यंत स्वादिष्ट है तो उसकी प्रशंसा– दारुण टेस्ट कह कर की जाती है। सत्तू को छातू लिख देना भी इसी कड़ी का हिस्सा है। बांग्ला जानने– पढ़ने वाला समझ तो जाता है, लेकिन शुद्ध हिंदी का जानकार इसे अन्यथा लेता है। आमतौर पर अनेक शब्द बहुवचन का द्योतक है। लेकिन कई बार इसे अनेकों लिख कर अशुद्ध कर दिया जाता है।

बांग्ला में विख्यात संत रामकृष्ण परमहंस के दैनंदिन क्रिया–कलापों का, उनकी शिक्षाओं और दिव्यता पर केंद्रित पुस्तक– रामकृष्ण कथामृत है। इसे उनके शिष्य महेंद्रनाथ दत्त ने श्री म के नाम से लिखा है। वे लेखक के रूप में अपना नाम गुप्त रखना चाहते थे, इसलिए सिर्फ श्री म ही लिखा करते थे। फिर भी उनके पूरे नाम को सभी जानते हैं। इस पुस्तक का रामकृष्ण वचनामृत नाम से हिंदी अनुवाद हिंदी के विख्यात कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने किया है। निराला जी ने इतना सुघड़ हिंदी अनुवाद किया है कि पाठक मुग्ध हो जाता है। यह पुस्तक आज भी रामकृष्ण मठ के बुक स्टालों पर उपलब्ध है। इस पुस्तक में हिंदी के शब्दों का चयन अद्‌भुत है। श्री म, रामकृष्ण परमहंस के प्रिय शिष्यों में से एक थे। पेशे से वे अध्यापक थे। लेकिन ज्यादातर रामकृष्ण परमहंस के साथ ही दक्षिणेश्वर मंदिर में रहते थे। यह पुस्तक एक तरह से रामकृष्ण परमहंस की गतिविधियों, शिक्षाओं की दैनंदिन डायरी की तरह है। अत्यंत रोचक शैली में लिखी इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद उस समय निराला जी के ही वश की बात थी। निराला जी स्वयं साधु स्वभाव के थे। आज अनुवाद इसी तरह का अनुशासन की माँग करता है। यदि हम अपने पूर्वज लेखकों से सीख लें तो हिंदी की शुद्धता प्रमुखता के साथ उभरेगी।

संपर्कः

९बी, एन.जी. बसॉक रोड, दूसरा तल्ला, सेंट्रल जेल बस स्टॉप के नजदीक, दमदम,
कोलकाता–700080,**मो.7980282148** ईमेलः vinaybiharisingh@gmail.com

कोरोना संकट में भारतीय मीडिया की भूमिका और चुनौतियां

शंभु शरण सिंह

कोरोना संकट यानी कोविड–१९ एक वैश्विक महामारी है। इसने मानव जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों को प्रमाणित किया है। वैसे तो दूसरे देशों में यह वर्ष २०१९ से ही हाहाकार मचाए हुए है, लेकिन भारत में वर्ष २०२० का दौर विकास के बजाय महामारी से जूझने में गुजर रहा है। चूँकि समय चक्र परिवर्तनशील होता है ऐसे में कोरोना संकट से विश्व के साथ–साथ भारतीय मीडिया का भी हरेक क्षेत्र एवं तमाम पहलू प्रभावित हो रहा है। यहाँ मीडिया का मतलब प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, वेब मीडिया और सिनेमा जगत से है।

भारत सरकार ने शारीरिक दूरी से लेकर जागरूकता और बड़े पैमाने पर संदिग्ध कोरोना मरीजों की जांच–पड़ताल एवं छानबीन का अभियान छेड़कर निर्णायक पहल की है। इसलिए २२ मार्च को प्रधानमंत्री ने जनता कर्फ्यू के रूप में एक प्रकार का मॉक ड्रिल कराया और फिर अचानक २४ मार्च से राष्ट्रव्यापी लॉकडाउन का निर्णय लिया। अब भी १७ मई तक लॉकडाउन का तीसरा चरण (३.०) चल रहा है। भारत १३० करोड़ की आबादी में १० मई तक करीब पैंसठ हजार संक्रमित का आँकड़ा सामने आ चुका है। फिलहाल देश के कुल ७३६ जिलों में से १३० रेड जोन, २८४ ऑरेंज जोन और बाकी जिले ग्रीन जोन में हैं।

कोरोना संकट से मीडिया जगत भी अछूता नहीं है। लगभग एक सौ पत्रकार भी कोरोना वायरस से संक्रमित हो चुके हैं। मुंबई के ५३, चेन्नई में ३५, लुधियाना के १९ एवं अन्य शहरों के पत्रकारों के भी संक्रमित होने की खबरें हैं। दैनिक जागरण के वरिष्ठ पत्रकार एवं आगरा संस्करण के उप–समाचार संपादक पंकज कुलश्रेष्ठ कोरोना संक्रमण से ही जान गँवा चुके हैं। ऐसी चुनौती के समय में जहाँ मीडिया के लिए सच ही पथप्रदर्शक है, वहीं रिपोर्टिंग में बड़ा जोखिम है। लॉकडाउन में जहाँ मार्केट में सब कुछ का शटर डाउन है। ऑफिस, मॉल्स एवं व्यवसाय आदि सब बंद हैं। इससे आर्थिक वृद्धि बुरी तरह प्रभावित हुई है। वैश्विक जीडीपी में रोज कमी दर्ज की जा रही है। वहीं दूसरी ओर अखबार, रेडियो, टीवी और डिजिटल माध्यमों के जरिए सूचनाएं पाठकों, दर्शकों एवं श्रोताओं तक पहुँचाने में दिन–रात जी तोड़ मेहनत कर रहे हैं, लेकिन पत्रकारों के सामने हालात बड़े विकट हैं।

मीडियाकर्मियों पर आर्थिक दबाव है। वेतन अनियमित मिल रहा है। वेतन कटौती भी किया जा रहा है। नौकरी में छटनी की तलवार लटकी है। इस तरह से आपदा का कवरेज का अनुभव पहले कभी भारतीय पत्रकारों को रहा भी नहीं है। कोरोना–युग मीडिया जगत के लिए ऐसी चुनौती लेकर आया है, जैसी उसे पूर्व में कभी नहीं मिली थी।

दरअसल कोरोना संकट में सबको मौत से अधिक मौत का भय है। डरना भी जरूरी है, क्योंकि जान भी और जहान भी अब आवश्यक है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कोरोना संकट के दौरान देश को संबोधित करते हुए अपने संदेश में दो बार कहा कि डॉक्टरों, अस्पताल कर्मचारियों, सरकारी अधिकारियों की तरह ही मीडिया भी आवश्यक सेवाओं में शामिल है। मीडिया के लोग बहुत ही महत्वपूर्ण और आवश्यक सेवा दे रहे हैं।

देश की जनता मीडिया से चाहती है कि एक सौ तीस करोड़ लोगों के लिए देश–दुनिया के खबरों के साथ ही कोरोना के हालात पर नजर रखा जाए। खबर देते रहें, संपादकीय दायित्व निभाते रहें और नाइंसाफी एवं सरकारी तंत्र की नकारापन को उजागर करते रहें। इसके लिए डिजिटल स्रोत का भरपूर इस्तेमाल किया जा रहा है ताकि पल–पल की सूचनाएँ एकत्रित की जा सकें। विभिन्न उपायों समेत न्यूजरूम एवं कार्य स्थल को सैनिटाइज किया जा रहा है ताकि मीडिया का दफ्तर कीटाणुरहित रहे। इसके अलावा यथासंभव वर्क फ्राम होम मॉडल को भी अपनाया जा रहा है। छोटे–बड़े सभी मीडिया हाउस वर्क फ्राम होम करा रहे हैं। दफ्तर आने वाले या कवरेज करने वाले मीडियाकर्मियों को ग्लब्स, सैनिटाइजर्स और मास्क मुहैया कराया गया है, ताकि किसी भी प्रकार से कोरोना वायरस को रोका जा सके।

प्रिंट मीडिया की चुनौतियाँ: कोरोना खौफ को देखते कई वैश्विक पत्र–पत्रिकाएं प्रिंट संस्करण बंद करके पूरी तरह डिजिटलाइजेशन की ओर रूख कर रहे हैं, वहीं भारतीय अखबार भी इस चुनौती का कड़ा मुकाबला कर रहे हैं और पहले की तरह ही रोजाना अपने पाठकों तक अखबारों की प्रिंट कॉपी पहुँचा रहे हैं। इसमें परेशानियाँ भी कम नहीं हैं। इसके बावजूद मीडियाकर्मी से लेकर हॉकर तक अपनी–अपनी सावधानी बरतते हुए अखबार घरों तक पहुँचाने का काम कर रहे हैं।

जहाँ अपने देश में अखबार लोगों को जागरूक कर रहे हैं, वहीं उनके ऊपर खुद आर्थिक संकट पैदा हो गया है। शुरू में तो यह भी अफवाह फैला कि अखबार कामयाब रहे कि समाचार पत्र–पत्रिकाओं से कोरोना वायरस का संक्रमण नहीं फैलता। उधर महाराष्ट्र सरकार ने अखबारों की डोर–टू–डोर डिलीवरी पर प्रतिबंध लगा दी, लेकिन हाइकोर्ट के हस्तक्षेप के बाद अखबार वितरण की अनुमति पुन: दी गई।

कोरोना में अखबारों और पत्रकारों के साथ व्यवहारिक दिक्कतें भी कम नहीं हैं। यथा, मीडिया हाउस के तरफ से अखबार नवीसों और मीडिया के कर्मचारियों का बीमा तक नहीं है। इसकी वजह से पत्रकार और उनका पूरा परिवार हमेशा अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है। शहरों में ब्यूरो ऑफिस बंद हैं, क्योंकि कार्यालय आने–जाने में यातायात बंद होने के कारण दिक्कत है। आर्थिक संकट के कारण भी बंद है। कर्मचारी वर्क फ्राम होम से किसी तरह काम कर रहे हैं। अखबारों का सर्कुलेशन भी कम हुआ है। पत्रकारों का वेतन मीडिया हाउस द्वारा काटा जा रहा है। छटनी के मूड में भी मीडिया घराने हैं। सरकारी एवं निजी विज्ञापन भी कम हो गया है। क्योंकि सरकारें फिजुलखर्ची रोकने का प्रयास कर रही हैं और फंड की कमी का रोना रो रही हैं। वहीं निजी विज्ञापन बाजार बंद होने के कारण नहीं मिल पा रहा है। पीआरडीए से जो सरकारी विज्ञापन अखबारों को मिलता है, अखबारों को उसका भुगतान साल में एक बार ही मिल पाता है। परिणामस्वरूप अखबारों ने पेज संख्या में कमी कर दी है। फीचर पेज बंद कर दिए हैं। बड़े पत्रकार कॉलम नहीं लिख रहे, क्योंकि उन्हें इस दौर में रुपये नहीं मिलने का भय है। इस तरह प्रबंधन और पत्रकार दोनों के साथ चुनौतियाँ ही चुनौतियाँ हैं।

इंडियन न्यूज पेपर सोसायटी के मुताबिक विज्ञापनों की वजह से मार्च–अप्रैल माह में प्रिंट मीडिया इंडस्ट्री को ४५०० करोड़ रुपये तक का नुकसान हो चुका है, जबकि आर्थिक गतिविधि ठप होने और निजी क्षेत्रों से विज्ञापन नहीं मिलने के कारण आगामी छह–सात महीनों में पन्द्रह हजार करोड़ तक नुकसान का अनुमान है।

करीब तीस लाख लोग प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर प्रिंट मीडिया कारोबार से जुड़े हैं, जिनकी आय और नौकरी प्रभावित हुई है।

विश्वसनीय सूचना का माध्यम रेडियो:- भारत में रेडियो के श्रोताओं की संख्या ५.१ करोड़ है। वैसे रेडियो हमेशा ही भारत के लोगों के लिए भरोसेमंद दोस्त रहा है, लेकिन लॉकडाउन में भी यह विश्वसनीय सूचना का माध्यम साबित हुआ है। लॉकडाउन को करीब दो महीना होने जा रहा है। ऐसे में लोगों को सकारात्मक और मोटिवटेड बने रहना मुश्किल होता जा रहा है। इस स्थिति में रेडियो ने समाज से जुड़ने और श्रोताओं में सकारात्मकता लाने के लिए हमेशा भरपूर प्रयास किया है। रेडियो का काम अपने श्रोताओं का सिर्फ मनोरंजन करना ही नहीं, बल्कि उन तक सही सूचना पहुँचाना भी है।

छह मेट्रो शहरों में की गई डाई शोध के अनुसार ८२ फीसद लोग भरोसेमंद सूचना के लिए एफ.एम रेडियो से जुड़े हुए है। रेडियो घरों पर सुनने वाले श्रोताओं की संख्या में भी २२ फीसद की बढ़ोतरी हुई है और यह ६४ प्रतिशत से बढ़कर ८६ प्रतिशत हो गई है। लॉकडाउन के क्रम में लोग रोजाना २.३६ घंटे रेडियो सुन रहे हैं। यह अवधि पहले के मुकाबले २३ प्रतिशत अधिक है। रेडियो सिटी तो घर से नहीं निकलेंगे का गाना बजाकर लोगों को जागरूक और सक्रिय बना रहा है। लेकिन १०७ शहरों में ३७० निजी एफ.एम स्टेशन सरकारी विज्ञापनों पर ही निर्भर थे, जिसमें बीस हजार कर्मचारियों की नौकरियाँ खतरे में हैं।

दूरदर्शन की दूरदर्शिता सराहनीय: जहाँ तक भारत में टी.वी. चैनलों की बात है तो टी.वी. चैनलों के कर्मचारियों ने लाख परेशानियों के बाद भी घर पर से ही समाचार पढ़ने का काम जारी रखे हुए हैं। कोरोना पर फैलने वाले अफवाह को भी टी.वी. ने लगाम लगाया है। साथ ही अधिक जिम्मेदारी, संयम विश्लेषण और गहराई तक जाकर विवेचन एवं दर्शकों को जागरूक करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। लॉकडाउन में दूरदर्शन भी खूब दूरदर्शिता दिखा रहा है। चूँकि लॉकडाउन जारी है और लोग घरों में रहें, इसलिए २८ मार्च से दूरदर्शन रामायण और महाभारत का पुनः प्रसारण कर रहा है।

रामायण का प्रसारण पहली बार १९८४ में हुआ था। इसी प्रकार महाभारत १९८८ में दूरदर्शन पर पहली बार टेलीकॉस्ट हुआ था और ये दोनों धारावाहिक बेहद लोकप्रिय हुए थे। डी.डी. इंडिया के मुताबिक १६ अप्रैल को रामायण के प्रसारित किए गए एपिसोड को ७.७ करोड़ लोगों ने एक साथ देखा है जो अपने आप में रिकार्ड है। महाभारत और रामायण की टीआरपी लगातार नई ऊँचाइयां छू रही है। धारावाहिक बुनियाद, शक्तिमान, विष्णुपुराण, श्रीकृष्ण, जय हनुमान जैसे कार्यक्रम को विभिन्न चैनल पर दिखाया जा रहा है। टेलीविजन देखने वालों की संख्या ५.६ करोड़ है इस कारण इसकी पहुँच काफी अधिक लोगों के बीच है। दूरदर्शन दर्शकों तक पहुँचने का बहुत प्रभावशाली माध्यम है। इस प्रकार लॉकडाउन में विभिन्न चैनलों ने दर्शकों को जोड़े रखने का काम किया है।

सोशल मीडिया और इंटरनेट:- भारत में सोशल मीडिया से ५.७ करोड़ लोग जुड़े हैं। सोशल मीडिया संचार का सबसे बड़ा माध्यम बनकर उभरा है, परन्तु दुर्भाग्य से कोरोना काल में सोशल मीडिया विश्वसनीय सूचनाओं का स्रोत नहीं बन पाया है। वैसे सूचना पाने के लिए विश्वसनीय माध्यम के तौर पर इंटरनेट अब भी पहले नंबर पर है।

कोरोना संक्रमण और सिनेमा: फिलहाल कोरोना संक्रमण के कारण सिनेमा हॉल बंद हैं। इससे पिछले डेढ़ माह में २२५० करोड़ रुपए का नुकसान हो चुका है। मल्टी प्लेक्स एसोसिएशन के मुताबिक सिनेमा हॉल से प्रतिमाह १५०० करोड़ की कमाई होती है। देश के ७१ शहरों में ८४५ स्क्रीन रखने वाली कंपनी आइनॉक्स है। भारत में हरेक वर्ष १४००-२००० फिल्में बनती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लूएचओ) के अनुसार, सिनेमा हॉल में अब सामाजिक दूरी का पूरा पालन करना होगा। इससे सीटिंग व्यवस्था बदल जाएगी। इंट्री प्वाइंट पर

चेकिंग के लिए स्कैन मशीन लगाना पड़ रहा है। कोरोना के बाद सिनेमा हॉल नई संरचना के साथ खुलेंगे।

मीडिया शिक्षा:- मीडिया की पढ़ाई के लिए विभिन्न विश्वविद्यालय अपने छात्र-छात्राओं के लिए वर्चुअल कक्षाएं चला रहे हैं। शिक्षक ऑनलाइन कक्षाएं ले रहे हैं और विद्यार्थी डिजिटल मीडिया के विभिन्न प्लेटफॉर्म की मदद से अपने घर बैठे ही पढ़ रहे हैं। विद्यार्थियों को ई-मेल के जरिए पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है। इसके अलावे प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, जनसंपर्क, विज्ञापन और सोशल मीडिया एवं वेब पत्रकारिता के लिए अलग-अलग समूह बनाकर ऑडियो और विडिओ विजुअल व्याख्यान दिए जा रहे हैं। ऐसे में जरूरी है कि विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच लगातार संवाद बना रहे।

मंत्रालय की गाइडलाइन:- २२ अप्रैल को सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लिए एक एडवाइजरी जारी की है जिसमें मीडिया कर्मियों से अपनी डयूटी के दौरान सभी प्रकार की सावधानियाँ बरतने को कहा है। मीडिया हाउसों के लिए जारी परामर्श में फील्ड के साथ-साथ कार्यालय के कर्मचारियों का भी विशेष ध्यान रखने की बात कही गई है। कोविड-१९ के दौरान पत्रकारों के लिए जो दिशा-निर्देश दिए गए है। वे इस प्रकार है- (१) किसी भी बयान को छह फीट की दूरी से रिकार्ड करें (२) शारीरिक संपर्क से बचने के लिए विलय ऑन माइक का इस्तेमाल नहीं करें (३) जब भी बाहर हों तो हर वक्त मास्क पहनें (४) अपने मोबाइल फोन को निरंतर विसंक्रमित करते रहें। (५) न्यूज रूम में स्वच्छता बनाए रखें (६) न्यूज रूम में सतहों को दिन में दो बार विसंक्रमित करें। (७) खांसते और छींकते समय मुँह और नाक को ढककर रखें एवं मुड़ी हुई कोहनी का प्रयोग करें (८) अगर पानी उपलब्ध न हो तो गीला रूमाल या वेट वाइप्स इस्तेमाल करें या फिर अल्कोहल सेनिटाइजर का प्रयोग करें। (९)बार-बार हाथ धोते रहें।

इस प्रकार मीडियाकर्मी को कोरोना संकट में सावधानी और सब्र के साथ काम करने की जरूरत है। आशा है कि जल्द ही मीडियाकर्मी सुखद बदलाव के साथ-साथ सुकून से अपनी जिम्मेदारी को बेहतर ढंग से निभा पाएंगे ताकि मीडिया और पाठकों, दर्शकों एवं श्रोताओं के बीच संवाद का यह सिलसिला निरंतर अबाध रूप से चलता रहे।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं और सूचना विशेषज्ञ के तौर पर कार्यरत हैं)

संपर्क: चाणक्य नगर, पटना ८०००२६ (बिहार)
ई-मेल-shambhusingh2011@gmail.com, **मो. 90304769426**

'लॉकर रूम' का युवा वर्ग और मीडिया लिट्रेसी

डॉ. रेणु सिंह एवं कुमार प्रियतम

'कोरोना काल' में देश के नवयुवा, इंटरनेट और सोशल मीडिया पर अपना समय कैसे व्यतीत कर रहे हैं, इस पर विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत है। क्योंकि इंटरनेट के इस महासमुद्र में गोता लगाते–लगाते कहीं ये नवयुवा किसी 'लॉकर रूम' में फँसकर न रह जाएं ? अर्थात इनके विचार किसी संकीर्ण सोच के शिकार न हो जाएं। सर्वविदित है कि इस उम्र में युवामन बहुत ही चंचल होता है, इसलिए इन्हें लक्षित कर कई समूह, अपने–अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक हित साधने का प्रयास करते रहते हैं। ऐसे में यदि युवाओं को सही दिशा प्रदान नहीं की गई तो इनके भटकाव का खतरा बना रहता है। समस्या यह है कि आखिर इस 'स्क्रीन एज' के युवाओं का मार्गदर्शन कैसे किया जाए ? क्या इन्हें हम वैश्विक परिदृश्य में कई आरोपों से घिरे रहने वाले गूगल, फेसबुक या अन्य मल्टीनेशनल टेक कंपनियों के ही भरोसे छोड़ दें या हम अपने किशोरों व नवयुवाओं के मार्गदर्शन का कोई रास्ता तलाश करें ? यह एक महत्वपूर्ण, लेकिन सामान्य सा दिखने वाला जटिल प्रश्न है, जिससे आज करीब–करीब अधिकांश माता–पिता जूझ रहे हैं।

हमारे युवा, इंटरनेट पर उपलब्ध अमृत रूपी ज्ञान और विष रूपी अज्ञानता से संबंधित संदेशों में कैसे विभेद करें ? क्योंकि इंटरनेट पर मौजूद सामग्रियों की सत्यता हमेशा संदेह के घेरे में होती है। वहीं युवा लक्षित विज्ञापन, ऑनलाइन गेमिंग, इंटरनेट बुलिंग, पोर्न इत्यादि हर वक्त उन्हें लुभाने के लिए एक चारे के रूप में पेश किए जाते हैं। ऐसी स्थिति में हम अपने नवयुवाओं और किशोरों के लिए क्या कदम उठा सकते हैं ? इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ऐसे ही कुछ प्रश्नों के उत्तरों की तलाश करना है।

प्रस्तुत शोध आलेख, साहित्य समीक्षा पर आधारित है जिसके लिए द्वितीयक डाटा के रूप में पुस्तक, समाचार पत्र, न्यूज विडियो, सरकारी और गैरसरकारी संस्थानों के रिपोर्टों का गहन अवलोकन एवं समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है। यह अध्ययन युवाओं में एक जेंडर विशेष के प्रति दृष्टिकोण को समझने का भी एक प्रयास मात्र है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में सिर्फ युवावर्ग या नवयुवा जैसे जेंडर न्यूट्रल शब्द का चयन किया गया है ताकि महिला और पुरुष दोनों के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया जा सके। इसके लिए हाल ही में ट्वीटर पर ट्रेंड कर चुके हैश टैग 'बॉयज़ लॉकर रूम' और 'गर्ल्स लॉकर रूम' का अवलोकन एवं विश्लेषण भी किया गया है।

बॉयज़ एवं गर्ल्स लॉकर रूम: हाल ही में ट्वीटर और मीडिया में ट्रेंड कर चर्चित रहा, 'बॉयज़ लॉकर रूम' और 'गर्ल्स लॉकर रूम' इंस्टाग्राम के अलग–अलग चैट ग्रुप थे। जिसमें कई नाबालिग और नवयुवा ऐसी–ऐसी बातें कर रहे थे, जिसे अमर्यादित और आपराधिक की श्रेणी में रखा जा सकता है। जब 'बॉयज़ लॉकर रूम' ग्रुप में होने वाली बातचीत अपनी सीमा से आगे बढ़कर, अपराध की श्रेणी में चला गया, तब इस समाचार को सोशल मीडिया के बाद, अगले दिन के लगभग सभी प्रमुख अखबारों में स्थान मिला, और कुछ प्रश्न पुन: उठ खड़े हुए। जैसे– क्या वर्तमान अधिकांश माता–पिता अपने किशोर और नवयुवा बच्चों के उतने करीब हैं, जितना उन्हें होना चाहिए अथवा उन्होंने बस स्मार्टफोन, इंटरनेट और अत्याधुनिक उपकरणों के सहारे ही अपने बच्चों को छोड़ रखा है। इन दोनों ही चैट ग्रुप में से कुछ लड़के–लड़कियाँ, नाबालिग भी थें। इस ट्रेंड के दौरान ट्वीटर पर दिन भर लोग इसके पक्ष और विपक्ष में अपनी–अपनी राय जाहिर करते रहे। वहीं, दिल्ली पुलिस ने सही समय पर तत्परता दिखाते हुए केस दर्ज कर, मीडिया में सुर्खी बटोरने वाले इस मामले को बहुत जल्दी सुलझा लेने का दावा भी किया।

अन्यथा कोरोना की वजह से देशव्यापी बंदी के साथ–साथ, इस तरह के मामले अक्सर युवाओं में निराशा की भावना को भर सकते थे।

हमने लड़के एवं लड़कियों के सहशिक्षा पर आधारित स्कूल–कॉलेज तो स्थापित कर लिए हैं, लेकिन उनमें आज तक जेंडर समानता एवं आपसी सहमति को समझाने संबंधी कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए हैं। जब इंटरनेट और गूगल ही समस्त प्रश्नों के जवाब दे रहे हों, तब ऐसे में अगर 'बॉयज़ या गर्ल्स लॉकर रूम' जैसी घटना सामने आती है तो इसे मात्र एक सामान्य परिघटना मानकर भूल जाने की गलती न कर, इसमें हस्तक्षेप के लिए कोई दिशा–निर्देश अथवा कोई कार्यक्रम तैयार किए जाने की जरूरत है। जैसा कि एक मनोवैज्ञानिक काउंसलर, मनीषा मेस्सी कहती हैं कि बच्चों को कुछ बाते हमें प्राथमिक स्कूल स्तर पर ही समझाने की जरूरत है, जैसे कि 'कंसेंट यानी सहमति' क्या होती है, इसे किस तरह देते हैं और किस तरह दूसरों से उनकी सहमति ली जाती है। बच्चों को इस बात की जानकारी अपने परिवार और स्कूल में ही दिए जाने की जरूरत है। साथ ही साथ स्कूलों में बच्चों के लिए कोई लाइफ स्किल कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, जिसमें सोशल लर्निंग, एथिकल लर्निंग, इमोशनल इंटेलिजेंट इत्यादि उन सभी बातों को सिखाया जाना चाहिए। अब सिर्फ नैतिक शिक्षा देने का समय नहीं रहा, जहाँ हम सिर्फ ये सिखाएं कि क्या सही है और क्या गलत। अब हम सही और गलत से बहुत आगे बढ़ चुके हैं।

वहीं 'बॉयज लॉकर रूम' जैसी ऑनलाइन घटना पर दिल्ली के मानसिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ डॉ. दीपक रहेजा (मनोवैज्ञानिक) एक साक्षात्कार में कहते हैं कि निश्चित रूप से यह चिंता का विषय है, लेकिन इस पर जो रोकथाम लगाने का स्टेज था, मुझे ऐसा लगता है कि हम उसमें पिछड़ गए हैं। आज के दौर में बच्चा अपने मोबाइल फोन से इस कदर अटैच है, मैं खासकर उस तबके की बात कर रहा हूँ जो १०–१२ साल से लेकर १६ साल के एज ग्रुप का है, जहाँ पर आपकी मानसिकता परिपक्व नहीं है, आप पूरी तरह से भले और बुरे का भेद नहीं जान पाते और कहीं न कहीं आपको इंटरनेट या सोशल मीडिया से जानकारी मिलने लगती है और तब आप वर्चुअल वर्ल्ड और रीयल वर्ल्ड की सीमा को पार कर जाते हैं। आज हम टेक्नोलॉजी से तो ज्यादा समृद्ध है, हमारे साधन पहले से बढ़ गए हैं, लेकिन आप अगर देखें तो मानसिक विकार, डिप्रेशन, एंक्सजाइटी डिसआर्डर, सुसाइड इत्यादि के जो आकड़ें है, वो बहुत दर्दनाक होते नजर आ रहे हैं। एक समाज के रूप में क्या हम सही दिशा में जा रहे हैं? ये सवाल हमें अपने आप से पूछना बहुत जरूरी हो गया है।

महिला बनाम पुरुषों के खिलाफ होने वाले अपराध के आकड़ें: जब 'बॉयज लॉकर रूम' ट्वीटर पर ट्रेंड कर रहा था, तब कुछ लोगों ने ट्वीटर पर यह तर्क भी दिया कि 'ऑनलाइन क्राइम में सिर्फ लड़कियों और महिलाओं को ही निशाना नहीं बनाया जाता है, बल्कि लड़के और पुरुष भी इसके उतने ही शिकार होते हैं?' इतना ही नहीं कई लोगों ने तो बाकायदा 'महिला आयोग' की तर्ज पर 'पुरुष आयोग' तक बनाने की माँग कर दी। यहाँ एक बात स्पष्ट करना जरूरी है कि ऑनलाइन क्राइम में सिर्फ लड़कियों और महिलाओं को ही निशाना नहीं बनाया जाता पुरुष भी इसके शिकार होते हैं। लेकिन क्या 'महिलाओं से संबंधित अपराध' को सिर्फ 'ऑनलाइन क्राइम' से जोड़कर देखना न्याय संगत कहा जा सकता है। क्या महिलाओं के खिलाफ रेप जैसे गंभीर अपराध और साइबर क्राइम को एक ही नजरिये से देखना सही है? लेकिन ट्वीटर पर कुछ लोग इसे समान नजरिये से देखना कह रहे थे।

आमतौर पर 'ट्वीटर' या कई सोशल मीडिया पर किसी के अकाउंट के आधार पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि कौन किस जेंडर का है? कोई भी अपना जेंडर बदलकर क्रमशः महिलाओं के या पुरुषों के पक्ष में या विरोध में विचार प्रकट कर सकता है। यहाँ पर किसी के जेंडर की पहचान थोड़ी मुश्किल प्रतीत होती है। जब तक कि अकाउंट 'वेरीफाइड' न हो। स्पष्ट है कि दिल्ली

पुलिस ने 'बॉयज लॉकर रूम' मामले में तहकीकात कर जो तथ्य अब तक सामने रखा है, उसमें एक लड़की छद्म रूप से एक लड़के के नाम से ही सोशल मीडिया पर चैट कर रही थी। इसलिए सोशल मीडिया पर किसी के द्वारा स्व-उद्घोषित जेंडर पर भरोसा करना भी सही नहीं है। कहा जा सकता है कि 'बॉयज लॉकर रूम' में कुछ लड़कियाँ भी अपनी पहचान बदलकर चैट करती हों और यह भी संभव है कि 'गर्ल्स लॉकर रूम' में कुछ लड़के भी लड़की के नाम से चैट करते हों।

यदि पुरुषों को भी महिलाओं जैसे लैंगिक अपराध से हर दिन गुजरना पड़ता, तो यह वाकई एक गंभीर चिंता का विषय होता। तब पुरुषों से संबंधित तथ्य भी ठीक उसी प्रकार दर्ज किए जाते जैसे कि महिलाओं के खिलाफ हो रहे अपराधों का किया जाता है। तब हमें यह भी पता होता कि 'राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो' में ऐसे कितने मामले दर्ज किए गए जो कि पुरुषों के खिलाफ कोई लैंगिक आधार पर हो रहा हो? जैसा कि आमतौर पर महिलाओं के खिलाफ होता है। क्या 'राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो' के अलावा कोई ऐसा मान्यता प्राप्त संस्थान है जो ऐसे लैंगिक आधार पर पुरुषों के खिलाफ हो रहे अपराध के आकड़ों को दर्ज़ कर रहा हो? ऑनलाइन उपलब्ध 'इंडियन जरनल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन' में २१ से ४९ आयु वर्ग के विवाहित पुरुषों पर किए गए एक शोध अध्ययन के निष्कर्ष में यह कहा गया है कि "भारत में पुरुष भी महिलाओं के हाथ हिंसा के शिकार होते हैं, लेकिन उसका प्रतिशत भी मात्र ६ ही है। इतना ही नहीं मात्र ०.४ प्रतिशत पुरुष ही अब तक किसी यौनिक हिंसा के शिकार हुए हैं।'' इस शोध की सीमाओं में यह भी लिखा गया है कि चूँकि यह पुरुषों के द्वारा दिए गए उनके खुद के रिपोर्ट पर आधारित अध्ययन है, इसलिए संभावना यह भी हो सकती है कि महिलाओं के द्वारा पुरुषों के प्रति की गई शारीरिक हिंसा, अपने बचाव से प्रेरित हो। वहीं महिलाओं के खिलाफ देश भर ही नहीं, दुनिया भर में घरेलू, शारीरिक और यौनिक हिंसा के ऑकड़ों की भरमार दिखती है, बस इससे संबंधित सिर्फ 'एक' गूगल सर्च करने की जरूरत है।

भारत में अक्सर पुलिसकर्मियों पर ऐसे आरोप लगते रहे हैं कि वो 'रेप' जैसे गंभीर आपराधिक मामले में भी एफआईआर आसानी से दर्ज नहीं करते। फिर भी 'राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो' के अनुसार भारत में हर १५ मिनट में बलात्कार की एक घटना (फीमेल के साथ) कहीं ना कहीं, पुलिस थानों में दर्ज की जाती है, लेकिन जो घटनाएँ मीडिया में ज्यादा चर्चित होती हैं उस पर ही आम लोगों का ध्यान आकर्षित होता है। वहीं सैकड़ों ऐसे मामले भी होते हैं, जो सामाजिक प्रतिष्ठा गंवाने के भय से पुलिस थानों तक ही नहीं पहुँच पाते। 'राष्ट्रीय क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो' के ऑकड़ों के अनुसार भारत में सिर्फ वर्ष २०१८ में लगभग ३४००० महिलाएं बलात्कार की शिकार हुई हैं।

रेप कल्चर: भारत को महिलाओं के लिए एक खतरनाक स्थान तक बताया जा चुका है। यहाँ के पुरुषों पर आठ माह की बच्ची से लेकर १०० वर्ष तक की महिलाओं के साथ बलात्कार के आरोप लगते रहे हैं। यह रेप कल्चर ही है, जिसमें लड़कियों को बताया जाता है कि वो कैसे कपड़े पहने ताकि ऐसी समस्या से बचा जा सके और वहीं पुरुषों के हिंसक व्यवहार को भी समान्य करार दिया जाता है। इस रेप कल्चर में अक्सर किसी अपराध की पीड़िता को ही उसके साथ होने वाले अपराध के लिए दोषी मान लिया जाता है। वहीं कई मामले तो इस कारण दर्ज ही नहीं कराए जाते हैं। वहीं इसी कल्चर के प्रभाव में कुछ मीडिया द्वारा भी बलात्कार की घटनाओं को उत्तेजनापूर्ण बनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

ट्वीटर पर हैशटैग 'बॉयज लॉकर रूम' और 'गर्ल्स लॉकर रूम' ट्रेंड के दौरान किए जाने वाले कुछ ट्वीट्स के पीछे भी इसी 'कल्चर' के फलस्वरूप उत्पन्न सोच का प्रभाव देखा जा सकता है। यह वही सोच है जिसे 'रेप कल्चर' के रूप में जाना और समझा जा सकता है। हालाँकि कल्चर में 'रेप' जैसे शब्द को जोड़कर इसके व्यापक अर्थ को नकारात्मक रूप में पेश करना समय

की जरूरत भी कही जा सकती है। क्योंकि यदि हम किसी समाज में आधिपत्य वाली सोच के साथ-साथ पले और बढ़े होते हैं तो हमारी सोच भी अधिकांश रूप से वैसी ही होती चली जाती है और धीरे-धीरे लोगों में एक आधिपत्य की भावना का समावेश होता जाता है। जो लोग अपनी आधिपत्य की भावना वाली सोच को क्षीण होते हुए नहीं देख सकते वो खासकर इस नकारात्मक संस्कृति के शिकार या पीड़ित कहे जा सकते हैं। ऐसे लोगों के लिए महिला एवं पुरुषों के बीच समानता एवं सहमति का कोई स्थान नहीं होता है।

एक उदाहरण के रूप में हैश टैग 'मी टू' मुहिम को देखा जा सकता है। 'मी टू' मुहिम की वैश्विक यात्रा ने महिलाओं को वो ताकत दी, जिसके बाद कई भारतीय महिलाओं ने भी अपने साथ हुए यौन दुर्व्यवहार के दर्द को खुलकर साझा किया था। जिसमें ऑफिस के बंद कमरों और सार्वजनिक रूप से साफ-सुथरी छवि वाले कुछ महत्वपूर्ण लोगों के यौन दुर्व्यवहार की सच्चाई जग-जाहिर हुई थी। तब भी कुछ लोगों ने इस मुहिम से हौसला पाकर आवाज उठाने वाली महिलाओं पर सस्ती लोकप्रियता हासिल करने का आरोप लगाया था। ट्वीटर ही नहीं, कई अन्य सोशल मीडिया पर भी ऐसा मानने वाले युवाओं की एक बड़ी संख्या है, जिसके अनुसार, अधिकांश लड़कियाँ, अपने बारे में रेप या सेक्सुअल हैरसमेंट संबंधी कोई पुलिस रिपोर्ट भी महज सस्ती लोकप्रियता अर्जित करने के लिए या किसी पुरुष को नीचा दिखाने के लिए करती है। हालाँकि आवाज उठाने वाली ऐसी कई महिलाओं को सोशल मीडिया पर ट्रोलिंग के पीड़ादायक अनुभव से भी गुजरना पड़ता है। बिलकुल ऐसे कई मामले हो सकते हैं, जिसमें कुछ लड़कियों ने जान-बूझ कर आरोप लगाया हो, परंतु कुछ की गलतियों को अधिकांश पर थोप देना या इसका सामान्यीकरण कर देना, कहाँ तक तर्कसंगत है? महिलाओं के खिलाफ ऐसे अपराध की जड़ में जाकर देखा जाए तो ऐसे ज्यादातर मामलों में हम असमानता, भेदभाव और वर्चस्व पर आधारित कथित 'रेप कल्चर' पर दोषारोपण कर सकते हैं। लेकिन इसे सिर्फ एकमात्र कारण भी नहीं समझा जाना चाहिए।

भारत में ऑनलाइन मीडिया उपभोग से संबंधित ऑकड़ों का विश्लेषण: केपीएमजी के रिपोर्ट के अनुसार, भारत का 'ऑनलाइन विडिओ मार्केट' विश्व बाजार में एक महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कर रहा है। एक अनुमान लगाया गया है कि भारत में वित्तीय वर्ष २०२३ तक करीब ५०० मिलियन यानी करीब ५० करोड़ ऑनलाइन विडिओ सब्सक्राइबर होंगे (KPMG,२०१९)। २०१९ तक का यह ऑकड़ा करीब ३०० मिलियन यानी ३० करोड़ ऑनलाइन विडिओ सब्सक्राइबर तक पहुँच चुका है। भारत में जैसे-जैसे इंटरनेट की स्पीड और पहुँच लोगों तक बढ़ती जाएगी वैसे-वैसे ऑनलाइन विडिओ का यह बाजार भी बढ़ता ही चला जाएगा।

ज्ञात हो कि भारत में विश्व का सबसे सस्ता इंटरनेट 'डाटा' लोगों को मिल रहा है। आमतौर पर २०१५ में जहाँ प्रति गीगाबाइट के लिए लगभग ३१३ रुपए खर्च करने पड़ते थे, वहीं वर्ष २०१९ आते-आते यह घट कर महज १८.५ रुपए ही रह गया है। भारत में '४ जी' यानी मोबाइल की चौथी पीढ़ी के पदार्पण के साथ ही इंटरनेट का डाटा बहुत सस्ता हो गया, जिस कारण से आम लोगों की पहुँच भी इंटरनेट तक बढ़ी है। भारत में स्मार्टफोन उपभोक्ताओं की संख्या में भी भारी वृद्धि दर्ज की गई है। यहाँ २०१८ के अंत तक करीब ३४ करोड़ स्मार्टफोन उपभोक्ता थे। वहीं औसत डाटा खपत भी प्रति उपभोक्ता बढ़कर करीब ८.७ जीबी प्रति माह हो गई है।

केपीएमजी के द्वारा भारत में किए गए एक सर्वेक्षण के मुताबिक भारत में आम लोग अपने हर दिन का औसतन ७० मिनट का समय 'ओवर दी टॉप' (OTT) प्लेटफॉर्म पर व्यतीत करते हैं। 'ओवर दी टॉप' प्लेटफॉर्म यानी कि एक ऐसी जगह जहाँ सीधे-सीधे आप तेज इंटरनेट के माध्यम से फिल्म या टेलीविजन का कोई भी कार्यक्रम ऑनलाइन अपने स्मार्टफोन, टैबलेट, लैपटाप

या स्मार्ट टीवी पर देख सकते हैं। इस प्लेटफॉर्म पर कुछ भी देखने के लिए किसी केबल या सेटेलाइट प्रदाता की जरूरत नहीं रह जाती है, लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं है कि यह पूरी तरह से फ्री है। नेटफ्लीक्स, अमेजन प्राइम, आइट्यून इत्यादि ऐसे ही सब्सक्रिप्शन आधारित सेवा हैं, जिसके लिए कुछ न कुछ मासिक या वार्षिक शुल्क चुकाना पड़ता है।

एक बात और स्पष्ट है कि इस 'ओवर दी टॉप' प्लेटफॉर्म पर किसी प्रकार की उम्र से संबंधित कोई बाधा नहीं है। इसकी सभी सामग्रियों को कोई भी चाहे वह नाबालिग हो अथवा बालिग ऑनलाइन अपने स्मार्ट फोन या कहीं भी लॉगिन कर कुछ भी देख सकता है। उक्त सर्वेक्षण में यह भी सामने आया कि १५ से २४ वर्ष तक के किशोर और नवयुवा सप्ताह में अपना औसतन करीब ८ घंटे से भी ज्यादा समय ऐसे प्लेटफॉर्म पर विडिओ देखने में व्यतीत कर रहे हैं। यह समय लगभग उतना ही है जितना कि अन्य वयस्क लोग विडिओ देखने में व्यतीत करते हैं, लेकिन समय और परिस्थिति ऐसी है कि अधिकांश शहरी नवयुवाओं को अब सोशल मीडिया, यूट्यूब एवं ओवर दी टॉप जैसे प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करने से रोका नहीं जा सकता है।

अर्थात कोरोना वायरस के साथ-साथ उक्त तमाम मीडिया सामग्रियों, जिनसे किशोरों और युवाओं के मन: मस्तिष्क पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की जरा भी संभावना हो, उसके पूर्व उपचार के लिए 'वैक्सीन' की खोज भी जरूरी हो जाती है, ताकि किसी खतरनाक ऑनलाइन मीडिया संक्रमण से बचा जा सके। अंतत: किशोरों और युवाओं के लिए उक्त समस्याओं के वैक्सीन रूपी समाधान के रूप में यहाँ 'मीडिया लिट्रेसी' को एक समाधान के रूप में समझने का प्रयास करते हैं।

मीडिया लिट्रेसी: ब्रिटेन के 'ऑफिस ऑफ कम्युनिकेशन' या 'ऑफ कॉम' के अनुसार, 'मीडिया लिट्रेसी' से तात्पर्य है- 'किसी मीडिया सामग्री तक किसी व्यक्ति की पहुँच, उस सामग्री के विश्लेषण, उसके मूल्यांकन और संदेशों के निर्माण करने की क्षमता से है।' ऑफ कॉम के अनुसार मीडिया को समझने, उपयोग करने और अलग-अलग संचार माध्यमों के लिए संदेशों का निर्माण करने की योग्यता को मीडिया लिट्रेसी के अंतर्गत रखा गया है। हमें लगभग सारी सूचनाएं किसी न किसी मीडिया के जरिए ही मिल रही है। वही आज न्यू मीडिया से सूचनाओं का प्रसार बहुत तीव्र गति से हो रहा है, ऐसे में अलग-अलग मीडिया को समझने, उसका विश्लेषण और मूल्यांकन करने की क्षमता का होना इक्कीसवीं सदी के युवाओं के लिए एक 'आवश्यक योग्यता' के रूप में देखा जा रहा है। इस योग्यता को ही हम 'मीडिया लिट्रेसी' के रूप में जानते हैं। मीडिया साक्षर लोग टीवी, रेडियो, समाचारपत्र-पत्रिका, इंटरनेट, किताबें, विडिओ गेम, संगीत और मीडिया से प्राप्त हर तरह की सूचनाओं को समझने और विश्लेषित करने की योग्यता रखते हैं। अर्थात मीडिया लिट्रेसी, एक प्रकार से जीवन जीने और आने वाले किसी भी समस्या से लड़ने के लिए एक आवश्यक योग्यता विकसित करने में सहायक साबित होती है जिसकी आवश्यकता वर्तमान दौर में एक जरूरत बन कर उभर रही है।

कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डब्ल्यू जेम्स पॉटर ने अपनी पुस्तक में मीडिया लिट्रेसी को संदेशों से भरी इस दुनिया में 'सेल्फ-हेल्प या स्वयं सुरक्षा' जैसा बताया है यानी कि कोई विद्यार्थी, मीडिया साक्षरता के जरिए मीडिया संदेशों से अपनी रक्षा करने में सक्षम हो सकता है। उन्होंने बताया है कि हम अनजाने में या अपनी आदत के अनुसार बहुत सी ऐसी मीडिया सामग्री का उपभोग कर जाते हैं जो हमारे लिए जरा भी उपयोगी नहीं है, हम अंजाने में बहुत से ऐसे कार्य करते हैं, लेकिन यदि उस कार्य के बारे में हम थोड़ा भी ठहर कर सोचें, तो हम वो कार्य कदापि नहीं करेंगे।

निष्कर्ष: ज्ञात हो कि १५ से २४ वर्ष तक के किशोर और नव-युवा सप्ताह में अपना औसतन करीब ८ घंटे से भी ज्यादा समय इंटरनेट और 'ओवर दी टॉप' प्लेटफार्मों पर विडिओ देखने में व्यतीत कर रहे हैं। स्पष्ट है कि कम उम्र के किशोर और नवयुवा, इंटरनेट और ओवर दी टॉप

प्लेटफार्मों पर निर्बाध रूप से अधिकांश मीडिया सामग्रियों का उपभोग कर रहे हैं। इंटरनेट और शुल्क आधारित इन प्लेटफार्मों पर उपलब्ध इन विडिओ सामग्रियों का किशोरों और नवयुवाओं पर कैसा प्रभाव पड़ रहा है और क्या ऐसे विडिओ देखने के बाद किसी खास जेंडर के प्रति उनके व्यवहार में कोई बदलाव होता है ? यह भविष्य के लिए शोध का एक विषय हो सकता है।

स्वास्थ्य विशेषज्ञ की राय के अनुसार, कम उम्र के अधिकांश किशोर और नवयुवा मानसिक रूप से परिपक्व नहीं होते हैं। इसी कारण वे सोशल मीडिया से मिलने वाली सूचनाओं की सत्यता पर संदेह नहीं कर पाते और उस पर भरोसा कर, आभासी और काल्पनिक दुनिया का भेद समझने में असफल रह जाते हैं। लेकिन जब 'बॉयज़ लॉकर रूम' या ऐसी ही किसी ऑनलाइन घटना की वास्तविकता सामने आती है तब उनमें मानसिक विकार, डिप्रेशन, एंक्सजाइटी डिसऑर्डर और सुसाइड तक के मामले देखे गए हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि आज हम टेक्नोलॉजी में तो ज्यादा समृद्ध होते जा रहे हैं, लेकिन इसके साथ-साथ मानसिक समस्याएँ भी उसी रफ्तार में बढ़ती जा रही है। एक अन्य विशेषज्ञ के अनुसार, बच्चों को जेंडर समानता, सहमति जैसे कुछ महत्वपूर्ण शब्दों के व्यापक अर्थ को समझाने की जरूरत है। साथ ही साथ लाइफ स्किल से संबंधित कार्यक्रम, जिसमें सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक संबंधों को स्कूल में ही सिखाया जाना आवश्यक है ।

वैसे मीडिया का प्राथमिक उद्देश्य सूचना, शिक्षा और मनोरंजन माना गया है। ऐसे में सिर्फ सूचना देना और मनोरंजन करना ही मीडिया का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। इसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य 'शिक्षा' देना भी है। चूँकि अब लगभग सभी मुख्य धारा की मीडिया ऑनलाइन और अधिकांशतः सोशल मीडिया पर भी उपलब्ध है, इसलिए मुख्य धारा की मीडिया का उत्तरदायित्व कहीं बढ़ गया है। फिर भी देखा जा रहा है कि अधिकांश मुख्य धारा मीडिया अब शिक्षा देने के अपने प्राथमिक उद्देश्य को सीमित करता जा रहा है। वहीं वेब एवं सोशल मीडिया पर बढ़ते भ्रामक विडिओ और फेक समाचारों के प्रसार ने अभिभावकों की चिंता बढ़ा दी है। ऐसी चिंताओं पर रोक लगाने में मीडिया लिट्रेसी बहुत ही प्रभावी साबित हो सकता है। यानी कोई विद्यार्थी, मीडिया लिट्रेसी की क्षमता के जरिए किसी भी भ्रामक अथवा गुमराह करने वाले मीडिया संदेशों से अपनी रक्षा करने में सक्षम हो सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि अब देश के किशोरों और युवाओं को 'मीडिया लिट्रेसी' की क्षमता से युक्त किए जाने का समय आ चुका है। अन्यथा लॉकर रूम और रेप-कल्चर की संकीर्ण मानसिकता से बार-बार देश के अधिकांश युवाओं को गुमराह किया जाना मुश्किल नहीं होगा।

संदर्भ ग्रंथः

Beauvoir, S.D.,Borde,C.,& MalovanyChevallier,S. (2015). The second sex. London: Vintage Books., / Butler, J. (2015). Gender trouble: Feminism and the subversion of identity. New York: Routledge, Taylor & Francis Group., Halton, C. (2020, January 29). Over the top (OTT) Definition. Potter, W. J. (2011). Media Literacy. Sage Publications Inc, Printed in the United State America.

सिंह, डॉ. अशोक प्रताप (२०१३), व्यावहारिक मनोविज्ञान, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd.

संपर्कः

डॉ. रेणु सिंहः सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
ईमेल : renumcj@gmail.com

कुमार प्रियतमः पीएच.डी. शोधार्थी, जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
ईमेल : writeforkumar@gmail.com

सोशल मीडिया पर कंटेंट निर्माण में युवाओं पर बढ़ती प्रवृत्ति का अध्ययन

कुमार मौसम

परिचय: मोबाइल क्रांति के पश्चात कुछ साल पहले आए डाटा क्रांति ने प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इंटरनेट से जोड़ दिया है। इस उन्नत प्रौद्योगिकी ने आज हमारे जीवन के तरीके को भी बदल दिया है। सोशल मीडिया एक अपरंपरागत मीडिया है। यह एक आभासी दुनिया बनाता है, जहाँ हम इंटरनेट के माध्यम से पहुंच बना सकते हैं। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है जो कि सारे संसार को जोड़े रखता है। यह संचार का एक बहुत अच्छा माध्यम है। यह तेज गति से सूचनाओं के आदान–प्रदान करने में सहायक होता है।

हर एक शताब्दी अपनी किसी न किसी चीज के लिए पहचानी जाती है। ऐसे ही २१वीं शताब्दी 'इंटरनेट और वेब मीडिया' के युग की शताब्दी मानी जा रही है। यह सर्वविदित है तथा बहस का प्रमुख विषय बन गया है कि बीसवीं सदी की समाप्ति तक दुनिया में सशक्त मीडिया माध्यमों का तीव्र गति से विस्तार हुआ है। इस विस्तार का ही परिणाम है, मीडिया की शक्ति आम जनता के हाथ में आ गई है। मीडिया के बदलते आयामों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मौजूदा समय बदलाव का समय है। संप्रेषण के ऐसे नए तरीके और नए माध्यम सामने आए हैं जो पूरी तरह हमारे जीवन का हिस्साा बन गए हैं। लोगों को और विभिन्न स्थानों को जोड़ने वाला सोशल मीडिया ऐसा ही एक माध्यम है, जिसे हमने जीवन के एक अटूट हिस्से के रूप में अपनाया है। यह हमारे जीवन के कई पहलुओं को तय कर रहा है। मसलन हमारा रहन–सहन, काम–काज, मौज–मस्ती और यहाँ तक कि दुखी होना भी। इन भावनाओं को हम तुरंत जाहिर भी कर देते हैं। वर्तमान संदर्भों में इसकी उपयोगिता को देखकर कहा जा सकता है कि इस दौर की एक बड़ी जरूरत और हकीकत बन चुका है सोशल मीडिया।

सामाजिक संबंधों का ताना–बाना एक तरह से मानव सभ्यता का अंग रहा है। किट्टी पार्टी व लेडिज क्लब एक तरह का सामाजिक नेटवर्क ही है, जहाँ समान सोच और समान रुचि वाली महिलाएँ एक मंच पर आती हैं। धीरे–धीरे इन सामाजिक संबंधों का दायरा बढ़कर एक नेटवर्क का रूप धारण कर लेता है। इसी तरह के नेटवर्क में प्रौद्योगिकी के समावेश से सोशल मीडिया का जन्म हुआ। आंद्रे कैप्लान और माइकल हैनलीन के अनुसार, ''सोशल मीडिया इंटरनेट आधारित उपयोगों का एक ऐसा समूह है जो विचारधाराओं और तकनीकों के आधार पर निर्मित हुआ है और यह उपयोगकर्ताओं को सामग्री के सृजन और इसके आदान–प्रदान की सहुलियत प्रदान करता है।'' हर आयु–वर्ग के लोगों में सोशल नेटवर्किंग साइट्स का क्रेज दिन–ब–दिन बढ़ता जा रहा है। आज सोशल नेटवर्किंग दुनिया भर में इंटरनेट पर होने वाली नंबर वन गतिविधि है, इससे पहले यह स्थान पोर्नोग्राफी को हासिल था। सोशल नेटवर्किंग साइट्स संचार व सूचना का सशक्त जरिया है, जिसके माध्यम से लोग अपनी बात बिना किसी रोक–टोक के रख पाते हैं। यह बात देश और दुनिया के हर कोने तक पहुँच जाती है। आप खुद के विचार रखने के साथ–साथ दूसरों की बातों पर खुलकर अपनी राय भी व्यक्त कर पाते हैं। एक परिभाषा के अनुसार, ''सोशल मीडिया को परस्पर संवाद का वेब आधारित एक ऐसा अत्यधिक गतिशील मंच कहा जा सकता है, जिसके माध्यम से लोग संवाद करते हैं, आपसी जानकारियों का आदान–प्रदान करते हैं और उपयोगकर्ता जनित सामग्री को सामग्री सृजन की सहयोगात्मक प्रक्रिया के एक अंश के रूप में संशोधित करते हैं।''

लोकप्रियता के प्रसार में सोशल मीडिया एक बेहतरीन प्लेटफॉर्म है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को अथवा अपने किसी उत्पाद को ज्यादा लोकप्रिय बना सकता है। आज फिल्मों के ट्रेलर, टीवी प्रोग्राम का प्रसारण भी सोशल मीडिया के माध्यम से किया जा रहा है। विडिओ तथा ऑडियो चैट भी सोशल मीडिया के माध्यम से सुगम हो पाई है, जिनमें फेसबुक, व्हॉट्सऐप, इंस्टाग्राम कुछ प्रमुख प्लेटफॉर्म हैं।

भारत में आज हमारा सारा काम सुविधा, किफायती लागत और गुणवत्ता शिक्षा के कारण ऑनलाइन शिक्षा की ओर बढ़ रहा है और अब सरकार भी ऑनलाइन शिक्षा को बढ़ावा दे रही है। आने वाले वर्षों में ऑनलाइन शिक्षा के बाजार में वृद्धि होगी। हम भारतीय सीखने के इस नए माध्यम को स्वीकार कर रहे हैं। ऑनलाइन शिक्षा को हम ई–लर्निंग के रूप में भी जानते हैं। ऑनलाइन शिक्षा का एक बड़ा दायरा है और जिनके पास समय सीमाएं हैं, वे इसके प्रति उदासीन हैं। कई शीर्ष विश्वविद्यालय संगठन और कॉलेज ऑनलाइन शिक्षा प्रणाली को स्वीकार कर रहे हैं। ई–शिक्षा (ई–लर्निंग) को सभी प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक समर्थित शिक्षा और अध्यापन के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो स्वाभाविक तौर पर क्रियात्मक होते हैं और जिनका उद्देश्य शिक्षार्थी के व्यक्तिगत अनुभव, अभ्यास और ज्ञान के संदर्भ में ज्ञान के निर्माण को प्रभावित करना है। सूचना एवं संचार प्रणालियाँ चाहे इनमें नेटवर्क की व्यवस्था हो या न हो, शिक्षा प्रक्रिया को कार्यान्वित करने वाले विशेष माध्यम के रूप में अपनी सेवा प्रदान करती हैं।

सोशल मीडिया: सोशल मीडिया पारस्परिक संबंध के लिए अंतर्जाल या अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित आभासी समूहों को संदर्भित करता है। यह व्यक्तियों और समुदायों के साझा सहभागी बनाने का माध्यम है। इसका उपयोग सामाजिक संबंध के अलावा उपयोगकर्ता सामग्री के संशोधन के लिए उच्च पारस्परिक मंच बनाने के लिए मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के रूप में भी देखा जा सकता है। सोशल मीडिया के कई रूप हैं, जिनमें कि इंटरनेट फोरम, वेबलॉग, सामाजिक ब्लॉग, माइक्रोब्लागिंग, विकिपीडिया, सोशल नेटवर्क, पॉडकास्ट, फोटोग्राफ, चित्र, चलचित्र आदि सभी आते हैं। अपनी सेवाओं के अनुसार सोशल मीडिया के लिए कई संचार प्रौद्योगिकी उपलब्ध हैं।

साहित्य पुनरावलोकन: M.M Terras, J. Ramsay, E.A. Boyle. Digital Media Production and Identity: Insights from a Psychological Perspective, SAGE2015 (ये शोध–पत्र इस बात की ओर इशारा करते हैं कि वेब समर्थित कंटेंट का प्रोडक्शन और वेब से संबंधित किसी भी काम को करने के लिए तकनीक २.० सक्रियता से ज्ञान निर्माण के लिए अपार संभावनाएं प्रदान करता है। जिसमें अनुसंधान करने के लिए जनसांख्यिकीय कारकों का पता लगाया जाना भी जरूरी है जो कंटेंट के प्रोडक्शन को प्रभावित करते हैं। लेकिन कुछ विशेषज्ञ ये तर्क भी देते हैं कि ऑनलाइन कंटेंट निर्माण में मनोवैज्ञानिक निर्धारकों की अधिक विस्तृत समझ है। इसलिए वेब २.० की क्षमता और प्रभाव को अधिकतम किया जाना आवश्यक है। यह शोधपत्र मनोवैज्ञानिक रूप से ऑनलाइन और ऑफलाइन संदर्भों के बीच समानता और ऑनलाइन कंटेंट निर्माण को प्रभावित करने वाले कारणों को रेखांकित करता है। ये दर्शाते हैं कि क्यों एक बारीक समझ उन कारणों को निर्धारित करते है जो न केवल ऑनलाइन सामग्री का उत्पादन करते हैं बल्कि क्या, कैसे और यह क्यों उत्पन्न होता है इसकी भी विवेचना करते हैं। ऑनलाइन कंटेंट के प्रोडक्शन और उसके विषयों की पहचान के बीच के अंतरसंबंधों की जटिलता का पूरी तरह से परख होना आवश्यक है। ये शोध पत्र इस बात की भी चर्चा करते हैं कि ऑनलाइन संदर्भ और स्वभाव के परिस्थितिजन्य पहलू कैसे हैं? उपयोगकर्ताओं की विशेषताएं उत्पादन व्यवहार को निर्धारित करने और उजागर करने के लिए उत्तरदायी होती हैं। प्रभावी सामग्री निर्माण और उसके प्रबंधन के लिए एक प्रमुख कौशल के रूप में अवधि का

भी अपना महत्व है। डिजिटल समावेश और वेब सुरक्षा से संबंधित अभ्यास ऑनलाइन कंटेंट निर्माण और पहचान निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक नीति को सूचित कर सकते हैं।)

शोध का उद्देश्य: सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट के प्रकारों का अध्ययन।

सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट के प्रभाव का अध्ययन।

सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट की प्रभावशीलता का अध्ययन।

शोध की उपयोगिता: प्रस्तुत शोध पत्र के द्वारा हमें सोशल मीडिया पर कंटेंट निर्माण में युवाओं की बढ़ती प्रवृति के कारणों को जानने और समझने में मदद मिलेगी।

शोध क्षेत्र: प्रस्तुत शोध के परिसीमन के लिए माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल का चयन किया गया था। जहाँ के स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों का प्रतिउत्तर प्रश्नावली के माध्यम से जुटाया गया हैं।

शोध प्रविधि: प्रस्तुत शोध में प्रश्नावली पद्धति का उपयोग किया गया है। जिसमें प्रश्नों को मनोवैज्ञानिक तरीके से क्रमबद्ध किया गया था। ताकि लोगों द्वारा दिए जा रहे जवाबों को क्रॉस चेक किया जा सके।

निदर्शन का आकार: इस शोध का निदर्शन आकार ७५ था जिसे गूगल फॉर्म्स के माध्यम से सउद्देश्य न्यादर्श तकनीक द्वारा संकलित किया गया। इस अध्ययन में उत्तरदाताओं की भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार थी:- कुल ७५उत्तरदाताओं में ५०.७ फीसदी पुरुष, ४९.३ फीसदी महिला हैं और इनकी योग्यता ८ फीसदी १२वीं कक्षा के, ३३.३ फीसदी स्नातक, ४८ फीसदी स्नातकोत्तर और १०.७ फीसदी शोधार्थी हैं।

बारंबारता विश्लेषण

सारणी १. सोशल मीडिया का इस्तेमाल आप क्यों करते हैं?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
मनोरंजन के लिए	३९	५२.०
सामाजिक रहने के लिए	१३	१७.३
नवीन जानकारी के लिए	२१	२८.०
अभिव्यक्ति के लिए	०२	२.७
कुल	**७५**	**१००**

कुल ७५ उत्तरदाताओं में से ५२% उत्तरदाताओं के अनुसार वो मनोरंजन के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं, वहीं १७.३% उत्तरदाता सामाजिक रहने/लोगों से जुड़ने के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं, २८% उत्तरदाता नवीन जानकारी के लिए और २.७% उत्तरदाता अभिव्यक्ति के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं।

सारणी २. आप किस सोशल मीडिया प्लेटफार्म का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
फेसबुक	२८	३७.३
इंस्टाग्राम	१०	१३.३
ट्विटर	०३	४.०
व्हाट्सएप्प	२५	३३.३
ब्लॉग	०९	१२.०
कुल	**७५**	**१००**

कुल ७५ उत्तरदाताओं में से ३७.३% उत्तरदाताओं के अनुसार, वो सोशल मीडिया प्लेटफार्म में फेसबुक का इस्तेमाल ज्यादा करते हैं, वहीं १३.३% उत्तरदाता इंस्टाग्राम का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं, ४% उत्तरदाता ट्विटर का, ३३.३% उत्तरदाता व्हाट्सएप का और १२% उत्तरदाता सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म में ब्लॉग का ज्यादा इस्तेमाल करते हैं।

सारणी ३. सोशल मीडिया पर आप किस तरह का कंटेंट पसंद करते हैं?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
खबरें/जानकारियाँ	४८	६४.०
मनोरंजक	१५	२०.०
कविता/कहानी	०२	२.७
राजनीतिक	१०	१३.३
कुल	**७५**	**१००**

उपर्युक्त प्रश्न का जवाब देते हुए कुल ७५ उत्तरदाताओं में से ६४% उत्तरदाता सोशल मीडिया पर खबरें/जानकारियों वाले कंटेंट पसंद करते हैं, २०% उत्तरदाता मनोरंजक, २.७% उत्तरदाता कविता/कहानी पसंद करते हैं तो वहीं १३.३% उत्तरदाता को सोशल मीडिया पर राजनीतिक कंटेंट पसंद है।

सारणी ४. आप किस तरह का कंटेंट सोशल मीडिया पर डालते हैं?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
राजनितिक	०७	९.३
सामाजिक	२५	३३.३
साहित्यिक	०२	२.७
मनोरंजक	१९	२५.३
व्यक्तिगत	२२	२९.३
कुल	**७५**	**१००**

इस प्रश्न के प्रति उत्तर में ९.३% उत्तरदाता बताते हैं कि वो सोशल मीडिया पर राजनितिक कंटेंट डालते हैं तो ३३.३% सामाजिक कंटेंट, २.७% उत्तरदाता साहित्यिक कंटेंट डालते हैं तो वहीं २५.३% उत्तरदाता मनोरंजक और २९.३% उत्तरदाता व्यक्तिगत कंटेंट डालते हैं।

सारणी ५. सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट आपको कितना प्रभावित करता है?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
बहुत कम	९	१२.०
कम	४	५.३
सामान्य	४५	६०.०
ज्यादा	१४	१८.७
बहुत ज्यादा	३	४.०
कुल	**७५**	**१००**

१२% उत्तरदाताओं के अनुसार सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट उन्हें बहुत कम प्रभावित करता है तो ५.३% उत्तरदाता को सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट कम प्रभावित करता है, वहीं ६०% उत्तरदाताओं को सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट का कोई असर नहीं होता है अर्थात वो सामान्य रहते हैं, १८.७% उत्तरदाता को सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट का ज्यादा प्रभाव पड़ता है और ४% उत्तरदाता को सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है।

सारणी ६. क्या आपको लगता है कि सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट आपको अपडेट रखने में मदद करता है?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
हाँ	५७	७६.०
नहीं	०५	६.७
कह नहीं सकते	१३	१७.३
कुल	**७५**	**१००**

कुल ७५ उत्तरदाताओं में से ७६% उत्तरदाता को लगता है कि सोशल मीडिया उपलब्ध कंटेंट उनको अपडेट रखने में मदद करता है तो वहीं ६.७% उत्तरदाता को लगता है सोशल मीडिया उनको अपडेट रखने में कोई मदद नहीं करता और १७.३% उत्तरदाता इस बारें में कुछ नहीं कह सकते हैं।

सारणी ७. क्या सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट विश्वसनीय होते हैं?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
सहमत	१५	२०.०
असहमत	१६	२१.३
कह नहीं सकते	४४	५८.७
कुल	**७५**	**१००**

कुल ७५ उत्तरदाताओं में से २०% उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट विश्वसनीय होते हैं तो वहीं २१.३% उत्तरदाता इस बात से असहमत हैं कि सोशल मीडिया पर उपलब्ध कंटेंट विश्वसनीय होते हैं और ५८.७% उत्तरदाता इस बारें में कुछ नहीं सकते हैं।

सारणी ८. सोशल मीडिया से मिली जानकारी आपके लिए कितनी उपयोगी होती है ?

विकल्प	बारंबारता	प्रतिशत
बहुत कम	०७	११.९
कम	०४	६.८
सामान्य	४८	८१.४
अधिक	००	०.०
बहुत अधिक	००	०.०
कुल	**७५**	**१००**

११.९% उत्तरदाताओं के अनुसार सोशल मीडिया से मिली जानकारी उनके लिए बहुत कम उपयोगी होती है तो ६.८% उत्तरदाता को सोशल मीडिया से मिली जानकारी उनके लिए कम उपयोगी होती है और वहीं ८१.४% उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया से मिली जानकारी उनके लिए सामान्य होती है।

निष्कर्ष: आज जिस हिसाब से हम तरक्की कर रहे हैं और हमारे लाइफस्टाइल में जो तेजी आई है, उस तेजी के पीछे कहीं न कहीं इंटरनेट और सोशल मीडिया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने हमारे जीवन के पैमाने को और चीजों को देखने के हमारे नजरिए को पूरी तरह से बदल दिया है। आज सोशल मीडिया पढ़ाई का, खुद को अपडेट रखने का,व्यवसायिक लाभ कमाने और सोशल मीडिया कंटेंट निर्माता के रूप में करियर बनाने के मौके दे रहा है। आज लोग अपने-अपने हितों की पूर्ति के लिए सोशल मीडिया की शरण में आते हैं। जहाँ कुछ लोग अपने को दूसरे लोगों से जोड़े रखने के लिए सोशल मीडिया इस्तेमाल करते हैं तो वहीं कुछ लोग खुद को अपडेट रखने के लिए, कुछ अपनी अभिव्यक्ति के लिए इस मंच का प्रयोग करते हैं तो कुछ इस मंच के लिए कंटेंट निर्माण कर अपनी-अपनी कार्य क्षमता और दक्षता के लिए।

शुरुआती दौर में सोशल मीडिया भारत में आया था, तब इस लोकमंच पर "टेक्स्ट कंटेंट"की अधिकता थी, पर जिस हिसाब से पिछले कुछ वर्षों में डाटा (इंटरनेट) क्रांति हुई है और जन-जन तक इंटरनेट और स्मार्टफोन पहुँचा है, उसी अनुपात में इस मंच के रंग-रूप और आयाम भी बदले हैं। पहले जहाँ सिर्फ टेक्स्ट कंटेंट की भरमार थी, अब वहीं विडियो कंटेंट की अधिकता होने लगी है। आज बड़ी संख्या में भारत के युवा अपना यू-ट्यूब चैनल, ब्लॉग और सोशल साइट्स पर चुटकुलों, कहानियों, लघु फिल्मों और अन्य मीडिया कंटेंट के पेज चला रहे हैं।

इन सबसे इतर हमें आज यह देखने की भी जरूरत है कि सोशल मीडिया पर कंटेंट की अधिकता तो है पर वो कितने विश्वसनीय और उपयोगी हैं। इस अध्ययन के माध्यम से हम इस बात को आसानी से समझ सकते हैं कि जिस गति से इस मंच पर सामग्रियों की अधिकता हुई है उस अनुपात में उसकी विश्वसनीयता और उपयोगिता नहीं बढ़ी है। जो कि एक चिंतनीय विषय है, जिस पर हमें विचार करने की जरूरत है। आज भी इस माध्यम पर कोई फेक वीडियो या पोस्ट शेयर करता है और दंगे भड़क जाते हैं। जिसे रोकने और नियंत्रित करने की आज सख्त जरूरत है। यह सच है कि यह मंच भारत में अभी अपने बाल्यावस्था में है, जिसमें अभी बहुत से बदलाव होने बाकी हैं। जो कि समय के साथ-साथ हो जाएंगे। पर हमें अपने स्तर पर भी सचेत रहने और इस मंच के सकारात्मक इस्तेमाल के प्रति जागरूक रहने की जरूरत है।

संपर्क:

पीएच.डी. शोधार्थी जनसंचार विभाग,

महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी बिहार, **मो. 9582961717**

सोशल मीडिया: लोकतंत्र का सेतु

राजेश अहिरवार

सोशल मीडिया आज के डिजिटल युग में आम–आदमी के जीवन का हिस्सा बन गया है। वर्तमान दौर में युवाओं सहित अधिकतम लोग सोशल मीडिया पर सक्रिय है। सोशल मीडिया ने आम–आदमी को एक अंतरराष्ट्रीय मंच दिया है। जिसके माध्यम से वह न केवल स्वयं का बल्कि शासन, प्रशासन, देश और समाज के विषय में भी अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त कर रहे हैं। सोशल मीडिया के आने के पहले आम–आदमी सिर्फ पाठक, श्रोता एवं दर्शक था। वह पत्र–पत्रिकाओं में समाचार पढ़ सकता था, रेडियो पर समाचार सुन सकता था तथा टेलीविजन पर समाचार देख सकता था। वह सिर्फ प्राप्तकर्ता था। उसके पास इनके संबंध में प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करने के लिए कोई माध्यम नहीं था और न ही इस प्रकार का कोई प्लेटफॉर्म था जिसके माध्यम से वह इनके विषय में संवाद स्थापित कर सके। सोशल मीडिया ने एक सशक्त परिपूर्ण नि:शुल्क प्लेटफॉर्म आम–आदमी को दिया है। जिसके द्वारा वह शासन–प्रशासन की नीतियों एवं कार्यों की प्रशंसा, आलोचना तथा विश्लेषण कर सकता है। ऐसा करने वाले लोगों से संवाद कर सकता। ऐसे समाचार जिसे मुख्यधारा का मीडिया स्थान न दे रहा हो, उन समाचारों को प्रेषित कर सकता है। सोशल मीडिया ही वह माध्यम है जिसने पाठक, श्रोता तथा दर्शक जो सिर्फ प्राप्तकर्ता था उसे प्रेषक बना दिया है। आम–आदमी को पत्रकार की भूमिका प्रदान करने वाला सोशल मीडिया ही है। आज अधिकतम सेवाएं एवं कार्य ऑनलाइन हो चुके हैं फिर मीडिया कैसे इससे अछूता रह सकता था। वेब मीडिया अथवा न्यू मीडिया के विकास का आधार ही सोशल मीडिया है। जिसने तीव्रता से प्रभाव के साथ खबरों को लोगों तक पहुँचाते हुए, आम लोगों को सीधे तौर पर अपने साथ जोड़ा है। 'दी लल्लनटॉप' इसका सबसे ताजा उदाहरण है। मोबाइल फोन ने ग्लोबल संसार को आम–आदमी की जेब में ला दिया है। इसी का परिणाम है कि आज अधिकतम लोगों तक सोशल मीडिया की पहुँच हो चुकी है।

सोशल मीडिया सर्वप्रथम १९९५ में अस्तित्व में आया। उस वक्त 'क्लासमेट्स डॉट कॉम'नामक एक साइट शुरू की गई थी, जिसके माध्यम स्कूलों, कॉलेजों, मिलीटरी तथा अन्य कार्यक्षेत्रों के लोग एक दूसरे से जुड़ सकते थे। यह साइट अब भी सक्रिय है। इसके बाद वर्ष १९९६ में 'बोल्ट डॉट कॉम' नाम की सोशल साइट बनाई गई। वर्ष १९९७ में एशियन एवेन्यू नाम से एक साइट शुरू की गई। सोशल मीडिया के क्षेत्र में सबसे बड़ा बदलाव फेसबुक के उदय के साथ ही हुआ। ४ फरवरी २००४ में हावर्ड विश्वविद्यालय के छात्र 'मार्क जुकरबर्ग' ने अपने विश्वविद्यालय में मित्रों से चैट करने के लिए इस सोशल नेटवर्किंग साइट फेसबुक को डेवलप किया था। धीरे–धीरे इसका विस्तार अमेरिका के दूसरे कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों तक हुआ। वर्ष २००५ में फेसबुक अमेरिका की सरहद पार करके विश्व के अन्य देशों में पहुँच गया। इसी क्रम में यूट्यूब १४ फरवरी २००५, ट्वीटर २१ मार्च २००६, इंस्टाग्राम ०६ अक्तूबर २०१०, प्रिंटरेस्ट मार्च २०१०, गूगल प्लस २८ जून २०११ एवं व्हाट्स ऐप २००९ इत्यादि सोशल मीडिया माध्यमों ने इंटरनेट पर एक नवीन क्रांति को जन्म दिया और इन सभी माध्यमों ने युवाओं से लेकर

बुजुर्गों तक को इस माध्यम से जोड़ने में सफलता प्राप्त की है। दोस्तों तथा सगे-संबंधियों को खोजने, चौटिंग करने, सूचनाओं के आदान-प्रदान से शुरू हुआ सफर आज आम-आदमी की अभिव्यक्ति का एक मजबूत उपकरण बन गया है।

आम-आदमी से लेकर नेता, अभिनेता एवं लगभग सभी संस्थान सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं। जहाँ आम-आदमी समान्यत: इनसे संपर्क नहीं कर सकता है। उसे एक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, लेकिन सोशल मीडिया एक ऐसा सेतु बन गया जिसके द्वारा आम-आदमी इनसे संपर्क कर सकता है। लोकतंत्र में सोशल मीडिया जनता और सरकार तथा संस्थानों के बीच एक सेतु का कार्य कर रहा है। इसका उदाहरण आगरा की एक सामान्य छात्रा नाजिया है, जिसने अपने क्षेत्र में अवैध रूप से चल रहे जुए और सट्टे के अड्डों के बारे में जुलाई २०१६ में पुलिस में शिकायत दर्ज कराई। जब इस संबंध में इससे जुड़े लोगों को पता चला तो उसका एवं उसके परिवार को आने-जाने में परेशान किया जाने लगा। उसके घर पर हमले हुए, डराया-धमकाया गया यहाँ तक कि उसका स्कूल जाना भी मुश्किल हो गया। नाजिया के घरवालों ने शहर छोड़ने का फैसला कर लिया। तभी नाजिया ने उत्तर-प्रदेश के मुख्यमंत्री को इस संबंध में ट्वीट किया और पूरा पुलिस महकमा हरकत में आ गया। नाजिया को पुलिस सुरक्षा मुहैया कराई गई। जुए तथा सट्टे के कारोबार से जुड़े लोगों के खिलाफ बड़ा अभियान चलाया गया। नाजिया को इस साहसपूर्ण कार्य के लिए वीरता पुरस्कार 'भारत अवार्ड' से २६ जनवरी २०१८ को गणतंत्र दिवस के अवसर पर दिल्ली में भारत के माननीय प्रधानमंत्री जी ने सम्मानित किया। यह संभव हो पाया सोशल मीडिया के कारण, क्योंकि अन्य किसी माध्यम से आम-आदमी का इतनी शीघ्रता के साथ मुख्यमंत्री से संपर्क करना संभव नहीं था।

संविधान के अनुसार लोकतंत्र के तीन प्रमुख स्तंभ विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका है। चौथे स्तंभ के रूप में मीडिया को स्थान मिला है। लोकतंत्र का पहला स्तंभ विधायिका है जो कि कानून बनाने का काम करती है, जनता द्वारा चुने गए जनप्रतिनिधि विधायिका के रूप में कानूनों का निर्माण करते हैं। यह उनकी जिम्मेदारी होती कि उनके द्वारा बनाया जाने वाला कानून जन-हितकारी होगा। वह किसी का शोषण नहीं करेगा। लोकतंत्र का दूसरा स्तंभ कार्यपालिका है, जो विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों का पालन एवं बरकरार रखना कार्यपालिका का कार्य होता है। तीसरा सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ न्यायपालिका है। जो राजा और रंक दोनों के लिए एक समान है। कानूनों की व्याख्या करना एवं उल्लंघन करने वालों को दंड देना इसका प्रमुख कार्य है। मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है, जो जनता की आवाज बनकर सरकार तक पहुँचता है। मीडिया को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में सबसे पहले 'एडमंड बर्क' ने परिभाषित किया था। मीडिया जनता की समस्याओं से अवगत कराने, विभिन्न सूचनाओं को जनसमूह तक पहुँचाने तथा सरकार की नीतियों और कार्यों को जनता के समक्ष उजागर करना प्रमुख कार्य है। समसामयिक विषयों पर जनता को जागरूक करने एवं शक्ति का दुरुपयोग रोकने में भी मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत में प्रेस के लिए कोई अलग से कानून नहीं है। आर्टिकल १९(१) (क) के अनुसार, भारत में रहने वाले सभी भारतीय नागरिकों को जो अभिव्यक्ति का अधिकार प्राप्त है, मीडिया को भी वही अधिकार दिया गया है। लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि लोकतंत्र के चारो स्तंभ अपनी जिम्मेदारी पूरी निष्ठा से निभाएं। अमेरिका के तीसरे राष्ट्रपति थॉमस जेफरसन ने कहा था, ''यदि मुझे कभी यह निश्चित करने के लिए कहा जाए कि प्रेस और सरकार में से किसी एक को चुनना है, तो मैं बेहिचक प्रेस का चुनाव करूँगा, क्योंकि प्रेस का अस्तित्व होना आवश्यक है।''

इंटरनेट के विकास के साथ ही सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से सामाजिक जीवन में संवाद के नवीन स्वरूप का उदय हुआ है। मुख्य धारा के मीडिया जगत का तेजी

से हो रहे ध्रुवीकरण और व्यवसायीकरण के कारण आम जनता के लिए स्थान दिनों-दिन कम होता जा रहा है। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ वर्तमान दौर में विज्ञापन और लोकप्रियता का अड्डा बन गया है। जहाँ विज्ञापन के माध्यम से लोकप्रियता की बोली लगती है। इस प्रक्रिया में आम-आदमी को अपने लिए स्थान पाना मुश्किल होता जा रहा है। वर्तमान दौर का मीडिया चटपटी मसाला युक्त बिकाऊ खबरें तलाशता है, जबकि आम आदमी की व्यथा बिकाऊ नहीं बल्कि सरकार, नौकरशाहों, भ्रष्टाचारियों, दुराचारियों एवं बाहुबलियों के चेहरे से नकाब उतारने वाली होती है। शाम को सभी न्यूज चैनल प्राइम टाइम का मैदान बन जाते हैं। जिसका एक प्रायोजक होता है। जिसमें किसी मुद्दे पर मिर्च-मसाले के साथ तीखी बहस होती है। जिसमें अधिकांशत: मुख्य पहलु अदृश्य नजर आता है। वर्तमान समय में किसी विशेष व्यक्ति, समुदाय एवं राजनीतिक पार्टी इत्यादि की साख बनाने-बिगाड़ने तथा पक्ष अथवा विरोध में माहौल बनाने और बिगाड़ने का कार्य भी मुख्य धारा का मीडिया बखूबी कर रहा है। २०१४ के लोकसभा चुनावों के पूर्व कालाधन, अच्छे दिन और हर गरीब के खाते में १५ जैसे प्रोपोगंडा मुख्यधारा के मीडिया के माध्यम से ही जनता तक पहुंचे थे। किसी भी मुख्य धारा के मीडिया ने इसका यथार्थ अथवा इसके पक्ष-विपक्ष क्या हो सकते है? जनता के समक्ष प्रस्तुत करने की जरूरत नहीं समझी। मीडिया को लोकतंत्र के चौथे स्तंभ होने का गौरव इसलिए प्राप्त है, ताकि यह निष्पक्ष होकर जनता की बात सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करें और यथार्थ से उसका साक्षात्कार कराएं।

ऐसे समय में सोशल मीडिया लोकतंत्र का सेतु बन कर उभरा है। जिस समय सोशल मीडिया नहीं था उस समय आम-आदमी सिर्फ प्राप्तकर्ता था, जबकि सोशल मीडिया के आने के बाद वह संप्रेषक भी बन गया है। सोशल मीडिया ने आम-आदमी को भी पत्रकार की भूमिका प्रदान की है। सोशल मीडिया एक ऐसा प्लेटफॉर्म है, जहाँ पर आम-आदमी न केवल अपना मत अभिव्यक्त कर सकता है, बल्कि मत अभिव्यक्त करने वाले लोगों के साथ संवाद भी कर सकता है। इस माध्यम पर खबरों तथा सूचनाओं का आदान-प्रदान भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सरलता से किया जा रहा है। जब आम-आदमी को प्रचलित जनमाध्यमों पर स्थान नहीं मिलता तो वह सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी बात रखता है। २३ अगस्त २०१८ को एक अति साधारण बच्ची प्रीत विहार से गुम हो गई, जिसकी गुमसुदगी पुलिस थाने में दर्ज कराई गई जिसे पुलिस ने अधिक गंभीरता से नहीं लिया। इसके बाद राजस्थान की सामाजिक कार्यकर्ता सरिता भरत ने इस संबंध में फ़ेसबुक के माध्यम से सोशल मीडिया पर एक पोस्ट डाली, जहाँ कई लोगों एवं संस्थाओं ने इस संबंध में सरिता जी से पूरी जानकारी माँगी। इस तरह एक माह के अंदर ही बच्ची को खोजने में सफलता प्राप्त हुई।

सोशल मीडिया विश्व व्यापी #Me Too (मी टू) अभियान का साथी बना है। यौन उत्पीड़न एवं शोषण की शिकार हुई महिलाओं ने अपने साथ घटित घटना को इस अभियान के माध्यम से साझा किया है। इस प्रकार की घटनाएँ हमेशा ही महिलाओं का दिल दहला देती हैं और यह बहुत कष्टकारी होता है। ऐसी घटनाओं को पूरी तरह भुलाना बहुत मुश्किल होता है, लेकिन me too मंच पर साझा करने से कुछ हद तक जरूर सांत्वना मिली होगी। यह अभियान अमेरिका से शुरू होकर शीघ्र ही विश्व भर में फैल गया। यह संभव हो पाया है सोशल मीडिया के माध्यम से, क्योंकि इससे पहले इस प्रकार का मंच उन महिलाओं के पास नहीं था। अब वह न केवल अपनी आप-बीती साझा कर सकती हैं, बल्कि प्रतिक्रिया के साथ-साथ ऐसी महिलाओं के साथ संवाद करना भी संभव हुआ है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम २००६ में अफ्रीकन-अमेरिकन सोशल ऐक्टिविस्ट 'तराना बुर्के' ने किया था। वह यौन उत्पीड़न से पीड़ित महिलाओं के लिए कार्य करती हैं।

इस अभियान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिली। अक्टूबर २०१७ में जब हॉलीवुड अभिनेत्री, गायिका

एवं सामाजिक कार्यकर्ता एलीसा मिलाने ने ट्वीट कर, उन्होंने हॉलीवुड फिल्म निर्माता हार्वे वीनस्टीन पर अपने यौन–शोषण का आरोप लगाया और महिलाओं के खिलाफ हो रही यौन हिंसा की भयावहता को बताने के लिए लोगों से आग्रह किया कि वे अपने साथ हुई घटना को बताने के लिए #MeToo के साथ ट्वीट करें। वर्तमान समय में भारतीय फिल्म जगत में भी हाय–तौबा मचा हुआ है, महिलाएँ अपने साथ हुई घटनाओं को साझा कर रही हैं। प्रभावशाली लोगों के खिलाफ भी वह अपनी आवाज बुलंद कर रही हैं। इसका व्यापक असर भारतीय फिल्म जगत में देखा जा सकता है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र के साथ ही सोशल मीडिया ने राजनीति के क्षेत्र मे भी प्रभावशाली भूमिका निभाई है। भारत में 'इंडिया अगेंस्ट करप्शन' ने फेसबुक के जरिए लोगों को जोड़कर जन–लोकपाल बिल के समर्थन में एक बड़ा आंदोलन खड़ा कर दिया था। २०१२ दिल्ली में हुए निर्भया कांड के विरोध में सबसे ज्यादा जन–आक्रोश सोशल मीडिया के माध्यम से ही फैला था। एक मजबूत संदेश सरकार तक पहुँचा और उसे एक नया कानून बनाना पड़ा। अप्रैल २०१८ में हुए आसिफा कांड की सबसे ज्यादा भर्त्सना सोशाल मीडिया पर ही की गई थी। लोगों ने 'जस्टिस टू आसिफा' नामक डीपी लगाकर अपना विरोध दर्ज कराया था। सोशल मीडिया के प्रभाव को निम्नांकित बिंदुओं के द्वारा समझा जा सकता है।

१. सोशल मीडिया के आने के पूर्व पाठक, श्रोता, दर्शक सिर्फ प्राप्तकर्ता था, अब संप्रेषक भी हो गया है।

२. सोशल मीडिया ने आम–आदमी को भी पत्रकार बना दिया है। जिन समाचारों को मुख्यधारा के मीडिया में स्थान नहीं मिलता उन्हें वह स्वयं पोस्ट कर देता है। जहाँ वह प्रतिक्रिया दे सकता है और संवाद भी कर सकता है।

३. सोशल मीडिया ने आम–आदमी को कंप्यूटर साक्षर बनाया है, इसमें मोबाइल की भूमिका भी उल्लेखनीय है।

४. न्यू मीडिया अथवा वेब मीडिया का आधार सोशल मीडिया है।

५. सरकारी सेवाओं सहित अन्य सार्वजनिक एवं निजी सेवाओं को ऑनलाइन प्रयोग करने के लिए सोशल मीडिया ने प्रेरित किया है।

सोशल मीडिया ने हर व्यक्ति को अपनी बात जनमानस और शासन तक पहुँचाने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान किया है। सूचना के आदान–प्रदान के साथ–साथ जनमत तैयार करने, जनचेतना जागृत करने, विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को आपस में जोड़ने, विभिन्न मुद्दों और आंदोलनों में भागीदार बनाने की दृष्टि से सोशल मीडिया एक सशक्त माध्यम है। जब परंपरागत जन– माध्यम प्रजातंत्र के दायित्वों से भटक रहे हैं, उस दौर में सोशल मीडिया लोकतंत्र के चौथे स्तंभ का मजबूत जन–लोकप्रिय उपकरण बन चुका है। जहाँ आम आदमी अपनी व्यथा सुनाने के साथ–साथ सरकार की आलोचना और प्रशंसा कर रहा है। सोशल मीडिया जन–जागरूकता लाने एवं अपनी अभिव्यक्ति को सरकार तक पहुंचाने का प्रमुख उपकरण बनकर सामने आया है। इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक जिम्मेदारी के साथ करना चाहिए, क्योंकि अच्छा या बुरा परिणाम प्रयोग करने वाले के तरीके और उद्देश्य पर निर्भर करता है।

संदर्भ सूचीः

१. अगनानी कन्हैया, पत्रकारिता के मूल सिद्धांत, द्वितीय संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर २००८

२. रत्तू डॉ. कृष्ण कुमार, दृश्य–श्रव्य एवं जनसंचार माध्यम, द्वितीय संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर २०१०

३. भानावत डॉ. संजीव, भारत में संचार माध्यम, प्रथम संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर २०१०

संपर्कः पीएच.डी. शोधार्थी, प्रदर्शनकारी कला महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा,

मो. 9657856269, 8839923506, Email- rrk.sir@gmail.com

कोविड १९ के संदर्भ में सार्वजनिक सेवा विज्ञापन में खतरे की अपील का अध्ययन

रुकैय्या नाज़

भूमिका: आज के इस आधुनिक दौर में तेजी से बदलती दुनिया में मीडिया की जिम्मेदारी लगातर बढती जा रही है और इसके साथ मीडिया का काम और भी जटिल होता जा रहा है। जिस तरह से आज के समय में सूचनाओं का प्रसार बढ़ता जा रहा है, ये मीडिया में आधुनिक तकनीक की देन है। मीडिया के अलग–अलग माध्यम जैसे टेलीविजन, समाचारपत्र, रेडियो, सिनेमा, विज्ञापन, वेबपोर्टल, सोशल मीडिया आदि अपनी भूमिका को निभाते हुए लगातार समाज में सूचनाओं का प्रसार करते हैं। देश–विदेश में होनी वाली घटनाओं से समाज को अवगत कराता हैं।

सार्वजनिक सेवा विज्ञापन, विज्ञापन का ही एक प्रकार है। जिसे अन्य विज्ञापनों से अलग समाज की भलाई के लिए बनाया जाता है। सार्वजनिक सेवा विज्ञापन मीडिया के माध्यमों की कड़ी के रूप में कार्य करता है। सार्वजनिक सेवा विज्ञापन (पीएसए) गैर–लाभकारी संगठनों द्वारा प्रस्तुत संदेश है, जो किसी संस्था, मुद्दे, या कारण के लिए एक विशिष्ट कार्रवाई या दृष्टिकोण को बढावा देने का प्रयास करते हैं ताकि जनता के हित में काम किया जा सके (Dessart, 1982)। वाणिज्यिक विज्ञापन मूलत: पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उत्पादों के लिए किया जाता है। उनका सबसे स्पष्ट लक्ष्य संभव उपभोक्ताओं को समान लक्षणों वाले दूसरे कंपनियों के उत्पाद की तुलना में अपने उत्पाद या सेवा की खरीद के लिए प्रेरित करना है। परंतु किसी विशिष्ट वस्तु या सेवा को बेचने पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय एक सार्वजनिक सेवा विज्ञापन का उद्देश्य जनता को किसी महत्वपूर्ण मुद्दे से अवगत कराना और उन्हें एक विशिष्ट कार्यवाही करने के लिए प्रेरित करना होता है। सार्वजनिक सेवा विज्ञापन यानी पीएसए, जिसे और भी कई नामों से जाना जाता है जैसे सामाजिक विज्ञापन, सार्वजनिक सेवा अपील, सामाजिक जागरूकता अपील आदि। ये विज्ञापन सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाएं सेवा के लिए या अपनी छवि सुधारने के लिए प्रेषित करते हैं। परंतु इन विज्ञापनों का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, मादक द्रव्यों के सेवन, अपराध, ड्राइविंग सुरक्षा जैसे अन्य महत्वपूर्ण विषयों के बारे में समुदाय को शिक्षित करना हैं। सार्वजनिक सेवा विज्ञापन सामाजिक बुराइयों को कम करने के लिए सामाजिक मुद्दों के बारे में जानकारी देने को बढ़ावा देने का काम करता है (Gangadharan, 2013)। इन विज्ञापनों को अधिक लोगों के लिए इस लक्ष्य के साथ बनाया जाता है कि दर्शक जोखिम को कम करने, सुरक्षा बढ़ाने और अशिक्षा के मुद्दे को हल करने के लिए कार्रवाई करेंगे। इसलिए, ये विज्ञापन जनता की राय को प्रभावित करने के तरीके के रूप में काम करते हैं। सार्वजनिक सेवा विज्ञापन समाज के सामने कई सार्वजनिक स्वास्थ्य और अन्य सामाजिक चुनौतियों का सामना करने के प्रयास में एक संभावित शक्तिशाली उपकरण है, (Narang, Narang, & Nigam, 2012), (Turner & W.J., 1978), (Singh & Singh, 2017)

दूसरी ओर, निजी व्यवसायों को पीएसए से मुफ्त प्रचार और बेहतर कंपनी प्रतिष्ठा का लाभ मिलता है। हालाँकि निजी कंपनियां लोगों को उनसे कुछ भी खरीदने के लिए नहीं कह सकते हैं, परंतु जो लोग इन सेवा विज्ञापनों की घोषणा को देखते, सुनते या पढ़ते हैं वे उस ब्रांड के बारे में अधिक जागरूक हो जाते हैं, और उन लोगों के मस्तिष्क में कंपनी की बेहतर छवि बनने लगती है। इससे वे किसी भी अभियान को दान कर सकते हैं, और स्वयं समर्थक बन सकते हैं, इसे ब्रांड की इमेज बनाने के काम में लिया जाता है।

सैद्धांतिक ढांचा: खतरा अपील, जिसे अन्यथा डर अपील के रूप में जाना जाता है, आमतौर पर सार्वजनिक सेवा विज्ञापन में नियोजित किया जाता है। क्योंकि सार्वजनिक (जैसे, स्वास्थ्य और पर्यावरण के मुद्दों) गंभीर मुद्दों के गंभीर परिणाम अक्सर इन संदेशों में संबोधित किए जाते हैं (J.L.Monahan, 1995)। सार्वजनिक सेवा विज्ञापन अक्सर लोगों को संदेश में सुझाए गए व्यवहार के अनुरूप प्रेरित करने के लिए खतरा और डर रणनीतियों को नियुक्त करते हैं। (Rogers, 1983)। संस्थाएं आवश्यक मुद्दें डर की अपील के तौर पर दिखाते हैं, जिससे लोग इन्हें देखकर ज्यादा सचेत हो जाए और उन पर संदेश का अधिक प्रभाव पड़े। इन डर अपीलों में किसी भी गंभीर मुद्दें के बारे में बता कर उससे जुड़े खतरे के बारे में बताया जाता है और साथ ही उससे बचाव का तरीका भी बताया जाता है। किसी समस्या के खतरे भरे परिणामों को इस तरह देखा जा सकता है, उदाहरण के लिए, धूम्रपान आपके फेफडों में कैंसर के खतरे की संभावना को बढ़ाता है, और जोखिम को कम करने के लिए व्यवहार में सुधार (जैसे, धूम्रपान छोड़ना) का सुझाव दिया जाता है। इन संदेशों में प्रक्रिया के दो स्तर मौजूद होने की संभावना होती है। प्रक्रिया का पहला स्तर खतरे का मूल्यांकन प्रक्रिया है, जिसके दौरान खतरे की सूचना के कारण भय और कथित डर की प्रतिक्रियाएं उत्पन्न होती हैं। दूसरा स्तर सुझाव का मूल्यांकन प्रक्रिया है, जिसके दौरान किसी की सिफारिश और हानिकारक खतरे को कम करने में सिफारिश की प्रभावशीलता (यानी, प्रतिक्रिया प्रभावकारिता) के अनुरूप करने की क्षमता का आकलन किया जाता है। (Witte, 1992)

कोरोना वायरस : विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने कोरोना वायरस को महामारी घोषित कर दिया है। कोरोना वायरस बहुत सूक्ष्म, लेकिन प्रभावी वायरस है। कोरोना वायरस मानव के बाल की तुलना में ९०० गुना छोटा है, लेकिन कोरोना का संक्रमण दुनियाभर में तेजी से फैल रहा है। कोरोना वायरस (सीओवी) का संबंध वायरस के ऐसे परिवार से है, जिसके संक्रमण से जुकाम से लेकर साँस लेने में तकलीफ जैसी समस्या हो सकती है। इस वायरस को पहले कभी नहीं देखा गया है। इस वायरस का संक्रमण दिसंबर में चीन के वुहान शहर से शुरू हुआ था। डब्लूएचओ के मुताबिक बुखार, खाँसी, साँस लेने में तकलीफ इसके लक्षण हैं। अब तक इस वायरस को फैलने से रोकने वाला कोई टीका नहीं बन सका है। कोरोना वायरस अब चीन में उतनी तीव्र गति से नहीं फैल रहा है, जितना दुनिया के अन्य देशों में फैल रहा है। कोविड १९ नाम का यह वायरस अब तक ७० से ज्यादा देशों में फैल चुका है। कोरोना के संक्रमण के बढ़ते खतरे को देखते हुए सावधानी बरतने की जरूरत है, ताकि इसे फैलने से रोका जा सके।

भारत जैसे सवा अरब से भी अधिक आबादी वाले विकास के लिए प्रयत्नशील देश पर कोरोना का संकट कोई सामान्य बात नहीं है। कोरोना के इस खतरे को देखते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कई बार राष्ट्र के नाम अपने संदेश में देशवासियों से बचाव के लिए संयम का संकल्प लेने का आह्वान किया और घरों से बाहर नहीं निकलने की अपील की है। साथ ही पूरे देश में लॉकडाउन कर दिया है, जिससे लोगों में सामाजिक दूरी बन सके और वायरस के फैलने का खतरा कम हो सके। १० मई २०२० तक भारत में कोरोना वायरस के ४१४७२ मामले सामने आ चुके हैं और २१०९ लोगों की मृत्यु हो

चुकी है (Government of India)। अनुमान लगाया जा रहा है कि ये आकड़े लाखों में जा सकते हैं। सरकार हर मुमकिन प्रयास कर रही है कि लोग घर में रहें और सामाजिक दूरी बनाए रखें। लोगों को जागरूक करने के लिए सरकार हर तरह से जनसंचार माध्यमों का प्रयोग कर रही है, जिससे लोगों को इस बीमारी के बारे में जागरूक किया जा सके।

जनसंचार माध्यम और सार्वजनिक सेवा विज्ञापन: सर्वजनिक सेवा विज्ञापन को जनसंचार के विभिन्न माध्यमों के द्वारा लोगों तक पहुँचाया जाता है। इसमें सरकार, गैर–सरकारी संस्थाएं और निजी कंपनियां अलग–अलग जनमाध्यमों का प्रयोग करके संदेश को उद्देशित जनता तक पहुँचाते हैं। ये संदेश जनता में जागरूकता लाने के लिए सूचना संदेश, भय अपील, सचेत करना, शिक्षित करना आदि करता है। जनमाध्यमों में समाचार पत्र, टेलीविजन, रेडियो, सिनेमा, इंटरनेट, सोशल मीडिया, लोक–गीत, पोस्टर, दीवार पेंटिंग आदि के द्वारा किया जाता है। कई सारे पूर्व शोध से ये ज्ञात होता है कि इन सब में टेलीविजन को सबसे ज्यादा प्रभावशाली माध्यम पाया गया है।

शोध का उद्देश्य: कोरोना वायरस महामारी के संकट में जनसंचार की भूमिका का अध्ययन करना है।

सार्वजनिक सेवा विज्ञापन के द्वारा खतरे की अपील का अध्ययन करना है।

शोध की क्रियाविधि: अनुसंधान पद्धति एक ऐसी रणनीति है जो अनुसंधान प्रश्नों के उत्तर प्रदान करने में एक शोध का मार्गदर्शन करती है और इसके लिए डेटा और साहित्य पर आधारित शोध सर्वेक्षण आयोजित किया जाता है। अध्ययन की सटीकता, पद्धति के व्यवस्थित अनुप्रयोग पर निर्भर करता है। शोधकर्ता को उपयोग की जाने वाली विधि का निर्णय करना होता है जो उसे व्यवस्थित तरीके से वांछित दिशा प्राप्त करने में मदद करता है।

अनुसंधान डिजाइन प्रकृति में खोजपूर्ण है, जो उपलब्ध साहित्य से मुख्य तथ्यों को खोजने में सहायक है। यह पत्र भारतीय संदर्भ में सार्वजनिक सेवा विज्ञापन से जुड़े वैचारिक मुद्दों पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है। इसलिए, एकत्रित माध्यमिक डेटा के माध्यम से मुद्दों का अध्ययन किया जाता है। माध्यमिक साहित्य समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों, सम्मेलन की कार्यवाही, सरकारी रिपोर्टों और वेबसाइटों से एकत्र किया गया है।

कोरोना वायरस से रोकथाम के समर्थन पर मीडिया संदेश: 'कोरोना वायरस के संचरण को रोकने और धीमा करने के लिए सबसे अच्छा तरीका है कि COVID-19 वायरस के बारे में अच्छी तरह से लोगों को बताया जाए कि यह किस तरह की बीमारी है और यह कैसे फैलती है। (WHO) लोगों को इस बीमारी के बारे में जागरूक करने का सबसे अच्छा तरीका जनसंचार माध्यम के द्वारा माना है। भारत सरकार, गैर सरकारी संस्थान और निजी कंपनियां इस वक्त लोगों को विभिन्न जनसंचार माध्यमों के द्वारा जागरूक करने का प्रयास कर रही हैं।

टेलीविजन और सार्वजनिक सेवा विज्ञापन : देश में कोरोनोवायरस का प्रकोप तेज होने के साथ ही राज्य और केंद्र सरकार महामारी के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए सामाजिक विज्ञापन जारी कर रही है। महामारी COVID-19 के कारण बढ़ रहे खतरे से दुनिया जूझ रही है, इसको देखते हुए देश भर के टेलीविजन सेटों पर अधिक से अधिक कोरोना वायरस के बारे में जानकारी दी जा रही है। मीडिया रिसर्च फर्म TAM द्वारा साँझा किए गए AdEX डेटा में बताया गया है कि शुरुआत के कुछ हफ्तों में ही रोग की रोकथाम, कारण और लक्षणों पर सामाजिक विज्ञापनों की संख्या में कई गुना बढ़ोतरी की गई है। (The Economic Times, 2020)

आँकड़ों से यह भी पता चलता है कि राज्य सरकारों ने इस अवधि के दौरान टीवी पर सामाजिक विज्ञापनों की एक बड़ी हिस्सेदारी की कमान संभाली है। कोरोना वायरस प्रकोप के विज्ञापनों में राज्य सरकारों के सामाजिक विज्ञापनों में ६७ प्रतिशत हिस्सा था, जबकि इस मुद्दे पर केंद्र सरकार के विज्ञापनों में ३३ प्रतिशत हिस्सा रहा (The Economic Times, 2020)।

सरकार के साथ ही निजी कंपनियां जैसे डेटॉल, टाटा, सेवलॉन, अमूल, पारले जी आदि लगातार अपने विज्ञापन के द्वारा लोगों को जागरूक कर रहे हैं। उदाहरण के लिए डेटॉल अपने विज्ञापन में कहता है कि 'आप भले ही कोई भी साबुन का इस्तेमाल करें, पर हाथ अच्छे से २० सेकंड तक धोएँ और कोरोना वायरस से सुरक्षित रहें।' विज्ञापन में कंपनी अपने सामान को महत्व न दे कर डर की अपील के साथ लोगों सुरक्षित रहने को कह रही है। 'RB हेल्थ साउथ एशिया के वरिष्ठ उपाध्यक्ष गौरव जैन ने कहा, "एक कठिन माहौल में, रोगाणु संरक्षण ब्रांड के रूप में डेटॉल का कर्तव्य है कि वह सही व्यक्तिगत स्वच्छता की आदतों को आकार दे। कीटाणुओं और वायरस के प्रसार को रोकने के लिए किसी भी साबुन के साथ हैंडवाशिंग एक आसानी से सुलभ और अत्यधिक प्रभावी तरीका है। (The Economic Times, 2020) पारले जी बिस्कुट कंपनी भी लोगों की मदद के लिए आगे आई है और 'आप है तो हम है' नाम से अभियान चलाया है। जिसमें पारले जी उन सब योद्धाओं को सलाम कर रहा है, जो इस महामारी में अपने घरों से निकल कर लोगों की सेवा के लिए तत्पर हैं जैसे हमारे डॉक्टर, नर्स, सफाईकर्मी, पुलिस, सुरक्षाकर्मी आदि। और लोगों से इनका सहयोग करने और सुरक्षित रहने की अपील कर रहा है। (Parle Production) इसी तरह दूसरी कंपनियाँ भी अपने सामान और सेवा के विज्ञापन में जनता के सुरक्षित रहने पर ज्यादा जोर दे रही हैं।

इसी के साथ ही अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संस्थान UNICEF, WHO आदि बड़े संस्थान भी मीडिया के द्वारा पूरी दुनिया को कोरोना से संबंधित सभी तरह की जानकारी दे रहे हैं। UNICEF ने 'वायरस की कड़ी तोड़ो' के स्लोगन से अभियान चलाया है। जिसमें कोरोना से युद्ध के लिए सभी से हाथ धुलने की अपील की है। (HUL & UNICEF) जिसमें कोरोना खतरे के बारे में बताया गया और फिर उससे बचने के उपाय भी सुझाए।

विज्ञापन में चर्चित चेहरे और कोरोना वायरस: मीडिया की प्रभावशीलता पर दूसरे विश्व युद्ध के बाद से ही शोध आरंभ हो गया था और इससे आने वाले परिणामों ने मीडिया के साथ कई आयाम जोड़ दिए थे। इससे पता चला कि मीडिया की प्रभावशीलता को और कैसे बढ़ाया जा सकता है। इसका एक तरीका मीडिया संदेशों में समाज के चर्चित व्यक्तियों का प्रयोग करना है, क्योंकि इन चर्चित हस्तियों को अधिकतर लोग पहचानते हैं, इन पर भरोसा करते हैं और साथ ही इन्हें अपना आदर्श मानते हैं। जब ये हस्तियाँ लोगों से कुछ जरूरी अपील करती हैं तो लोग इन्हें सुनते है। आधुनिक मीडिया और विज्ञापनों की नई अवधारणाओं के उदय के साथ सेलिब्रिटी एंडोर्समेंट का महत्व बढ़ गया है। सामाजिक जागरूकता विज्ञापन के मामले में मशहूर हस्तियों की भागीदारी एक अतिरिक्त बढ़त देती है। उनकी लोकप्रियता में अधिक प्रेरक शक्ति हो सकती है; वे लक्षित दर्शकों को मना सकते हैं और उनसे वांछित तरीके से काम करवा सकते हैं। (Chatterjee, 2016) महाराष्ट्र सरकार और रोहित शेट्टी की एक पहल, अमिताभ बच्चन, अनिल कपूर, अक्षय कुमार, आलिया भट्ट, रणवीर सिंह, माधुरी दीक्षित और अजय देवगन जैसे अभिनेताओं ने लोगों से कोविड १९ के खतरे, इसके एहतियाती उपायों का पालन करने और कोविड-१९ के प्रसार को रोकने में मदद करने का सामाजिक विज्ञापन के द्वारा आग्रह को जनहित के लिए जारी किया। वीडियो की शुरुआत अमिताभ बच्चन के द्वारा गया और नोवल कोरोना वायरस से सुरक्षित रहने के लिए उन नियमों के बारे में बताया गया है, जिनका पालन किया जाना चाहिए। अन्य अभिनेता तब एक-एक करके उन उपायों को बताते हैं, जो घातक वायरस के प्रसार को रोकने के लिए उठाए जा सकते हैं। (India Today, 2020) केंद्रीय सरकार के स्वास्थ एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की तरफ से भी लगातार लोगों को जागरूक करने के लिए समाजिक विज्ञापन जारी किया जा रहा है, जिसमें अमिताभ बच्चन देश को संबोधित

करते हुए कोरोना वायरस के खतरे से बचने की अपील करते हैं। विज्ञापन में कोरोना वायरस के लक्षण को पहचानना, वायरस से बचाव के लिए उसके लक्षण समझ आने के तुरंत बाद क्या अहतियात लेना है आदि के बारे में बताते हैं। साथ ही इसके दृश्य चित्र साथ में चलता रहता हैं, जिससे लोगों को अधिक समझ में आ जाए क्या और कैसे करना है। (PIB India) साथ ही ये विज्ञापन अलग अलग भाषाओं में प्रसारित किए जा रहे हैं, जिससे संदेश को देश के विभिन्न राज्यों तक पहुँचाया जा सके।

सोशल मीडिया का प्रयोग और जनता से अपील: भारत सरकार की तरफ से जनता को कोरोना वायरस के खतरे से जागरूक करने के लिए हर मुमकिन प्रयास किया जा रहा है। COVID-19 रोगियों को ट्रैक करने के लिए भारत सरकार ने मोबाइल एप्लिकेशन Arogya Setu, लांच किया है, जो COVID-19 के प्रसार को रोकने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरा है। आरोग्य–सेतु ने सरकार को अपने दोहरे उद्देश्य– ''किसका परीक्षण करना है'' और ''कहाँ और अधिक परीक्षण करना है'' के साथ COVID-19 के खिलाफ लड़ाई में मदद कर रहा है। (NDTV, 2020)

इसी के साथ, बहुत सारी चर्चित हस्तियाँ सोशल मीडिया का इस्तेमाल करके अपनी तरह से ही छोटी–छोटी ऐड फिल्में बनाकर लोगों को कोरोना वायरस के लिए जागरूक कर रही हैं। उदहारण के लिए, अमिताभ बच्चन ने अपने ट्विटर हैंडल से एक वीडियो पोस्ट की, जिसमें वो खुद लोगों को कोरोना वायरस से संबंधित जानकारी दे रहे हैं और लोगों को सुरक्षित रहने के लिए कह रहे हैं (Hindustan Times) वीडियो में अमिताभ बच्चन कह रहे हैं कि हाल ही में चीन के विशेषज्ञों ने पाया है कि कोरोना वायरस मानव मल में कई हफ्ते तक जीवित रह सकता है और यदि कोई कोरोना मरीज खुले में शौच करता है और उस पर मक्खियाँ बैठती हैं तो मल में उपस्थित जीवित कोरोना वायरस उसे लग जाएगा और वो मक्खी जिस भी खाने अथवा फल–सब्जी पर बैठ जाए तो उसके द्वारा ये बीमारी और अधिक फैल सकती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि कोरोना वायरस से लड़ने के लिए हमें स्वच्छ भारत मिशन का भी साथ में पालन करना होगा और इस महामारी को रोकना होगा। इसी तरह शाहरुख़ खान, अक्षय कुमार, आमिर खान, सलमान खान, माधुरी दीक्षित, अलिया भट्ट, शिल्पा शेट्टी, अनिल कपूर आदि कलाकार लोगों को अपने व्यक्तिगत सोशल मीडिया अकाउंट से लोगों को कोरोना वायरस के लिए सचेत कर रहे हैं, उन्हें सामाजिक दूरी बनाने और साफ सफाई का ध्यान रखने को कह रहे हैं।

निष्कर्ष: पीएसए डिजाइन में डर या खतरे भरी सूचनाओं को संप्रेषित करने के लिए सचेत और भावुक भाव का उपयोग करना, जैसा कि हालिया विज्ञापन अभियानों में देखा गया है। हालाँकि, इस विषय पर अनुसंधान की कमी के कारण खतरे भरे संदेशों की अपील पर शोध सीमित ही है। दूसरी ओर, सिद्धांतों और मॉडलों की एक विविध श्रेणी धमकी या खतरे संदेश को संबोधित करते हैं। जैसा कि शोध से पता चलता है कि कोरोना वायरस से हो रही महामारी से बचने के लिए सरकार और गैर–सरकारी संस्थान मीडिया तथा अन्य मीडिया उपयोगकर्ताओं के द्वारा लोगों को सचेत और जागरूक करने के लिए अपील कर रहे हैं। जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से सार्वजनिक सेवा विज्ञापनों को समाज तक पहुँचाना और लोगों में जागरूकता फैलाना ही इस महामारी के समय में एक मात्र उपाय है। शोध के निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया है कि सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाएं तथा अन्य मीडिया उपयोगकर्ता लोगों को अधिक से अधिक कोरोना के खतरे से अवगत कराने और उन्हें जागरूक करने, सचेत करने के लिए अधिक से अधिक मीडिया का प्रयोग कर रहे हैं। कोरोना वायरस के खतरे को कम करने के लिए लोगों को इसके खतरे के बारे जानकारी देना आवश्यक है। इसलिए सभी तरह के मीडिया माध्यम के द्वारा सार्वजनिक सेवा विज्ञापन को प्रचारित–प्रसारित कर लोगों से सुरक्षित रहने की अपील की जा रही है।

संदर्भ सूची:

Chatterjee, A. (2016). Social Awareness through Celebrity Endorsement - Indian Context. *The International Journal Of Humanities & Social Studies, 4* (4), 172-176.

Dessart, G. (1982). *More Than You Want to Know About PSAs: A Guide to Production and Placement of Effective Public*. Boston: National Broadcast Association for Public Affairs.

Gangadharan, S. (2013). Attitude Towards Public Service Advertisements Among the Rural Youth in Chengalpat Taluk - Kanchipuram District. *Global Research Analysis, 2* (7), 108-110.

Government of India. (n.d.). *#IndiaFightsCorona COVID-19*. Retrieved 04 29, 2020, from MyGov.in: https://www.mygov.in/covid-19

India Today. (2020, March 20). Retrieved May 04, 2020, from indiatoday.in : https://www.indiatoday.in/

J.L.Monahan. (1995). Thinking Positively: Using Positive Affect When Designing Health Messages. In E. Maibach, & R. Parrott, *In Designing Health Messages: Approaches From Communication Theory and Public Health Practice* (pp. 81-98). Newbury Park: Sage.

Narang, Y., Narang, A., & Nigam, D. S. (2012). EFFECT OF PUBLIC SERVICE ADVERTISING AND THE EFFECTIVENESS OF MEDIA- AN EXPLORATORY STUDY OF FOUR CAMPAIGNS. *IJRFM, 2* (2), 480-512.

NDTV. (2020, May 10). *ndtv.com/india*. Retrieved May 11, 2020, from Google: ndtv.com/india-news/coronavirus-india-niti-aayog

Rogers, R. (1983). Cognitive and Physiological Processes in Fear Appeals and Attitude Change: A Revised Theory of ProtectionMotivation. In J. Cacioppo, & R. Petty, *In Social Psychophysiologv: A Sourcebook* (pp. 53-63). NYGuildford.

Singh, K., & Singh, D. A. (2017). PUBLIC SERVICE ADVERTISING IN INDIA: AN EVALUATION THROUGH LITERATURE. *International Journal of Marketing & Financial Management, 5* (3), 53-64.

The Economic Times . (2020, April 03). *ET Brandequity.com*. Retrieved May 04, 2020, from brandequity.economictimes: https://www.brandequity.economictimes.indiatimes.com/news/advertising/dettols-latest-ad-film

The Economic Times. (2020, March 19). *ET Brandequity.com*. Retrieved May 04, 2020, from Google: https://brandequity.economictimes.indiatimes.com

Turner, J., & W.J., T. (1978). The NIMH Community Support Program: Pilot approach to a needed social reform. *Schizophrenia Bulletin, 4* (3).

WHO. (n.d.). *Home/Health topics/Coronavirus*. Retrieved 04 3, 2020, from who.int: https://www.who.int/health-topics/coronavirus

Witte, K. (1992). Putting the Fear Back Into Fear Appeals: The Extended Parallel Process Model. *Communication Monographs, 59* (4), 29-49.

संपर्क: पीएचडी, शोधार्थी, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

Email Id- rukaiya.naz@gmail.com **मो. 9052248953**

समाज के विकास में सोशल मीडिया का किरदार

अजमल अली खान

बदलते वक्त के साथ समाज में मीडिया के किरदार में काफी बदलाव आया है, अब तक लोग अखबार, टेलीविजन, रेडियो एवं दूसरे माध्यमों से ही खबर हासिल करते थे मगर अब उस दिशा में सोशल मीडिया का नाम भी जुड़ गया है।

सोशल मीडिया: अब तक लोग सोशल मीडिया के जरिये एक दूसरे से जुड़ते थे या उनसे बातचीत करते थे मगर बदलते वक्त के साथ अब लोग सोशल मीडिया से खबर को भी देखते, पढ़ते और सुनते हैं। पहले जो काम रेडियो पर सुनकर, अखबार में पढ़कर और टेलीविजन में देखकर करते थे, अब सोशल मीडिया के आ जाने से ये सब काम एक साथ हो जा रहे हैं। एक सर्वे के मुताबिक इस वक्त भारत में स्मार्टफोन चलाने वालों की कुल संख्या २९ करोड़ है जबकि सोशल मीडिया चलाने वाले लगभग ३८ करोड़ है। इससे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि सोशल मीडिया की पहुँच समाज में कहाँ तक हो गई है।

सोशल मीडिया के साधन: फेसबुक, ट्वीटर, व्हाट्सअप, इंस्टाग्राम, यूट्यूब इत्यादि। फेसबुक की शुरुआत जहाँ २००४ में वहीं ट्वीटर २००६ में व्हाट्सअप २०१० तो यूट्यूब ने २००४ में दस्तक दी थी। अब इन संसाधनों के आ जाने से विकसित समाज में रहने वालों के दिनचर्या में काफी बदलाव आया है अब लोग अखबार पढ़ने के लिए सुबह का इंतजार नहीं करते, अब उनको वो खबर उसी वक्त मिल जाती है क्योंकि सभी न्यूज चैनल के वेब पेज अब सोशल मीडिया पर उपलब्ध है। अब लोगों को टेलीविजन पर फिल्म देखने का इंतजार नहीं करना पड़ता, क्योंकि अब सभी फिल्में हॉट स्टार या किसी दूसरे सोशल साइट्स पर उपलब्ध हो जाती हैं।

सोशल मीडिया का प्रभाव एवं दुष्प्रभाव: विकसित समाज में सोशल मीडिया का प्रभाव काफी हुआ है, क्योंकि अब कहीं की खबर या कोई भी बात तुरंत सोशल मीडिया के जरिए लोगों तक पहुँच जाती है। अगर कहीं पर कोई घटना हो जाए तो लोग तुरंत उसको सोशल मीडिया पर शेयर करते हैं। बहुत सारी खबरें ऐसी भी होती है, जिसको न्यूज में जगह नहीं मिल पाती मगर सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों तक यह खबर पहुँच जाती हैं जैसे ऊना की घटना हो जिसको किसी भी न्यूज चैनल या अखबार में जगह नहीं मिली थी मगर सोशल मीडिया की वजह से ही यह खबर लोगों तक पहुँची।

सोशल मीडिया का इस्तेमाल राजनीतिक पार्टियाँ और उनके नेताओं द्वारा भी खूब किया जा रहा है। आपने चुनाव प्रचार में इसका भरपूर फायदा भी लेते हैं। अभी कुछ दिनों पहले जब ज्योतिरादित्य सिंधिया ने कांग्रेस से इस्तीफा दिया तो उसने कोई प्रेस कांफ्रेंस नहीं किया, बल्कि अपने ट्वीटर के अकांउट से ही लिख दिया और उस खबर को मुख्य आधार समझा गया। अब जैसे सोशल मीडिया का प्रभाव बहुत है, ठीक उसी तरह से इसके दुष्परिणाम भी कुछ कम नहीं है। इस प्लेटफार्म पर गलत खबर को खूब वायरल किया जाता है। या यूँ कहें तो कोई पुरानी खबर को गलत तरीके से पेश करके इसका गलत इस्तेमाल किया जाता है जैसे अभी भारत समेत पूरी दुनिया में कोरोना महामारी फैली है, इसी के हवाले से एक खबर चली थी कि जमात के कुछ लोग जो कोरोना से पीड़ित हैं, वह रास्ते भर सब थूकते जा रहे थे मगर बाद में जब इस खबर की पड़ताल की गई तो पता चला कि यह एक पुराना वीडियो था।

निष्कर्ष: समाज को विकसित करने में नि:संदेह सोशल मीडिया का अहम किरदार है, मगर जो भी सोशल मीडिया का प्रयोग करते हैं, उनको चाहिए कि इसका प्रयोग समाज के बेहतरी के लिए किया जाए। बगैर जाने किसी खबर या अफवाह को न फैलाए। एक-दूसरे की मदद करें, दोस्त बनाएं, समाज बनाएं और खुद इसके जरिए अच्छे बनें। जब आप विकसित रहेंगे, तभी एक विकसित समाज के गठन में योगदान दे पाएंगे।

संपर्क: शोधार्थी, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, **मो. 9918923131**

मैं कविता नहीं लिखती, कविता मुझे लिखती है

पूनम सिंह

एक स्त्री का कविता लिखना– भोगे यथार्थ की नियति को समय की आँखों में अंजन की तरह उकेरना है। समय उसे पढ़े या न पढ़े, देखे या अनदेखी कर दे, लेकिन कविता लिखती स्त्री अपने वरण की दिशा तलाशती कभी नहीं थकती। उसकी कविता में संचरित ऊर्जा उसके स्त्री होने के संघर्ष से सहज भाव से जुड़ी होती है। अपने 'स्व' की तलाश में उसका संवेदनात्मक और वैचारिक आत्मविस्तार उसके रचनात्मक संसार में हर जगह देखा जा सकता है।

कविता लिखती स्त्री मुझे हमेशा मुक्तिबोध की उस अधूरी पंक्ति की तरह दिखती है जिसका 'एक समूचा वाक्य टूट कर कहीं बिखर गया है।' आज कविता लिखती हर स्त्री उस अधूरे वाक्य के बिखरे तंतुओं को सहेजने और एक संपूर्ण इकाई के रूप में समूचा वाक्य हो जाने के कठिन आत्मसंघर्ष से गुजर रही है।

मेरा कविता लिखना भी रेत की नदी में अपना उद्गम तलाशती उसी स्त्री के कठिन संघर्ष और सूखे कंठ की प्यास है। जीवन के जद्दोजहद, उठा पटक में जब बहुत उदास और निराश होकर टूटने और बिखरने लगती हूँ तो कविता मुझे दूसरा जन्म देती है। एक ऊंटनी के कंठ में समाहित अमिय घट का अहसास है मेरी कविता। एक जीवन में इसी के सहारे मैंने कई–कई जन्म लिए और खुद को अपने होने का सबूत दिया।

मेरी कविता निजता से शुरू होकर कब अपने आस–पास के दु:ख–दर्द, देशकाल की विसंगतियों और त्रासदियों से जुड़ जाती है मुझे नहीं मालूम, लेकिन अपने भीतर एक तरल समृद्धि और हरापन मैं उसी से अर्जित करती हूँ, यह मुझे पता है।

कविता लिखते हुए मैंने कभी कोई बौद्धिक व्यायाम नहीं किया। रसोई में कलछुल बेलन चलाती भी कविता लिखती रही अक्सर। मेरे भीतर अस्तित्व मूलक प्रश्नों और सामाजिक संघर्षों को लेकर जब भी एक भीषण टकराव और मुठभेड़ की स्थिति बनी, कविता ने मुझे उस हर मोर्चे पर थाम लिया। इसी के सहारे मैं परिवर्तन की एक सकारात्मक दिशा तलाशने और जीवन के दलदल बीहड़ सबमें उतर जाने का हौसला रखती हूँ। परंपरागत संयुक्त परिवार में एकांत का एक कोना तलाशती मेरी कविता जुगनुओं की तरह रतजगा करती किस तरह मेरे लिए जीने का जरूरी सामान जुटाती है– यह अभिव्यक्ति के परे है।

मैं कविता नहीं लिखती, कविता मुझे लिखती है– द्रुत से विलंबित होते राग की तरह...एक उन्मुक्त सांस की तरह...।

रसोईघर में कविता

नमक तेल हल्दी के बीच
कसमसाती अकुलाती वह
घुमड़ती रहती है मेरे भीतर
एक मंद मंथर लहर की तरह
अदृश्य.... अव्यक्त....

एक विरल गंध से लिपटी
पलटती हूँ तवे की रोटियाँ
छौंकती हूँ दाल
परोसती हूँ थाल
उसके वजूद को
दाँव पर लगाती
अपनी अर्थवत्ता पर
होती हूँ निहाल
वह छलक आती है आँखों में
जीवन के नमक की तरह

रोटी के भाप से जली उंगलियों पर
एक दाना की तरह
उग आती है वह
उसमें पानी की चमक है

रसोई घर में जन्मा यह पानीदार दाना
एक कवि का जीवन बीज
सर्जना का अनमोल शब्द
कोमल सी सरसराहट
एक कविता की

'एक फुलकी रोटी और
कब से कह रहा हूँ'

आवाज की धमक से होती हूँ हतप्रभ
अर्द्ध चेतना में पलटती हूँ रोटी
गर्म तवे पर झुलस जाती है
मेरी कविता।

कोरोना समय की शृंखलित कुछ कविताएँ

1

'कोरोना' भाषा की लय में
निषेधाज्ञा का एक अबूझ शब्द
जीवन बचाने की एक
ललकार भरी चुनौती
चेतावनी भरा सन्नाटा
या कि जुए में दाँव पर
लगी साँसों की द्रुत से
विलंबित होती एक पुकार
क्या है कोरोना ?

2

हर घर की देहरी पर खींची है
साँपों की सरसराहट सी
भय की एक लक्ष्मण रेखा
लोग दुबके पड़े हैं घरों में
निर्जन सड़क पर
शैतान की एक आँख
रडार की तरह घूम रही है
उसके हाथ में मृत्यु की कटार है
और पाँव में रौंदी जा रही
कातर साँसों का हाहाकार

3

याचक की मुद्रा
और प्रार्थना के शिल्प में
हर घर में गूँजती यह आवाज
मंदिर मस्जिद गुरुद्वारे से
गिरिजाघर तक पहुँचती है
और पूरा देश उनींदी रात के
उतुंग वक्ष पर शीश धरकर
'लॉकडाउन' हो जाता है

4

यह समय कोरोना की रणभूमि में
कृत संकल्पित होने का है
मित्रों! आप घर के दुर्ग में कैद रहें
लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन
हरगिज–हरगिज न करें
राष्ट्रहित में यह एक प्रार्थना
एक याचना है

5

'लॉकडाउन' में
नदी की उफनती लहरों सा
सारे बैरिकेट तोड़ता राजमार्गों पर
उमड़ आया है एक सैलाब
जीवन को लीलता हुआ

वे लौट रहे हैं
घरमुहाँ भेड़ बकरियों की तरह
शहर से गाँव की ओर
उजड़े घोंसले के पंख पखेरू
अपने साथ लिए

उनके लहूलुहान पाँवों के नीचे
अब कहीं कोई जमीन नहीं
फिर भी घरमुहाँ उम्मीद के साथ
वे लौट रहे हैं
देह का नमक चाटते
साँसों का ईंधन जलाये
गाँव की ओर

जीवन बचाने की विवशता में
वे अनथक चल रहे हैं
भूख के उफनते समंदर का
नि:शब्द हाहाकार लिए
निर्मम समय की रेत पर

रेल की पटरियों के बीच
क्षत-विक्षत लहूलुहान
बिखर गई हैं उनकी साँसें
बिखरी रोटियों के बीच
वे तब भी चल रहे हैं
दुख का पहाड़ उठाये
चोट के गहरे घाव लिए
अनथक अविराम
वे नहीं पूछेंगे कभी
एकतरफा फैसले की
कोई कैफियत आपसे
नहीं करेंगे प्रश्न कोई
वे फिर-फिर देखेंगे
उम्मीद भरी नजरों से आपकी ओर
अंधेरे घर में प्राण की बाती जलाकर
पीट लेंगे खाली थाली और
बुझा लेंगे ओस चाटकर अपनी प्यास
वे 'कोरोना' से नहीं मरेंगे जहाँपनाह!
वे मरेंगे भूख से
और अगर बच गए
तो फिर ढ़ोयेंगे आपकी पालकी

चाँद बेदाग है

अलसुबह द्वार खोलती
धक से रह जाती हूँ
किवाड़ पर रात भर दस्तक देते
लहूलुहान पंजों के निशान
चौखट पर औंधी गिरी
अनंत पुकार करती
अजान के पहर छूटी
एक कातर सांस
खून कीचड़ से सनी उसकी पीठ
पीठ पर खुदा एक कुआँ
कुएँ में बैठा विकराल अजगर
अजगर की आँखों में
बर्फ सी खामोशी
मैं स्तब्ध हूँ
भयभीत भी
भोर के हिंसक उजास में
यह कैसी आध्यात्मिक शांति है
जो मेरे भीतर अजगर की तरह रेंगती
मुझे निष्प्राण करती जा रही है
यह कैसा निर्विकार समय है
कितना तटस्थ... कितना निरपेक्ष
ऐसे समय के अधीन
क्यों होते हैं हम?
खामोश अनुगूँजों से भरा
एक नि:शब्द आर्त्तनाद
मुझे मथ रहा है
मैं बेचैन हूँ
मेरी आत्मा पर
लहू के असंख्य छींटे हैं
मैं विह्वल नजरों से देख रही हूँ
समय की अजगरी नींद के सिरहाने
उम्मीद का एक दिया जलाये
मेरी कविता तंबुओं में
रतजगा कर रही है
उसकी पलकों पर
उतरा चाँद बेदाग है।

सूत्रधार

पता है मुझे
बहुत व्यस्त हो इन दिनों
किसी व्यूह रचना में लगे हो शायद
दाँव के पासे
खड़खड़ा रहे हैं तुम्हारी मुट्ठियों में
मुद्दा कोई भी हो
बस उछाल देना है उसे
रोटी के टुकड़े की तरह
पागल कुत्ते सा
लोग झपटेंगे उधर
नोचते खसोटते लहूलुहान करेंगे
अपने ही देश को
कुटिलता से मुस्कुराते
इत्मीनान से कहोगे तुम
मूर्खों की जमात कभी नहीं सीखेगी
व्यूह भेदन का पहला पाठ है
विचार-छेदन
गाँव से शहर
शहर से राजधानी तक
तुम्हारी फूँक से सुलगती चिंगारी
प्रज्जवलित आग बन जाएगी
धू-धू जलने लगेगा सारा देश
जाति धर्म संप्रदाय की ज्वाला में
उस समय प्रार्थना के कई गीत फूटेंगे
तुम्हारे होठों पर
सद्भाव की रैलियाँ निकाले
रोग शोक भूख गरीबी पर
सांत्वना के स्नेहिल स्पर्श जगाते
किसी देव पुरुष की भूमिका में
दिखोगे तुम
अदृश्य के पर्दे में उस समय भी
तुम्हारी व्यूह रचना का क्रम जारी रहेगा
लोकतंत्र की मूक बधिर प्रजा
पंक्तियों में हाथ बाँधे सर झुकाये
खड़ी होगी सियासत के मुख्य द्वार पर
और नेपथ्य में सूत्रधार बने तुम
समाधिस्थ मुद्रा में किसी
दूसरे चक्रव्यूह की रचना करते
मौन रहोगे।

परिचयः बिहार प्रांत के पुर्णिया जिला के एक गाँव जलालगढ़ में जन्म।

शिक्षाः एम.ए., पीएच.डी.

रचनात्मक उपलब्धियाँः ९० के दशक से विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं– हंस, पाखी, वागर्थ, वसुधा, दोआबा, निकट समकालीन भारतीय साहित्य, आलोचना, वर्तमान साहित्य, परिकथा, नई धारा, अक्षरा, अभिधा, पुरुष, आवर्त, जनमत, दस्तावेज, युद्धरत आम आदमी, प्रगतिशील आकल्प, जनपथ, पाण्डुलिपि, संप्रति पथ, चक्रवाक, अभिनव कदम, संवेद, फारवर्ड प्रेस, आधारशिला, छपते–छपते, वर्तमान संदर्भ, सबलोग, शीतल वाणी, बेला, आधी जमीन आदि में प्रकाशित रचनाओं की संख्या ३०० से अधिक। १० पुस्तकें प्रकाशित।

कविता संग्रहः

१. ऋतुवृक्षः समीक्षा प्रकाशन मुजफ्फरपुर (१९९८)

२. लेकिन असंभव नहीं: समीक्षा प्रकाशन मुजफ्फरपुर (२००२)

३. रेजाणी पानी: प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली (२०१४)

कहानी संग्रहः

१. कोई तीसरा: अयन प्रकाशन, दिल्ली (१९९८)

२. कस्तूरीगंध तथा अन्य कहानियाँ: किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली (२००९/२०१५ दो संस्करण)

३. सुलगती ईंटों का धुआँ: किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली (२०१७)

आलोचनाः

१. धर्मवीर भारती की काव्य चेतना– समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (२००६)

२. रचना की मनोभूमि– अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (२०१८)

३. पाठ का पाथेय– अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (२०१८)

४. हिंदी कविता और नक्सलवाद– प्रकाशनाधीन

संकलन एवं संपादन

१. सामु–९२ साक्षरता गीतों का संकलन, बिहार शिक्षा परियोजना द्वारा प्रकाशित

२. साक्षरता पत्रिका– 'इजोरिया' (बिहार शिक्षा परियोजना) में सहयोग १९९२ से १९९५

३. साहित्यिक पत्रिका– 'नई आकृति' तीन अंकों में सह संपादक १९९४ से १९९७

४. साहित्यिक पत्रिका– 'आवर्त' में १५ अंकों में सह संपादक १९९९–२००२

५. प्रतिरोध के स्वर– काव्य पुस्तिका समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (२००८)

६. जन मन के कवि केदार– जन्मशती पर प्रकाशित पुस्तिका, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (२०११)

७. पुश्तैनीगंध (कविता संकलन)– अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (२०१४)

संपर्कः चतुर्भुज ठाकुर मार्ग, गन्नीपुर, पो. रमना, मुजफ्फरपुर, बिहार
पिन–842002, **मो. 9431281949**
ईमेलः poonamkalam@gmail.com

डॉ. कृष्ण कुमार

पंचम प्रलय

एक अर्णव से हुई थी
सृष्टि रचना
औ रचयिता आयु
आधी हो चुकी है
उम्र इस ब्रह्मांड की भी
आज इतनी ही हुई है।
और लय इस सृष्टि की
उससे मिलाने के लिए
है नियंता ने रची
चार प्रलयों की विधाएं।
कल्प के उपरांत जो है
बार–बार प्रलय आते
ग्रंथ अपने कह रहे वे
'नैमित्तिक' है कहाते।
भू भुव: स्व: का विलय
हर बार तो इसमें हुआ
और फिर कल्पांत पर
सृष्टि का सृजन हुआ।
'नित्य प्रलय' वह कि जिसमें
है निरंतर विलय होता
और भू के प्राणियों का
आदि होता, अंत होता।
मोक्ष पाना योनि मानव का
परम मंतव्य औ गंतव्य है
औ इसी को हैं बताते ग्रंथ सारे
और कहते 'आत्यन्तिक प्रलय' है।
अभिकल्पना करते समय ब्रह्मांड की
और उसने हेतु इसके सुप्रबंधन
साथ लाए देव औ 'मनु' भी अनेकों
औ बनाए चतुर्दस सुंदर भवन।
आयु सर्जक पूर्ण होने पर जगत में
'मरुत सब उंचास' द्रुत गति से चलेंगे
सम्पूर्ण यह ब्रह्मांड तब मिट जाएगा
श्री हरी तब 'महा प्रलय' लेकर बढ़ेंगे
आजकल जो हो रहा है विश्व में
लोग मरते जा रहे हैं तेज गति से
थी हुई शुरुआत इसकी 'चीन' में
पूर्णत: स्वतंत्र है, देश, धर्म औ जाति से।
विज्ञजन की शोध कहती
परिमंडलीय विषाणु ही सब कर रहा
शक्तिशाली प्रलयंकारी उग्र होकर
वियंग सा डमरू बजाता जा रहा।
संक्रमण को रोकने के वास्ते
विश्व वैज्ञानिक लगे हैं रात दिन
द्रव्य–टीका अब तलक है मिल न पाया
लग रहा है सोच पर छाया तुहिन।
विश्व मानव स्वार्थ से संतप्त है
प्रकृति भी अस्मर्थ होती जा रही है
युद्ध बढ़ता जा रहा है तेज गति से
हो पराजित विश्व मानवता खड़ी है।
सोच लें कुछ भी, मगर है लग रहा
यह प्रलय रूप नूतन है खड़ा
हो न पाया आज तक जिसका निरूपण
विश्व मानव हार, है बेबस पड़ा।
है विचारों में निरंतर आ रहा
'प्रलय' पंचम का हुआ आगाज है
'नित्य प्रलय' का नया यह रूप है
छितिज के उस पर की आवाज है।

कोरोना से हार नहीं मानेंगे

हम अजेय
भारतवासी हैं
हार नहीं मानी है
हार नहीं मानेंगे
हार सिकन्दर ने मानी
मुगलों को मार भगाया है
अंग्रेजों ने पांव पसारे
कुछ अपने साथ हुए उनके
धीरे–धीरे वे फैल गए
पंजाब न उनके हाथ लगा
जब तक वह शेर रहा जीवित।
गंधी की नीति अहिंसा का
झुककर वे लोहा मान गए
जाते–जाते दो टुकड़े कर
नीव कलह की डाल गए।
विश्व महामारी बन कर
संक्रमण जो सब पर छाया है
चलकर वुहान से कोरोना
भारत में भी घुस आया है।
हम डट कर जूझ रहे इससे
''लॉकडाउन'' को हैं मान रहे
'सामाजिक दूरी' महामंत्र का
सब मिल कर हैं गुणगान कर रहे।
अदृश्य कोरोना हारेगा
मुगलों सा बाहर भागेगा
विजय पताका फहराएगी
यह भारत है
हार न मानेगा।

संपर्क: 21, बिडफॉर्ड ड्राइव, सेली ओक, बर्मिंघम, बी 29 6 क्यू जी, (यू.के.) **मो. +44 7557505170**

ओम श्रीवास्तव

कोरोना शापित मजदूर

मैं एक मजदूर हूँ
घर लौट जाने को मजबूर हूँ
लाचार, बेबस, गरीब
शहरों और कस्बों से निकला
दैनिक मजदूर हूँ।

रोजी–रोटी के लिए
बड़े शहरों को आया था कभी
आज जान बचाने के लिए
लौट जाने के लिए मजबूर हूँ
जीवन यापन के लिए
हमेशा संघर्ष करता
दैनिक मजदूर हूँ।

पैदल, साइकिल, ट्रक, टेंपू से
या हर संभव साधनों से
कोसों दूर घर के लिए भागता
भूखे, प्यासे नहीं मिलते अक्सर
खाने को निवाले
फिर भी एक आस लिए
चलता चला जाता हूँ
कभी होता बेहोश
कभी मरता भूख से
कभी आता ट्रकों या कारों के नीचे
कभी कट जाता ट्रेन ट्रैकों पर
फिर भी अपने ग्रामों की ओर
आगे बढ़ता जाता हूँ
क्योंकि मजबूर हूँ
बड़े शहरों में छोटे–छोटे
काम करने वाला
दैनिक मजदूर हूँ।

बड़ी–बड़ी घोषणाएं
बंटते राशन
भीख की तरह
मिलते खाने के दाने
बिना काम
बिना पैसे
बिना रोटी
खाली बैठा मजबूर हूँ।
इक्कीसवीं सदी में भी
गरीबी, भुखमरी से जूझता
शहरों को शहर बनाता
दैनिक मजदूर हूँ।

जिन ग्रामों से
कभी भागकर आया था
आज वहीं जाने को बेचैन हूँ
मैं अपने घर, ग्रामों की झुरमुटों में
लौटने को शौकीन हूँ
सालों की गृहस्थी
सिमट गई झोले में
उस गृहस्थी को सिर पर रख
घर की ओर भागता मजबूर हूँ
दैनिक मजदूर हूँ।

सब देखते हैं कहानी मेरी
भिन्न–भिन्न नजरों से
कोई देखता है दर्द
कोई देखता है फैलती महामारी
मैं सहानुभूतियों को लेने
गालियों को खाने
जिंदगी को दांव पर लगाकर
चमकते बड़े शहरों को छोड़कर
अपनों के पहुँचने को
मजबूर हूँ
दैनिक मजदूर हूँ।

समाज विकास, उन्नति
और उन्नत भारत
सभ्यता एवं मानवता
सब पर प्रश्न चिह्न लगाता
सालों बाद भी
गरीबी में जीने–मरने को
मजबूर हूँ
दैनिक मजदूर हूँ।

भारत की न घटती गरीबी
और असमानता की भयावह
जीती–जागती तस्वीर हूँ
एक बार फिर
जीवन की आस में
घर की ओर निकला
मजबूर हूँ
दैनिक मजदूर हूँ।

संपर्क: बर्मिंघम, मो. +44 7459343217

डॉ. कृष्ण कन्हैया

संसर्ग

अच्छे–अच्छों का साथ
बुरे–कुकर्मों का घात
दोनो संसर्ग से ही
निष्कर्ष लाता है–
कीट पुष्प के साथ
देवत्व को प्राप्त करता है
और
घुन गेहूं के संग
चक्की में पिसा जाता है।

सत्ता

सत्ता
सच के सिंहासन से
उतर आई है
गुंडे व्यापारियों की मंडी
तक चल आई है
आम आदमी की अपेक्षाएं
खा गयी है
इसे परिवर्तन का
नाम देना उचित होगा
या
राजनीतिक नपुंसकता का ?

घर्षण

अपने चरित्र को
ऐसा बनाओ
कि
हर अच्छे–बुरे
कर्मों में
तुम्हारा आचरण
घर्षण सा
व्यवहार दे।
अच्छाईयाँ
ताकत बढ़ाये
तो
जोर–आजमाईश का
अनुपात बढ़े
और
बुराईयों का
जोड़ चले
तो संघर्ष भी
फूले–फले।

व्यवहारिकता

व्यवहारिकता
मानवीय शब्दकोष में लिखा
एक ऐसा शब्द हैं
जिसका जिक्र
समाज के मुखपृष्ठ के साथ–साथ
किताब के हर पन्नों पर हो
तो बेहतर है
क्योंकि
शब्द की सार्थकता का मान
उसके दैनिक जीवन में
नियमित इस्तेमाल से है
और व्यावहारिकता का सही अर्थ
उस शब्द के रोजाना व्यवहार से है।

तिनका

तिनका
अस्तित्व–विहीन घास नहीं होता
किसी पेड़ से त्यक्त होने का
परिहास नहीं होता।
कोई मामूली शब्द नहीं है
अपने वजूद पर स्तब्ध नहीं है
क्यूँकि
डूबते की आशा बने
जब पानी में बह जाये
लोगों की जिज्ञासा बने
जब दाढ़ी में रह आये
आँखों में पड़ जाये
तो नीर निकल आये
आँधियों में उड़ जाये
तो आसमान छू कर आये
चिड़ियाँ इसे जोड़ कर
अपना घोसला बनाये
आयें हम इसे
उपहास की वस्तु ना बनायें!
इसके गुणवत्ता को
अपने अस्तित्व में समायें!!

संपर्क:182 ओखम रोड, टिविडेल ओल्ड बरी, वेस्ट मिडलैंड्स, इंग्लैंड– B691PY
मो. +44 7803598165 Email: kanhaiyakrishna@hotmail.com

मनीषा झा

कर्फ्यू और रास्ता

भोर गुंजरित था
पक्षियों के कलरव से
नित्य की तरह
जारी थी चिड़ियों की आवाजाही
डाली से फुनगी तक
फुनगी से डाली तक
आम से उड़कर अमरूद तक
अमरूद से नीम तक
नीम से कटहल तक
कटहल से उड़कर शीशम तक
पेड़ बदलने के साथ बदल जाती
पंजों की गति
चहकन के स्वर भी
जारी था पौधों का नृत्य
टहनी की थिरकन
या हवा की ताल पर
मार्च के अन्य दिनों की तरह
निकला था बाइस तारीख
भोर की हवा में शीतलता थी
पार्क की वीथियों में
नहीं थी किसी पदचाप की ध्वनि
कोई नहीं निकला था
मार्निंग वॉक पर
चिपके थे अपने–अपने
मालिकों के साथ
डार्लिंग टोनी बिस्किट और चॉकलेट
सभी पालतू प्रजाति थे बंद
घर– आँगन में
समझ नहीं पा रहे थे
सड़क के लावारिस कुत्ते
पार्क के प्रवेश पर
क्यों पड़ा है ताला आज
बढ़ती जा रही थी
चिड़ियों की बेचैनी
उनकी फुदकन में
कि नहीं मिलेगा
कोई दाना कोई खाना आज
उन्हें क्या पता
पड़ा है जनता–कर्फ्यू आज
कि मनुष्य की ताक में
जाग्रत है कोरोना
फैल रही महामारी
कि विषाणु की ताकत से
सहमी है मनुष्य की पृथ्वी
हवा को पता है सब
कि फैलने लगता है जब जहर
तो काट लेता है
मनुष्य खुद को वहाँ से
जीने का सरल उपाय है यही
सजग रहो सक्रिय रहो
विष को परास्त करने का
सरल राह है यही ।

सूचना

सूर्य का तापमान कम हो गया है
पाँच गुना
नासा ने दी है सूचना
धरती पर उड़ा है धुआँ इतना
कि वायुमंडल आच्छादित है घना
ओजोन की परत पड़ रही है पतली
छेद फैल रहा है तना
इधर मनुष्य के भीतर का सूर्य
हुआ है कम ताकतवर
कम प्रकाशमान
पहले की बनिस्बत
दूसरों का हक छीनकर
मारकर काटकर
तानकर हिंसा का चंदोवा
बढ़ाते हो तुम कलुष का संचय
हो रहा भीतर ही भीतर
अंदर के सूरज का क्षय
कम पानी कम ऊर्जा
और बहुत प्रदूषित हवा
क्या यही विरासत दे पाएंगे
हम आगत पीढ़ी को
वो घूँट–घूँट आँसू के पीकर
घुट घुट कर जीएगी और कहेगी
काश! कपट पैदा नहीं हुआ होता
कलुष कुछ कम रहा होता।

संपर्क: अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर बंग विश्वविद्यालय
राजा राम मोहनपुर, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग, **मो. 9434462850**

कुंदन सिद्धार्थ

मेरे गाँव!

वे हरे–भरे खेत
पेड़ों के झुरमुटों में छिपी हुई
वे पगडंडियाँ

वह नदी
जिसकी बाँक पर बैठकर
न जाने कितने भावों ने
कविताओं का रूप लिया

वह श्मशान घाट
जहाँ मेरे पुरखों सहित
ढेरों प्यारे लोग
सोये पड़े हैं गाँव के

वे टाट–फूस के
छोटे–छोटे घरौंद
जो मेरे पक्के मकान से
ज्यादा सुंदर आरामगाह थे मेरे लिए

वे तमाम सारे दोस्त
जो गर्मी की तपती दुपहरी में
बाट जोहते थे मेरी
आम्र–मंजरियों से महकते बगीचे में

मेरे गाँव!
तुम कितना पीछे छूट गये
और मैं कितना आगे निकल गया
तुम्हें छोड़कर

लौटना चाहता हूँ
फिर से तुम्हारी गोद में
अलबत्ता तुम्हारी गोद में लौटना
माँ की गोद में
लौटने की तरह है

धूल–मिट्टी में
होना चाहता हूँ लोटपोट
बना देना चाहता हूँ
खेत की मेड़ों पर
अपने पैरों के पुख्ता निशान

फिर से
बुलाना चाहता हूँ सुग्गों को
अपने खेत के
धान की पकी बालियों को
टूँग–टूँगकर खाने के लिए

पुकार रहे मुझे
खेत
पगडंडियाँ
नदी
श्मशान घाट
घरौंदे
आम के बगीचे
दोस्त
कीचड़ सने रास्ते
और अपने तमाम सारे प्रियजन
जिनके चेहरों पर
झुर्रियों ने डेरा डालना
शुरू कर दिया है अब

सच कहूँ तो
मैं ही पीछे छूट गया
तुम आगे निकल गये बहुत दूर
हाँ, मेरे गाँव!

आषाढ़–मिलन

एक बार
आषाढ़ के महीने में
मिले थे हम

बादल थे
हवा थी
धूप–छाँह का खेल था
अब–तब पड़ रही फुहारें थीं
और तुम थे

फिर आषाढ़ आया है
बादल हैं
हवा है
धूप–छाँह का खेल है
अब–तब पड़ रही फुहारें हैं
और तुम भी हो

आषाढ़
तब क्या हमारे मिलने से आता है
जब मैंने कहा, तुम हँस पड़े

देखना
आज देर रात तक
बरसेगा पानी।

सुखी होने के गुर

अभी–अभी
थोड़ी देर पहले
सड़क पर पैदल चलते हुए
अचानक मैंने गौर किया
मुस्करा रहा हूँ

जबकि ऐसी कोई बात
मन में नहीं चल रही थी उन पलों में
जिससे खुश होकर मुस्कराया जा सके
न ऑफिस के किसी सहकर्मी का किया हुआ
कोई बेतुका मजाक याद आया था तब
न सुबह किचेन में पत्नी के साथ
सब्जी काटने के सिलसिले में
उसकी कोई चुहल छन्न से
कौंध गयी थी दिमाग में
न बेटियों की मनुहार भरी
ऐसी कोई सिफारिश
याद आ गयी थी एकबारगी
जिसे पूरी किये जाने के अक्सर खिलाफ
खड़ा पाती हैं वे मुझे

यही तो छोटी सी अपनी दुनिया है
जिसके बीच जीवन का एक बड़ा हिस्सा
धीरे–धीरे कैसे रीत जाता है
पता नहीं चलता

फिर मेरे अचानक उस घड़ी
यूँ बेसबब मुस्कराने का सबब क्या था
देर तक ढूँढ़ने से भी नहीं मिला
अलबत्ता ढूँढ़ने की
कोशिशें करता रहा लगातार
मैं खुश हुआ कि
बेवजह मुस्कराया जा सकता है तब तो
मैं खुश हुआ कि
बेवजह सुखी हुआ जा सकता है इसी तरह

'सुख में सब मुस्कराते हैं
दुख में जो मुस्कराये, वह बिरला'
लोग–बाग बोलचाल में अक्सर दुहराते हैं
मैं ठहरा एक सीधा, सामान्य आदमी
जो बेवजह की अपनी मुस्कराहट को याद कर
सुखी होने के गुर समझ रहा हूँ

यह मुस्कराहट
मुझे इसलिए याद रहेगी हमेशा
जो पहली बार मैंने एक मुक्ति जानी
सुखी होकर मुस्कराने के लिए
किसी जरूरी वजह की खोज से मुक्ति
मुक्ति मन की उस बेतुकी जिद से
कि 'खुश होने के लिए
कुछ तो बहाना होना ही चाहिए यार'

जरूरी नहीं कोई बहाना
पहली बार जाना
यूँ ही बस मुस्कराकर
आज पहली बार।

संपर्कः आई सी 16, सैनिक सोसाइटी,
शक्तिनगर, जबलपुर, मध्यप्रदेश 482001
मो. 7024218568, 9009309363

मीना सिंह

बेघर

औरत का कोई घर नहीं होता
बस जरूरत भर
कुछ समय के लिए
रखते हैं लोग
अपने पास
फिर भी ताउम्र औरत
नैहर ससुरा की सीटी बजाती
करती रहती है शंटिंग...
उसकी जिंदगी की
गाड़ी में
सवार होते हैं। तमाम रिश्ते
नाश्ते पानी का 'टिफिन'
जरूरी गैर जरूरी। असबाब
सम्भाले
प्राकृतिक और नैसर्गिक
घटनाओं दुर्घटनाओं के
बीच
बनी रहती है मजबूत 'ट्रैक'
पुल
संबंधों की धड़धड़ाती
आवाजाही के बीच
घिसती है। क्षरित होती है
इंजर–पिंजर
धीरे–धीरे लोग
एक–एक कतरा
संबंध के नाम झाड़ते–पोछते
पूरी की पूरी एक औरत को
जिंदगी के जंग लगे 'यार्ड' में
झटकार देते हैं
औरत का कोई घर नहीं होता
वह जिंदगी के यार्ड में
जंग लगे लोहे और लकड़ी के फट्टे–सी
रखी जाती है
कभी किसी 'कट पैच' को
सँवारने जोड़ने में
लगेगी जरूरत उसकी
लोग सोचते है
माता–पिता, पति–पुत्र
सम्भाल कर रखते
टुकड़ा–टुकड़ा बची देह
मन प्राण को
घर के किसी कोने में
रोटी पानी कपड़ा लत्ता देते
कभी कभार दवा और सम्भार
के साथ
'घर की इज्जत घर में भली'
एक बेघर पाखी की तरह/ अनंत तक निरंतर
उड़ने की चाह से भरी/ औरत!
स्वयं को संवारती– धोती
बेघर न होने के/ ख्याल में खोयी
स्वागत की मुद्रा में/ खड़ी
अनंत से अनंत काल गति में
जर्जर विस्फारित
पंखहीन होती पतंगा–सी
औरत! औरत! औरत!

संपर्कः डी–504, फ्रीडम पार्क, लाइफ (बी.पी.टी), सेक्टर–57,
गुरुग्राम–122003 हरियाणा,**मो. 9821479289**

पूनम शुक्ला

जिंदगी और कैमरा

जब से चल गया है रिवाज
तस्वीरें खींचने और खिंचवाने का
गले में पहनाए हुए हार
दुबारा वापस पहुँच जाते हैं हाथों में
और फिर तस्वीर खिंचवाने के लिए
पहनाए जाते हैं दुबारा।

दुल्हन दूल्हे के गले में डालते हुए जयमाल
दूल्हे की आँखों के बजाय देखती है
तस्वीर खींचने वाले की आँखों में

किसी को देते या लेते हुए कुछ उपहार
खड़े हो जाते हैं दोनों मूर्तिवत
और बदल जाते हैं चेहरों के भाव

बैठे हों गर कुछ लोग मायूस
बस देखते ही कैमरे की आँख
गायब हो जाती हैं
उनके चेहरों की उदासियाँ व झुर्रियाँ
झट से उभर आती है ज्वार सी
भीतर खौलते समुंदर से नकली हँसी

पता नहीं क्यों कहते हैं लोग
जिंदगी कैमरे की तरह है
पर कैमरे के सामने तो हो सकता है बस अभिनय
जो छुपाता है सत्य की कटुता
उदासी भरे चेहरों की कुरूपता
उस पर खचित झुर्रियों की रेखाएँ
जिनमें सिमटी बैठी हैं बहनें तनाव और चिंता
समय ठहरता है कैमरे के संग
पर जिंदगी संग कहाँ रहा कभी मित्रवत
वह तो भागा तेज बहुत तेज
लेते हुए हरेक पल का हिसाब ।

यथार्थ की स्वीकृति के बाद

(काम वाली बाई मीना के लिए)

तरल और पारदर्शी
हो जाती हैं उसकी आँखें कभी–कभी
आईना सम्मुख आ दिखाने लगता है उसे
उसका अपना चेहरा
यथार्थ स्वीकार भी तो किया उसने
पर आईना है कि चटक कर टूटता ही नहीं

दौड़ती थी वह चमकती बिजली की माफिक
खूब छलकती थी मंदाकिनी सी
फिर ब्याह हुआ, एक पुरुष की गिरफ्त में आई
स्त्री थी स्त्री को ही जनती रही

पहली बेटी में सबके स्वर कुछ यूँ फूटे– लक्ष्मी घर आई है
दूसरी में सबके माथे पर शिकन थी– अरे फिर से बेटी!
तीसरी में घर की दीवारें गर्म हुई, आग उगलीं
चौथी में तपती आग में भस्म हुई उसकी स्वयं की ऊष्मा भी
पाँचवी में काँपते पाँव दुबारा वहीं पहुँचे
जहाँ उसने स्वयं जन्म लिया था
पर छठीं में नइहर का आँगन भी भूल गया उसकी किलकारी

अब वह अपना स्थाई पता भूल गई है
अब वह शहर में घर–घर बर्तन माँजती है
साथ में हैं बेटियाँ अब बस तीन ही
बाकी भूख और अभाव के बीच समा गईं काल के ग्रास में

दौड़ती तो अब भी वह चमकती बिजली की ही माफिक
पर आईना है कि चटक कर टूटता ही नहीं ।

संपर्क : फ्लैट नं.– ए 201, द्वितीय तल, रुतु प्लैटिना काम्प्लैक्स (ईवा माल के बगल में), मान्जलपुर, वड़ोदरा, गुजरात–390011,
मो. 9818423425 ईमेल: poonamashukla60@gmail.com

मेरे लिए कविता एक लाठी की तरह है

सदानंद शाही

भाषा में होना मनुष्य होना है। भाषा मनुष्य होने की पहचान है और कविता भाषा में ही संभव होती है। कविता क्या है ? कविता सबसे पहले भाषा की विशेष भंगिमा है। इसलिए कविता में होना सामान्यत: भाषा और विशेष रूप से अपने भीतर की मनुष्यता का उत्खनन है। भाषा की यह भंगिमा एक ओर स्मृतियों के सघन बीहड़ों की यात्रा कराती है तो दूसरी ओर कल्पना की वैकल्पिक दुनिया रचती है। स्मृतियों के बीहड़ में यात्रा करते हुए हम प्रकृति और जीवन के सघन वन में विचरते हुए राग–विराग, सौन्दर्य–उल्लास के अन्यान्य अनुभवों को पुनर्नवा करते रहते हैं। कविता में संभव होने वाली कल्पना की वैकल्पिक दुनिया यथार्थ जीवन की सीमाओं का रेखांकन करती है। इसके साथ–साथ वह हमारे सामने बेहतर दुनिया का नक्शा भी गढ़ती है– जिसे धूमिल ने कहा– जो है उससे बेहतर चाहिए। कविता इस वैकल्पिक दुनिया को गढ़ने का हौसला देती है। ऐसी वैकल्पिक दुनिया जिसका सपना बुद्ध, गोरख, कबीर, रैदास, नानक और गांधी जैसे संतों ने देखा था। मेरी कविता प्राय: इन्हीं दो बिंदुओं के इर्द–गिर्द आकार लेती है।

मेरे लिए कविता एक लाठी की तरह है। ऐसी लाठी जो टिक कर खड़े होने का सहारा भी दे और जीवन की रपटीली राह पर चलते समय हमसफर की तरह साथ रहे। मुझे कभी–कभी कविता एक ऐसे कंधे की तरह मिलती है, जिस पर सिर टिका कर खूब रोया जा सके। हमारी दुनिया में ऐसी जगहें बहुत कम हैं, जहाँ खुल कर रोया जा सके। कविता यह जगह मुहैया कराती है। कविता हमें हमारी विफलताओं, कमजोरियों और पराजयों के बीच जीवन के सौंदर्य का प्रकाशन करती है। इतिहास और कविता दोनों स्मृतिगर्भी होते हैं। दोनों में फर्क यह है कि इतिहास विजय गाथाओं को दर्ज करता है जबकि कविताएं पराजयों को दर्ज करती हैं। 'सत्यमेव जयते' हम पढ़ते–सुनते रहते हैं, लेकिन जीवन में सत्य पराजित भी होता है। कविता ऐसे ही पराजित सत्य की पीठ थपथपाती, ढाढ़स बढ़ाती जाती है।

बागडोगरा

चाय बागान से उठती हुई
खुशबू आ रही है
हवाई अड्डे तक
सड़क पर
यहाँ तक कि
बागडोगरा नाम में
समाई हुई है खुशबू
किसकी खुशबू है यह ?

क्या किसी नाम से खुशबू आती है
नाम तो सिर्फ एक ध्वनि है
यानी आकाश
और खुशबू
वह तो धरती की नियामत है
जब भी याद आता है तुम्हारा नाम
खुशबू से भर उठता हूँ
धरती आकाश मिल जाते हैं

वे मित्र थे

वे मित्र थे
इस बात का पता
उनसे कहीं ज्यादा
उस शहर को होता
जिसमें उनकी मित्रता
परवान चढ़ी थी

इतने सालों बाद भी
जब वे साथ–साथ दिख जाते
गर्मी की दहला देने वाली
दुपहरिया में भी
शहर कहता
तुम्हें साथ–साथ देखकर
बहुत अच्छा लग रहा है
तुम लोगों की मित्रता शानदार है
आने वाली पीढ़ियाँ कसमें खाएंगी
तुम लोगों की दोस्ती की...

आश्चर्य यह कि
उन्हें भी यह बात मालूम थी
कि वे मित्र हैं
लोगों से अपनी मैत्री की
कहानियाँ सुन–सुनकर
उन्हें पूरा यकीन हो चला था कि
वे मित्र ही हैं

चिलचिलाती गर्मी में
सहपाठिनियों के मुहल्ले की
सामूहिक यात्राएं
सिनेमा हाल के किस्से
रेलवे लाइन के किनारे
सिगरेट की कश से उठते
धुएं के दृश्य
रास्ते की धूल खाती दूकानों के
गरम समोसे की भांप
धनिया और हरी मिर्च की चटकी की
चटक में
मैत्री का स्वाद हरा होता रहता

वह इकलौता दर्जी
जो इनके लंगोट सिला करता
जब तब मिल जाता
और इस बात की गवाही देकर
कि तुम लंगोटिया यार हो
उनके यकीन को
और पोख्ता कर देता

मित्रताएँ बहुतेरी होती हैं
पर ऐसी कम होती हैं
जिन्हें किंवदंती का दर्जा हासिल हो
यह ऐसी ही नसीबों वाली मैत्री थी
जो जितनी हकीकत थी
उससे कई गुना जियादा
किंवदंती थी

जिस शहर में
यह मैत्री परवान चढ़ी थी
वह गर्मियों में
अमलतास के फूलों से लद जाता
गुलमोहर भी खिलते
पलाश की टह–टह लाली भी
दिख जाती जहाँ–तहाँ

कुछ दिन पलाश के नीचे
खड़े रहे वे
बुनते रहे सपने
जैसे कि
उन दिनों जाड़े की धूप में
रेलवे दफ्तर में
काम करने वाली औरतें
बुनती रहती थीं स्वेटर

समय के साथ
वे निकल गए इधर–उधर
अपने–अपने सपनों के
कल्पवृक्ष की तलाश में

कल्पवृक्ष तो खैर क्या मिलता
कोई गुड़हल
कोई कनेर
कोई कुश
कोई कांटे पर अटक गया

सब हो लिए अपनी अपनी राह
कोई ईर घाट पहुँचा कोई मीर घाट
सबने तान लिए अपने अपने तंबू
तंबू फैलता गया
तंबू के फैलने के साथ
उनकी नाकें लंबी होती गई

इसी तरह चलती रही
जीवन की चक्की
और उनकी मैत्री भी
वे अपने–अपने तंबुओं
और बढ़ती हुई नाकों के साथ
रहते रहे, मिलते रहे
उनकी नाकें भी मिलती रहीं
कभी–कभी चुभती रहीं
बिलबिलाती रहीं

जब नाकें ज्यादा चुभनें लगती
वे अतीत राग गाने लगते

अतीत एक हकीम की तरह आता
और अपनी सिल पर
बढ़ी हुई और चुभती हुई
नाकों को घिस देता

और नाकों को अतीत की
रंगीन कोठरी में रख आता
नाकें खिलखिला उठती

मैत्री की फटी चादर
अतीत में जाकर फिर से नई हो जाती
वे कमरे की सिटकनी इस तरह लगा देते
कि वर्तमान किसी भी तरह घुस न सके
वे हंसते खिलखिलाते बोलते बतियाते...

लेकिन वर्तमान को कब तक
रोका जा सकता था
वह लगातार दरवाजा खटखटाता
फोन की घंटी बजाता
कभी झिर्रियों से झाँकता
आ खड़ा होता

वर्तमान की आहट पाते ही
अतीत का हकीम
अपना थैला लिए सरक लेता

और वे भी अपने-अपने
तंबुओं में लौट आते

उनकी मैत्री एक तंबू जैसी थी
जो अतीत के खंभों पर टिकी हुई
किंवदंतियों में बदल गई थी
और आज भी
कसमें खाने के काम आती।

अनुरोध

मेरे मन पंक्षी ने
तुम्हारे बालों के गुंजलक में
घोंसला कर लिया है
देखना
इसे उड़ना नहीं आता।

एक सफेद बाल

एक सफेद बाल
छुपने या छुपाये जाने से
इनकार करता है
रंगने और बांधने की
तमाम कोशिशों को धता बताते हुए
निकल आता है
और चांदी की तरह चमक उठता है
बस एक सफेद बाल
घोषित करता हुआ कि
हम धूप में नहीं सफेद हुए हैं
हम अनुभव में पगे हैं
युद्ध के नहीं
शांति के सगे हैं....।

हाइफन

ये हाइफन क्या होता है ?
दो शब्दों को जोड़ने वाला चिह्न
हाइफन कहाँ-कहाँ लगता है
जहाँ भी दो शब्दों को जोड़ना हो
वहाँ-वहाँ लगता है

मसलन ?
भाई-भाई के बीच
भाई-बहन के बीच
प्रेमी-प्रेमिका के बीच
एक बात कहूँ
(हाइफन पर बात कराते कराते
अचानक वह बोल पड़ी-)
मेरा मन होता है
कि हर जगह हाइफन लगा दूँ
और
सब कुछ को सबकुछ से जोड़ दूँ... ?

नए के आरंभ में

उसके सपने पूरे नहीं हो सके थे
अधूरे रह गए थे मिशन
हसरतें
बस हसरतें बनकर रह गई थीं

बालों में उतर आई थी सफेदी
गजर की तरह बजी जा रही थी

इन सबसे बेपरवाह
आज भी वह जुटी है
किसी नए के आरंभ में

हुक्मदाता का हुक्म है

जो फेसबुक पर नहीं है
वे हैं ही नहीं

जिनका नहीं है ट्वीटर पर एकाउंट
जिनका नहीं है इंस्ट्राग्राम पर खाता
जो ब्लाग नहीं लिखते हैं
यूट्यूब चैनल नहीं है जिनके पास
जो ईमेल इत्यादि का
इस्तेमाल नहीं करते
उनका होना प्रामाणिक नहीं है

वे किस्से में हो सकते हैं
कहानी में हो सकते हैं
हुआ करें

महज कविताओं में दर्ज होने से
उनका होना सिद्ध नहीं हो जाएगा
उन्हें लेनी ही होगी
किसी न किसी
सोशल मीडिया की नागरिकता
तभी वे गिनती में आएंगे
यही हुक्म हुआ है
हुक्मदाता का।

परिचयः सदानंद शाही का जन्म कुशीनगर जिले के छोटे से गाँव सिंगहा में ७ अगस्त १९५८ को हुआ। इन्होंने हाईस्कूल तक की पढ़ाई गाँव में तथा इंटरमीडिएट निकट के कस्बे रामकोला से की। उदित नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पठरौना से १९८१ में स्नातक और वहीं छात्रसंघ के अध्यक्ष रहे। पठरौना शहर और महाविद्यालय में केदारनाथ सिंह की अनुगूँज बनी और बची हुई थी। कविता लिखने की प्रेरणा इन्हीं अनुगूंजों से मिली। एम.ए और पीएच.डी. गोरखपुर विश्वविद्यालय से किया। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर। भोजपुरी अध्ययन केन्द्र के संस्थापक–समन्वयक रहे। प्रेमचंद साहित्य संस्थान के संस्थापक एवं निदेशक। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला के एसोसिएट (२००२), जर्मनी की डाड फेलोशिप के तहत साउथ एशिया इंस्टीट्यूट हाइडेलबर्ग, जर्मनी में विजिटिंग फेलो (२००३)। हम्बोल्ट, विश्वविद्यालय बर्लिन, जर्मनी, Ecole Partique des Haustokn Etudes, पेरिस, फ्रांस तथा इटली के तीनों विश्वविद्यालय में कबीर विषयक व्याख्या एवं काव्य पाठ। विश्व भोजपुरी सम्मेलन, मॉरीशस (२०००, २००९, २०१४) में शिरकत। न्यूयार्क अमेरिका में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन (२००७) में भारत सरकार के प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य। भोजपुरी एसोसिएशन, सिंगापुर के निमंत्रण पर सिंगापुर यात्रा (२०१७)। मॉरीशस के राष्ट्रपति द्वारा भोजपुरी सेवा के लिए 'विश्व भोजपुरी सम्मान' (२०१४) से सम्मानित। हिंदी और भोजपुरी की सेवा के लिए शब्दम सम्मान (२०१७)।

प्रकाशनः अपभ्रंश के धार्मिक मुक्तक और हिंदी संत काव्य (लोकभारती प्रकाशन, १९९१), हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर का हिंदी अनुवाद (लोकायत प्रकाशन, १९९८), असीम कुछ भी नहीं (कविता संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, १९९९), दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचंद (प्रेमचंद साहित्य संस्थान, २०००), स्वयंभू (साहित्य अकादमी, २००२), हरिऔध रचनावली (दस खण्डों में, वाणी प्रकाशन, २०१०), परम्परा और प्रतिरोध (हिंदी अकादमी, २०१०), सुख एक बासी चीज है (कविता संग्रह, प्रतिश्रुति प्रकाशन, २०१५) जनपदीय अध्ययन की भूमिका (संपादन, भोजपुरी अध्ययन केंद्र, बी.एच.यू. २०१७), माटी पानी (कविता संग्रह, लोकायत प्रकाशन, २०१८) मुक्तिबोध : आत्मा के शिल्पी (संपादन, लोकायत प्रकाशन, २०२०) तथा कर्मभूमि। बांग्ला और अंग्रेजी से हिंदी में कुछ अनुवाद प्रकाशित कबीर, रैदास, पलटूदास और प्रेमचंद पर किताबें प्रकाश्य साहित्यिक पत्रिका 'साखी' और 'कर्मभूमि' का संपादन। 'मातृभाषा की नागरिकता' (प्रकाश्य)।

संपर्कः साखी, एच 1/2, वी.डी.ए. फ्लैट, नरिया, बी.एच.यू., वाराणसी–221005,
मो. 9450091420, 9616393771, ईमेलः sadanandshahil@gmail.com

छूँछी

मिथिलेश्वर

सुबह होते ही परानपुर में कानों–कान यह खबर फैल गई कि दँतुली चल बसी। अभी कल तक तो वह ठीक थी। उस गली से गुजरते हुए परानपुर के लोगों ने उसे पूर्ववत् नुक्कड़ के पास बैठकर बच्चों के लिए 'सोनपापड़ी' बेचते देखा। फिर अचानक वह कैसे मर गई ? इस संबंध में उसके आस–पास के लोगों का कहना है कि शाम तक वह ठीक थी। बगल के घर से प्राप्त खिचड़ी भी उसने खाई, लेकिन रात में सोई तो सोती ही रह गई। सुबह उसे जगाने वालों ने देखा, वह मर चुकी है।

दँतुली का पूरा नाम क्या था, परानपुर में किसी को ज्ञात नहीं। उसके मुँह के दो दाँत आगे की ओर निकले थे, शायद इसीलिए दँतुली बन गई थी। सब इसी नाम से उसे जानते। हालाँकि उससे मिलने पर कोई उसे दँतुली नहीं कहता। वह बूढ़ी थी इसीलिए सब उसे बुढ़िया दादी कहते। छोटे बच्चों से लेकर बड़ों तक, सबकी वह बुढ़िया दादी ही थी। लेकिन पीठ पीछे उसे जानने के लिए परानपुरवासी दँतुली के नाम से ही उसे संबोधित करते।

परानपुर आरा शहर का एक उपेक्षित मुहल्ला था। उसे मुहल्ला न कहकर अगर गाँव कहा जाए तो ज्यादा उचित होगा। वह गाँव था भी। शहर बढ़ते–बढ़ते वहाँ तक आ गया था। परानपुर के सभ्य और संपन्न कहे जाने वाले लोग उसे छोड़कर शहर के अच्छे मुहल्लों में जा बसे थे। लेकिन वहाँ के गरीब, उपेक्षित और पिछड़े वहीं रह गए। उनके साथ उनका वह गाँव भी रह गया। कच्ची मिट्टी के खपड़ैल के घर, फूँस की झोपड़ियाँ, पुराने जमाने के दो–एक पक्के मकान, सब यथावत बरकरार। वहाँ के बाशिंदों की भाँति उस गाँव की पुरानी संस्कृति भी बरकरार थी। दाई–बारी, धोबी–कुम्हार, कुली–मजदूर, मेहतर–मिस्त्री, डोम–चमार और पासी–कहार का काम करने वाले उस गाँव के लोग, आम शहरियों की तरह एक–दूसरे से कटकर नहीं, सटकर जीते। कमाने के लिए चाहे वे शहर के किसी मोहल्ले में जाते, लेकिन शाम को गाँव लौटने पर अपने गाँव के ही हो जाते। जन्म–मरण, शादी–ब्याह और पर्व–त्योहारों के अवसरों पर ही नहीं, सदैव एक–दूसरे के सुख–दुख के साथ होते। किसके यहाँ क्या हो रहा है ? किसके यहाँ कौन आया ? किसके यहाँ क्या बना है ? सब जानते। एक–दूसरे का घर और एक–दूसरे का जीवन उनके लिए तनिक भी गोपनीय और अबूझ नहीं। जो अपने में सिमटकर जीने वाले थे, ऐसे लोगों का वास इस मुहल्ले में नहीं। शायद इसीलिए ऐसे लोग इस मुहल्ले में थे भी नहीं...।

दँतुली परानपुर की नहीं थी। पिछले कुछ वर्षों से ही वह यहाँ आई थी। वह कहाँ की थी, किसी को मालूम नहीं। अपना वास्तविक नाम–ग्राम उसने किसी को बताया ही नहीं। लोगों के अनुसार वह कोई 'बड़जातिन' (बड़ी जाति की स्त्री) थी। भोजपुर जिले की किसी गाँव की रहने वाली... ! अपने घर से भागकर उसके द्वारा इस शहर में पहुँचने और फिर परानपुर तक आने के बारे में भी लोगों की राय

अलग–अलग थी। कुछ लोगों के अनुसार वह कम दिमाग की नासमझ औरत थी, जिसे पति ने पीटकर घर से भगा दिया, लेकिन अधिकांश लोगों के अनुसार वह दुखों की मारी थी। उसका पति मर गया था। उसकी इकलौती बेटी को ससुराल वालों ने जला दिया था। पति की मृत्यु और बेटी की हत्या से वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठी थी। इसका फायदा उठाते हुए उसके पति के भाइयों ने उसे पागल करार दे उसकी सम्पत्ति हड़प उसे घर से निकाल दिया।

उसके बारे में ऐसी चर्चा थी कि शहर में आने के बाद वह परानपुर जैसे इलाकों से अलग, बड़े लोगों के मुहल्लों में ही रहना चाहती थी। शायद जातिगत समानता ने उसे उन मुहल्लों की ओर आकृष्ट किया था। लेकिन वहाँ वह टिक नहीं पाती। अपने मकान के ओसारे में या मकान के निकट भी कोई उसे रहने नहीं देता। उनके अनुसार वह अज्ञात स्त्री गुंडों–लुटेरों के गिरोह की भी हो सकती थी या खुद हाथ –सफाई करने वाली चोरिन महिला भी। इसके अतिरिक्त वह मजदूरी या चौका–बर्तन का काम भी नहीं करती थी। वह काम उसे पसंद नहीं। उसकी जाति के लोग ऐसा काम नहीं करते। उसका यह तर्क भी किसी को मान्य नहीं। इस स्थिति में अपना पेट भरने के लिए वह 'सोनपापड़ी' (बेसन की मिठाई) खरीदकर ले आती और कागज की छोटी–छोटी पुड़ियों में बंद कर उसे बच्चों में बेचती। लेकिन उन बड़े लोगों के मुहल्लों के बच्चे उसकी वे पुड़िया भी नहीं खरीदते। उनके अभिभावक मना कर देते– 'गंदी चीज है! ऐसी बाजारू चीजें नहीं खाते...!'

वह वैसे मुहल्लों में काफी समय तक भटकती रही। पर न तो कहीं ठौर पा सकी और न अपने जीविकोपार्जन–भर सोनपापड़ी ही बेच पाती। इसी भटकन के दौरान जाड़े की एक दोपहर वह परानपुर आई। यहाँ उसे ठौर मिल गया और यहाँ के बच्चों में उसकी सोनपापड़ी भी लोकप्रिय साबित हुई। यहाँ के लोग भी उसे अजनबी और अपने से दूर हटाते नहीं जान पड़े। किसी ने भी संशय की दृष्टि से उसे नहीं देखा। सबने उसे ऐसे अपना लिया जैसे वह उन्हीं का हिस्सा हो। किसी रोज वह खाना नहीं बनाती तो आस–पड़ोस की औरतें उसे खाना दे जातीं। यह स्थान उसे ऐसा जँचा कि फिर वह कहीं नहीं गई, यहीं की होकर रह गई।

परानपुर में दँतुली किसी के दरवाजे पर नहीं रहती थी। गाँव के उत्तरी छोर पर स्थित 'गोरेयाथान' (गोरेया बाबा नामक देवता का स्थान) के पास उसने अपना डेरा जमाया था। नीम के एक पुराने वृक्ष के नीचे गोरेया बाबा का चबूतरा था। पर्व–त्योहारों के दिन परानपुर की औरतें गोरेया बाबा की पूजा करतीं। वह सार्वजनिक स्थल था। 'गोरेयाथान' के पास एक ओर गोरेया बाबा का चबूतरा और दूसरी ओर परानपुर के कबाड़ों का ढेर। लोग अपने घर का कूड़ा–करकट और बेकार हो गए सामान वहीं फेंकते। उन्हीं कबाड़ों के पीछे अपने लिए जगह बनाकर वह रहती। बारिश के दिनों में किसी के ओसारे में जाकर छिप जाती। फिर बारिश छूटते ही अपनी जगह पर आ जाती।

दँतुली की मृत्यु के बारे में परानपुरवासियों की अलग–अलग राय थी। कुछ लोगों का कहना कि दँतुली कबाड़ के पास सोती थी, इसीलिए संभव है कबाड़ में छिपकर रहने वाले किसी साँप ने उसे डँस लिया हो या अन्य किसी विषैले जंतु ने काट लिया हो। लेकिन इसके विपरीत अधिकांश लोगों का यह मानना था कि वह अपने–आप मरी है। दुखों की मारी उसकी काया असमय में ही जर्जर हो गई थी। उससे चला भी नहीं जाता था। उसकी आँखों की रोशनी भी जाती रही थी। मुश्किल से अपना क्रिया–कर्म वह कर पाती थी। ऐसे लोगों का कहना था कि दँतुली का मर जाना अच्छा ही हुआ। वह 'भगमानी' (भाग्यवान) थी कि बिना कष्ट सहे गुजर गई। किसी की सेवा नहीं ली। एक गिलास पानी तक नहीं माँगा। ऐसी मौत सबको नसीब हो!

सुबह का उजाला फैलते और दिन की शुरुआत होते ही परानपुरवासी गोरेयाथान पर जुटने लगे। इस बीच मुहल्ले की औरतें पहले ही पहुँच चुकी थीं दँतुली के पास और उसे घेरकर रोना भी प्रारंभ कर दिया था– 'एकदम गऊ थी बेचारी...!'

''अरे, अब हम अपने बच्चों को किसके पास सोनपापड़ी के लिए भेजेंगे? कौन उन्हें दुलार से सोनपापड़ी खिलाएगा... ?''

''अरे, गोरेयाथान आने पर अब कौन हमें अशीषेगी? जी खोलकर दुआएँ देती थी बेचारी। अपनी बहू-बेटी से भी हमें अधिक समझती थी। हमें छोड़कर चली गई एकाएक...!''

परानपुर के मर्द एकत्रित होते ही उसके दाह-संस्कार की तैयारी में लग गए। भले ही वह उनकी कोई नहीं थी, लेकिन उनके गाँव में तो रहती थी। खून का न सही, साथ रहने का संबंध तो था। फिर यह तो पुण्य का काम था। उनके गाँव की यह पुरानी परंपरा भी थी। गाँव में मरे व्यक्ति की लाश को वह लावारिस की तरह कभी नहीं फेंकते। उन्होंने बड़े लोगों के मुहल्ले में मरने वाले लावारिसों की दुर्गति देखी थी। वे उसके सख्त खिलाफ थे।

इस अवसर पर परानपुर के प्रमुख व्यक्ति जगन पासी ने गोरेयाथान में एकत्रित लोगों को संबोधित करते हुए कहा- ''अब देर करने की जरूरत नहीं। यह हमारी माँ-बहन से कम नहीं। जिसकी जैसी औकात हो उसी अनुसार चंदा दे इसका उचित दाह-संस्कार हमें करना है...!''

जगन पासी की बात सुन मुहल्ले के दो नौजवान लच्छू और भीखू तत्क्षण चंदा एकत्रित करने में जुट गए। ऐसे अवसरों के लिए वे बहुत उपयुक्त नौजवान थे। उनकी तत्परता और फुर्ती देखते ही बनती थी। उनसे पहले ये कार्य बुटन और जीतन करते थे। पर उनके बूढ़े होते ही ये कार्य स्वत: लच्छू और भीखू ने सँभाल लिए, जैसे इस कार्य का रूपांतरण हो गया हो उनमें।

और अवसरों पर परानपुर के वासी चाहे जितनी कंजूसी करते हों, इस अवसर पर कुछ-न-कुछ अवश्य देते थे। लच्छू और भीखू ने पूरी बस्ती में घूमकर ढाई सौ रुपये एकत्रित कर लिए। उनकी बस्ती छोटी थी और लोग भी गरीब थे। किसी ने दो रुपये दिए, किसी ने चार, किसी ने दस। सबसे अधिक पच्चीस रुपये जयराम धोबी ने दिए। उसकी आय भी अन्य लोगों से अच्छी थी।

अब दँतुली की गठरी-मुठरी की तलाशी ली गई। शायद उसने भी कुछ जमा कर रखा हो। लेकिन उसके पास वैसा कुछ भी नहीं था। वह जो साड़ी पहनकर मरी थी, उसी के खूँट में (छोर पर) तीन रुपये पचासी पैसे के सिक्के बँधे थे। शायद बच्चों से सोनपापड़ी बेचकर उसने पाया था। इसके अलावा उसके पास फटे-पुराने कुछ कपड़े तथा मिट्टी के दो-चार बर्तन थे। सम्पत्ति के नाम पर अगर उसके पास कोई चीज थी तो वह उसकी नाक में लगी छूँछी। उसके मर चुकने के बाद भी उसकी नाक की वह छूँछी सबको नजर आ रही थी और दूर से ही चमक रही थी।

दँतुली की छूँछी के बारे में परानपुरवासियों का मानना था कि वह उसकी सगुनवती छूँछी थी। शादी में पहनाई गयी छूँछी के सिवाय उसके पास और कोई जेवर नहीं। इस शहर में कष्ट सहकर भी अपनी यह छूँछी उसने कभी नहीं बेची। पहले की बनी, असली सोने की, बड़ी-सी छूँछी, दूर से ही नजर आती रहती। परानपुर की कुछ महिलाएँ तो उसे 'छूँछी वाली बुढ़िया' भी कहतीं।

चंदा एकत्रित करने के बाद कफन लाने और बाँस की अरथी बनाने का काम शुरू हो गया। ऐसे कामों में अभ्यस्त परानपुर के लोगों ने फटाफट सारी तैयारी कर ली। अब दँतुली को तैयार कर उसे अरथी पर चढ़ाना था। अगर मृतक पुरुष-पात्र होता तो परानपुर के मर्द स्वयं उसे तैयार कर अरथी पर चढ़ाते, लेकिन दँतुली महिला थी इसीलिए उसको तैयार करने का जिम्मा नक्षत्तरी को सौंपा गया। यह कार्य नक्षत्तरी के हिस्से का था...!

नक्षत्तरी एक विधवा महिला थी। वह काली-कलूटी और कुबड़ी थी। इस रंग-रूप के चलते ही उसकी दूसरी शादी नहीं हुई। गोरेयाथान के पास ही उसका खपड़ैल घर था। शहर में चौका-बर्तन कर वह पेट भरती। दँतुली के आने से पहले वह अपने को बहुत अकेला महसूस करती। लेकिन दँतुली के आ जाने के बाद उसका अकेलापन खत्म हो गया था। वह अक्सर दँतुली के पास बैठी रहती। दँतुली से उसकी खूब पटती भी। इसीलिए परानपुरवासियों ने दँतुली की अंतिम तैयारी का दायित्व उसे ही सौंपा।

परानपुर की बुजुर्ग महिलाओं ने नक्षत्तरी को हिदायत दे दी– ''नाक से छूँछी निकालकर उसके मुँह में डाल देना। मरी औरत की नाक की छूँछी उसके मुँह में डाल दी जाती है...।''

परानपुर के बुजुर्ग पुरुषों ने भी इस बात का समर्थन किया। यह परंपरा सिर्फ उनकी बस्ती की ही नहीं, पूरे जनपद की थी। छूँछी पहनकर मर गई औरत की छूँछी उसके मुँह में ही डाल दी जाती।

देखते–ही–देखते 'मंजिल' (अरथी) तैयार हो गई। 'राम नाम सत्य है' की समवेत ध्वनि के साथ मंजिल उठाकर चल पड़े परानपुरवासी। छठू और संतू ने मंजिल के अगले हिस्से को अपने कंधों पर थाम लिया। वे मंजिल ढोने में माहिर थे। बिना कंधा बदले श्मशान तक मंजिल ले जाते। उनके रहते, उस मुहल्ले की कोई मंजिल बिना उसके निकली हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। मंजिल के साथ चलने वाले लोग भी कंधा भिड़ाते रहते। भले ही कोई दस डग के लिए ही कंधा भिड़ाए, पर कंधा अवश्य भिड़ाता। मंजिल में कंधा भिड़ाना पुण्य का कार्य समझा जाता।

परानपुर से श्मशान घाट की दूरी चार मील थी। शहर के उस पार गंगा के किनारे श्मशान घाट था। वहाँ पहुँचते–पहुँचते दुपहरिया तपने लगी। श्मशान घाट के पास ही लकड़ियों की दुकान थी। मुर्दा लाने वाले यहीं से लकड़ियाँ खरीद मुर्दे जलाते। परानपुर के लोगों ने भी लड़कियों की खरीदारी शुरू की। कफन और अरथी से बचे रुपयों की लकड़ियाँ खरीदी गई, लेकिन दुकानदार के अनुसार और बराबर मंजिल ले आने वाले परानपुर के कुछ निवासियों के अनुसार भी इतनी कम लकड़ियों में एक लाश जल पाना संभव नहीं। और लकड़ियों की जरूरत थी। प्रश्न था, इसके लिए अब पैसा कौन दे? वे इतना कर रहे थे, यही काफी था। शरीर से तो वे लगे ही हुए थे। अपनी सामर्थ्य भर चंदा भी उन्होंने दे रखा था। अब कुछ देना उनके लिए संभव नहीं। इस स्थिति में सबके मन की बात ताड़ लकड़ी वाले से कहा जगन पासी ने– ''भाई जी, अब आप ही मदद कीजिए! आपसे क्या छिपाना! यह लावारिस औरत है। हम लोग आपस में 'बेहरी' (चंदा) कर इसका 'परवाह' (दाह–संस्कार) कर रहे हैं। जो था, सब आपको दे दिया। अब आप अपनी ओर से मदद कर घट रही लकड़ियाँ दे दीजिए। आप भी इस पुण्य के भागीदार बन जाइए...!''

लेकिन श्मशान के पास रोज मुर्दों का सामना करने वाला वह लकड़ी–दुकानदार तनिक भी नहीं पसीजा– ''यह लावारिस है या किसी के घर की, इससे मुझे क्या मतलब? मैं मुर्दों का वारिस जानने नहीं, लकड़ी बेचने बैठा हूँ। जब लावारिस ही थी तो आप लोग क्यों उठा लाए? जैसे लाएं हैं, वैसे लकड़ियाँ खरीदकर ले जाइए। मैं धर्मखाते में लकड़ियाँ नहीं बाँटता। ऐसा करने लगूँ तो दुकान बंद कर मुझे घर बैठना पड़े...।''

जगन को लग गया, वह मुफ्त में लकड़ियाँ देने वाला नहीं। अपने साथ के लोगों के चेहरे भी उन्होंने पढ़ लिए, किसी को भी अब और खर्च करना गवारा नहीं। अब उन्होंने लकड़ी वाले से आग्रह किया– ''ठीक है। जरूरत–भर तौल दीजिए लकड़ी। आपका पैसा हम दो–एक दिन में भेज देंगे...।''

लकड़ी वाला जगन को पहचानता था। बराबर मंजिल के साथ आने वाले परानपुर के कुछ अन्य लोगों को भी जानता था। यह कहते हुए उसने उधार में लकड़ी दे दी– ''जल्दी पैसा भिजवा दीजिएगा। आप लोग बराबर आने वाले ग्राहक हैं, इसीलिए आपकी बात रख लिया...मैं उधारी का कारोबार नहीं करता...!''

जरूरत–भर लकड़ी पा सब आश्वस्त हो गए। जल्दी में उन्होंने चिता तैयार कर दँतुली को उस पर लिटा दिया। वे सब थक गए थे और उन्हें भूख भी लग आई थी। जल्दी से लाश फूँककर वे घर लौट जाना चाहते थे, लेकिन समस्या यह थी कि दँतुली की चिता में आग कौन लगाए? परानपुर के लोगों में से उसे जो आग देता, उसे तेरह दिनों तक 'लग्गी–बरछी' लेकर 'तेरहीं' (क्रिया–कर्म) की रस्म अदा करनी पड़ती। ऐसी लाशों की चिता में वे श्मशान घाट के डोम से ही आग दिलवा देते। पर डोम ने

भी लकड़ी–दुकानदार वाला प्रश्न खड़ा कर दिया– ''जब हमीं आग देब त पुरहर पइसा भी लेइ।''

परानपुर के लोग फिर चिंता में पड़ गए। लकड़ी वाले से तो उन्होंने काम निकाल लिया। अब इस डोम से कैसे काम निकालें? उन्होंने डोम से भी सच्ची बात बता दी। पर उसकी सख्ती बनी रही। वह अड़ा खड़ा पूर्ववत– ''एहिजा चिलार प हम पुन कमाए नइखीं बइठल। अपना परिवार के रोजी–रोटी खातिर बइठल बानीं। लाश लावारिस ह कि केहू के घरे के, हमरा एहसे कवनो मतलब नइखे। आग दिआई पइसा से मतलब बा!''

लेकिन जगन पासी ने अपने बस्ती वालों को यहाँ भी अधिक देर तक चिंतित होने नहीं दिया। डोम को करीब बुलाकर उसके लाभ की बात किसी राज की तरह समझाना शुरू किया– ''तुम क्या समझ रहे हो कि तुमसे सेतिहा (मुफ्त) में हम आग देने को कह रहे। असली सोने की बड़ी–सी छूँछी इसके मुँह में है। पहले की बनी हुई भारी। चार–पाँच सौ से कम में नहीं बिकेगी। उसे बेचकर सौ का एक नोट लकड़ी वाले को दे देना और शेष सब तुम ले लेना...।''

जगन की बात सुन डोम की आँखें चमक उठीं। परानपुर के लोगों को भी यह मार्ग अच्छा जान पड़ा। अब लकड़ी वाले का कर्ज भी चुक जाएगा। जगन की इस दिमागी चतुराई पर उसकी बस्ती वाले खुश हो उठे।

उत्साहित हो डोम अब दँतुली के पास पहुँच आया। आग देने से पहले उसने दँतुली के मुँह में हाथ डालकर छूँछी ले लेनी चाही। ऐसे मामलों में वह यही करता था। लेकिन दँतुली के मुँह में उसे छूँछी कहीं नहीं मिली। उसके मुँह के भीतर वह अपनी अँगुलियाँ दौड़ाता रहा...।

परानपुर के लोगों को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि दँतुली के मुँह में उसकी छूँछी नहीं? तो क्या नक्षत्तरी ने उसकी छूँछी चुरा ली? उसी ने दँतुली को तैयार किया था। लेकिन नक्षत्तरी तो ऐसी नहीं। दँतुली को तो वह अपनी माँ की तरह मानती थी। कुछ क्षण के लिए डोम की बातों पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। बुटन और जीतन ने डोम को हटाकर स्वयं बारी–बारी से दँतुली के मुँह में हाथ डाल छूँछी की खोज शुरू की। इस कार्य में लच्छू भी भिड़ गया...!

चिता पर लेटी दँतुली और उसके मुँह के भीतर हाथ डालकर छूँछी की खोज। जयराम धोबी से जब यह दृश्य देखा नहीं गया तो उसने अपनी नाराजगी व्यक्त कर दी– ''अगर दँतुली किसी की माँ–बहन या बहू–बेटी होती तो क्या मजाल कि इस तरह उसका मुँह फाड़ लोग छूँछी ढूँढ़ते! किस्मत की ओछी थी, तभी तो मरने के बाद यह दुर्गति...!''

परानपुर के अन्य लोगों के मन में भी ऐसी ही प्रतिक्रिया उठ रही थी। लेकिन कोई रास्ता भी तो उन्हें नजर नहीं आ रहा था। आखिर छूँछी कहाँ चली गयी? बिना कुछ ठोस लिए डोम आग देने वाला भी तो नहीं।

जगन पासी को अब लग गया, छूँछी दँतुली के मुँह में नहीं, तो उन्होंने डोम को विश्वास दिलाते हुए कहा– ''जरूर इसके पेट में छूँछी चली गई है। तुम आग लगा दो। लाश जल जाने पर ढूँढ़ना। अवश्य तुम्हें छूँछी मिल जाएगी। और अगर नहीं मिलेगी तो हमारी बस्ती में आ जाना, छूँछी का दाम नक्षत्तरी से वसूल कर हम तुम्हें देंगे...।''

जगन की बात डोम को जँची। पहले भी दो बार जल चुकी लाश की राख से उसने दो छूँछियाँ प्राप्त की थीं। उसने आग देने से पहले जोर देकर कहा– ''ठीक बा। हम आग दे–दे तानी। बाकिर राख में छूँछी ना मिली तो ओकर पइसा मिल जाए के चाही...!''

''मिल जाएगा...। मिल जाएगा...'' परानपुर के कई लोगों ने एक ही साथ जवाब दिया। उनके जगन दादा ने फिर रास्ता निकाल दिया था। अपने जगन दादा की समझ पर मन–ही–मन वे फिर इठला उठे।

डोम ने चिता में आग लगा दी। परानपुर के लोग लौट चले। वैसे लाश जलाकर ही लौटने की उनकी परम्परा थी। वे जानते थे, लाश के साथ आए लोगों के लौटते ही डोम पानी डालकर चिता बुझा देता। फिर चिता की लकड़ियाँ

खींचकर रख लेता और अधजली लाश गंगा में फेंक देता। लेकिन इस बार वे आश्वस्त थे, ऐसा नहीं करेगा डोम। छूँछी पाने के लिए वह लाश अच्छी तरह जलाएगा।

अपनी बस्ती लौटने के बाद परानपुर के लोग सीधे नक्षत्तरी के पास पहुँचे। उसे यह बताते हुए कि छूँछी दँतुली के मुँह में नहीं, उसे डराया–धमकाया, सीधे मन से वह छूँछी लाकर हाजिर कर दे। जवाब में नक्षत्तरी रोने–कलपने लगी। गोरेया बाबा के माथे पर रखकर किरिया खाने लगी– ''हे गोरेया बाबा, हमने अगर छूँछी ली हो तो हमें उठा लेना...। नरक में भेजना। हमारी कोई दुर्गति बाकी न छोड़ना...!''

नक्षत्तरी को इस तरह किरिया खाते देख सब अपने घर लौट आए। उन्हें लग गया, छूँछी दँतुली के पेट में ही होगी। राख में वह अवश्य डोम को मिल जाएगी।

लेकिन दूसरी सुबह बस्ती में डोम के पहुँचते ही परानपुरवासी पुनः आश्चर्य और दुविधा में पड़ गए। डोम ने कहा कि राख में छूँछी कहीं नहीं मिली। उसने बताया कि अपनी पत्नी और बच्चों के साथ राख में वह अच्छी तरह ढूँढ़ चुका है...।

जगन पासी ने समझा–बुझाकर डोम को विदा कर दिया– ''तुम निश्चिंत रहो। हम पता कर रहे हैं। पता करके रहेंगे। छूँछी उपराकर उसका दाम तुझे देंगे...!''

उसके बाद जगन पासी के बरामदे में बैठकें लगने लगीं। लेकिन एक राय पर सब सहमत नहीं हो पा रहे थे। हर बार परानपुर के लोगों की राय दो भागों में बंट जाती। कुछ लोगों का मानना था, नक्षत्तरी ने ही छूँछी ली है। वह दँतुली को लाख मानती थी, सोना देखकर उसका मन बदल गया। सुगमता से उपलब्ध वैसी छूँछी वह छोड़ने वाली नहीं...।

लेकिन शेष लोगों का कहना, इतना जार–बेजार होकर रोने और किरिया खाने वाली नक्षत्तरी ने छूँछी नहीं ली है। डोम को राख में छूँछी मिल गई है। उन सबों को मूर्ख बनाकर वह दोबारा कुछ ऐंठना चाहता है। उनके मुहल्ले की नक्षत्तरी झूठ बोल रही है और श्मशान का वह डोम सच, यह हो ही नहीं सकता। झूठ बोलना तो मुर्दघटिया के डोम का पेशा होता है...।

सच क्या था, किसी को पता नहीं? फिलहाल सबका संयुक्त सच था कि दँतुली की वह बड़ी–सी चमकदार छूँछी उनकी आँखों के समक्ष नाच रही थी...!

संपर्कः महाराजा हाता, आरा–802301 (बिहार) **मो. 09431683936**

सहयात्री

रमाकांत श्रीवास्तव

वह एकदम उजला और शांत दिन था। हवा में किसी किशोरी जैसी अल्हड़ता और झिझक थी। आदमी जब कहीं यात्रा पर निकले तो यूँ ही छुट्टी का आभास मन पर छाया रहता है, फिर वे तो छुट्टियों के ही दिन थे। छोटे शहरों में तो शिक्षण संस्थाओं के खुले रहने पर ही काम–काज के दिन का एहसास होता है वर्ना सारे कार्यालयों के खुले होने पर भी जैसे शहर पर फुर्सत का भाव व्याप्त होता है। आप गौर से सुनें तो ऐसे समय चिड़ियों की आवाज भी बदली हुई सी लगती है। दीपावली करीब थी और लग रहा था कि बदलती हुई ऋतु अपना घूंघट आहिस्ते से हटा रही थी। दोपहर थी। कौवों की आवाजों में भी अलसायापन था।

मैं मौसम में ही खोया रहता यदि एक खासी लंबी मालगाड़ी सामने से ना गुजरी होती। गाड़ी के निकल जाने के बाद जब शांति हुई तो मैंने राव को बोलते हुए पुनः सुना। मैं यह सोचकर खुश हुआ कि उस यात्रा में मैं पत्नी के साथ निकला था वर्ना उसकी धारा–प्रवाह बातों को झेलना कभी–कभी भारी पड़ता है। अभी तक मैं राव की बातें नहीं सुन रहा था। यह कहना तो गलत होगा पर उसके लगातार बोलने के कारण मैंने दिमाग की बैटरी थोड़ी देर के लिए ऑफ कर दी थी और मौसम का आनंद ले रहा था। पत्नी जरूर मोर्चे पर थी। राव के लगभग भाषण को वह बातचीत में बदलने की कोशिश में लगी थी। वह कुछ परेशान जरूर थी, लेकिन धैर्य और उत्साह से वह स्थिति में सेंध लगाने में सफल हो गई थी। उसने अपने बोलने लायक जगह बना ली थी।

राव अपने प्रिय विषय रेलवे पर बात कर रहा था। हर बार यही होता है। ट्रेन आने तक वह हमारे साथ ही रहता है। चटरहा नंबर वन तो है ही, उसकी बातों का विषय भी एक ही होता है। उससे मिलकर मुझे हमेशा उस विद्यार्थी का किस्सा याद आता है जो हाथी पर निबंध याद करके परीक्षा देने गया था। संयोग से परीक्षा में 'बरसात' पर निबंध पूछा गया तो उसने बरसात में होने वाले कीचड़ में हाथी के फंस जाने का जिक्र किया फिर हाथी पर रटा हुआ पूरा निबंध लिख दिया।

जब भी हम कभी यात्रा करते हैं राव से मुलाकात होती है। कभी आरक्षण ना मिलने पर भी जाना जरूरी है तो राव ही हमारे काम आता है। सीनियर टी.टी. होने के कारण उसके अपने जुगाड़ हैं। टेक्नालॉजी कितनी भी ऊंचाई छू ले पर वह हमारे देश के प्रतिभाशालियों के शातिरपने का पार नहीं पा सकती। तत्काल–फत्काल आरक्षण वगैरह सब फेल हो जाते हैं, लेकिन प्रतिभाशालियों के नेटवर्क से चुस्त–दुरुस्त कोई दूसरा नेटवर्क नहीं है। हमारे एक मित्र तो कहते हैं कि भ्रष्टाचार के अपने किस्म के सुख भी हैं। राव हमसे किसी आर्थिक लाभ की आशा में यह नहीं करता। उसका व्यवहार हमेशा दोस्त की तरह होता है। कम से कम वह जाहिर तो यही करता है कि हमसे मिलकर उसे हमेशा प्रसन्नता होती

है। स्वाभाविक है कि इसके बदले में उसकी जरूरत से ज्यादा बोलने की आदत को झेलना हमारा दायित्व है। अभी भी वह बोल रहा था– ''मैडम, मैं यहाँ पच्चीस साल से हूँ। अब तो यहीं अपना मकान बनवा लिया है। मेरा तबादला घूम–फिर कर यहीं हो जाता है। मैं यहाँ आठ स्टेशन मास्टरों के साथ काम कर चुका हूँ।''

पत्नी ने बोलने के लिए फौरन जगह बनाई और आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा– ''ओहो! तब तो आपको कई प्रकार के अनुभव हुए होंगे।''

''हाँ मैडम, जीना यहाँ मरना यहाँ। मेरे पिता भी रेलवे में ही आफीसर थे।''

''तब तो आप रेलवे के फेमली मेंबर हुए,'' मैंने कहा।

''हाँ साहब, मैंने तो रेलवे में काम करते हुए दुनिया को बदलते देखा है। हमारे विभाग के पुराने लोग उनके भी बहुत पहले काम कर चुके लोगों के अनुभव सुनाते हैं। जी हाँ, जब कोयले से चलने वाले इंजन थे। ग्रामीण इलाकों से ट्रेन गुजरती थी तो खेतों में काम करने वाले लोग काम छोड़ कर ट्रेन को देखने लगते थे। बच्चे दूर से दौड़ते हुए आते और मुग्ध भाव से ट्रेन को देखकर चिल्लाते रेल गाड़ी...रेलगाड़ी। आपने सत्यजीत राय की पाथेर पांचाली फिल्म देखी है। अपू और उसकी बहन ट्रेन को देखने के लिए कैसे उत्सुक होते हैं....

...बस, उसी समय मेरा ध्यान उसकी बातों से हटकर उस बकरी की ओर चला गया जो प्लेटफार्म पर कुछ तलाशती सी इधर–उधर घूम रही थी। वैसे तो प्लेटफार्म पर बकरी का होना ही अजीब है, उसके अलावा मुझे लगा कि किसी कारण से वह बेहद बेचैन है। हम प्लेटफार्म की जिस बेंच के पास खड़े होकर बातें कर रहे थे उसके सामने ही थोड़ा हटकर प्लेटफार्म के एक खम्बे के वह दो बार चक्कर लगा चुकी थी। यह उसका तीसरा चक्कर था। कुछ तलाश करती हुई सी वह उस खंबे के पास थोड़ी देर ठहरी। फिर वह प्लेटफार्म के बीच की पटरियों को पार करने की नीयत से, लोगों के द्वारा प्लेटफार्म से लगा कर रखे गये पत्थर पर से उतरकर पटरियों के बीच, थोड़ी देर इधर–उधर घूमती रही। इस दौरान वह अजीब ढंग से मिमियाई, लेकिन वह फिर लौटकर खंबे से सटकर खड़ी हो गई।

राव की किसी बात पर पत्नी की हंसी सुनकर मेरा ध्यान फिर उनकी तरफ गया। राव ने अपनी दास्तां छेड़ रखी थी– ''मैडम क्या है कि अब तो आप जैसी पढ़ी–लिखी जागृत महिलाएँ हैं। आप तो नौकरी भी करती हैं। हाँ...हाँ... मुझे मालूम है। एक बार साहब ने मुझे बतलाया था। हर क्षेत्र में औरतों ने अपनी योग्यता का परिचय दिया है। आज जमाना कहाँ पहुँच गया है।''

उसकी बात पर हम मुस्कुराने लगे। पत्नी कुछ बोल पातीं कि राव फिर शुरू हो गया– ''क्या है कि मैडम, कई साल पहले हमारे स्टेशन मास्टर थे शर्मा जी। वो बतलाया करते थे कि उनसे भी पहले वाले स्टेशन मास्टर मुखर्जी पुराने समय की बहुत मनोरंजक बातें बतलाया करते थे। ऐसी बातें जो उन्होंने भी लोगों से सुनी थीं। आजादी से भी बहुत पहले की कई बातें। हाँ, अब तो बहुत कुछ बदल गया है। तब तो ट्रेन में थर्ड क्लास, सेकंड क्लास के अलावा इंटर क्लास भी होता था। फर्स्ट क्लास में तो इक्के–दुक्के लोग ही सफर करते थे। हाँ, एकदम हाई–फाई किस्म के आदमी। इधर जितनी भी देसी रियासतें थीं उनके राजा–महाराजा इसी स्टेशन से ट्रेन पकड़ते थे। एक स्टेट की रानी जब सफर करती थीं तो उनकी कार वहाँ वोट के पास रुकती थी। वहाँ से उनके कम्पार्टमेंट में चढ़ते तक उनके लिए परदे का इंतजाम किया जाता। कथकली के कलाकार के मंच प्रवेश के लिए जिस तरह परदे का इस्तेमान किया जाता है उसी तरह कुछ दासियां परदों को पकड़े हुए साथ चलतीं। जस्ट इमेजिन द सीन! राव ने भौंहें ऊपर चढ़ा कर कहा।''

पत्नी खिलखिलाकर हँसी....'बाप रे, क्या दृश्य होता होगा।

.... लगभग उसी समय बकरी रह रह कर तेज आवाज में मिमियाने लगी। अब उसने अपना सिर खंबे से टिका दिया था। उसकी आँखों में मैंने और तकलीफ देखी। मेरे लिए यह आश्चर्यजनक था। बकरी की आँखें मुझे हमेशा

कौड़ियों की तरह लगती हैं, नितांत भावहीन। कुत्ते या गाय की आँखों में प्यार, क्रोध या व्यग्रता के भाव तो दिखलाई देते हैं। अब उस ओर मेरा भर ध्यान नहीं था। कुछ और लोग भी उसी तरफ कौतुहल भरी दृष्टि से देख रहे थे। मैंने गौर किया कि बकरी की पूंछ के नीचे का पूरा हिस्सा असाधारण रूप से बाहर की ओर फूल सा गया है। बकरी का सामान्य आकार तो ऐसा होता नहीं है। अब मुझे समझ में आया कि वह बच्चा जनने जा रही है। यह उत्तेजित कर देने वाला भाव था कि सब कुछ मेरे सामने ही घटित होने वाला था। अपनी उत्तेजना मुझे अटपटी लगी और मैं इस बात के लिए सजग होने लगा कि मैं इस दृश्य में रुचि लेता हुआ ना दिखलाई दूँ। मैं इधर-उधर देखने की कोशिश करने लगा पर मेरी नजर घूम-फिर कर वहीं टिक रही थी। ध्यान बटाना जरूरी था, इसलिए मैंने फिर से राव की बातें सुनने का मन बनाया।

राव अपनी धुन में बोले जा रहा था- ''क्या है कि मैडम, आप जानती ही हैं कि जमाने की रफ्तार है। मेरे पिताजी बतलाया करते थे कि औरतें इतने बड़े-बड़े घूंघट डाले यात्रा करती थीं। हैसियत वालों के नौकर उनके बिस्तर, खाना-पानी लेकर चलते थे। जब नौकरी करने वाली और कॉलेज में पढ़ने वाली लड़कियाँ सलवार-कुरता पहनकर मुक्त भाव से यात्रा करतीं तो कई लोग उन्हें प्रशंसा भरी दृष्टि से देख लें और कुछ आहें भरते। अब कितनी ही औरतें अप-डाउन करती हैं।''

राव की बातें अब मैं नहीं सुन पा रहा था, क्योंकि बकरी की मिमियाहटें अब दर्दनाक हो गई थीं। वह खंबे से अपना सिर बार-बार टकरा रही थी। एकाएक वह ऐसी आवाजें निकालने लगी जैसे उसके प्राण निकल रहे हों। तभी मैंने उसके योनिद्वार से बाहर आते हुए छौने के खुर देखे। मेरे बदन में झुरझुरी होने लगी। यह मन में जुगुप्सा भरने वाला दृश्य था। मैं तो यही जानता था कि प्रसव के समय बच्चे का सिर पहले बाहर आता है। पशुओं की प्रजनन की क्या कोई भिन्न प्रक्रिया होती है, इस बारे में कोई जानकारी मुझे नहीं थी। मैंने तो यह समझा कि अब छौना फंस जाएगा और बकरी तड़प-तड़प कर वहीं मर जाएगी। बकरी की मिमियाहट में प्राणांतर वेदना थी। मैं उसे सहन नहीं कर पा रहा था, अत: मैंने झटके से अपना बैग उठा लिया ताकि वह स्थान बदलकर दूसरी जगह खड़े होकर ट्रेन की प्रतीक्षा करूँ। पत्नी ने, जिसका ध्यान अब राव की बातों से हटकर बकरी की ओर चला गया था, मेरी ओर प्रश्न भरी नजरों से देखा। मैंने कहा- 'अपन यहाँ से हटकर थोड़ी दूर खड़े हो जाएं। वैसे भी ट्रेन आने का समय हो रहा है।''

पत्नी ने व्यग्रता तो नहीं दिखलाई पर कहा- 'ठीक है। चलो।' राव ने सलाह दी- ''आप लोग वहां खड़े हो जाइए। स्लीपर कोच वहीं आयेगा। मैं अपने रूम में चलता हूँ।''

राव ने हमसे विदा ली और हम लगभग तीस कदम उस ओर बढ़ गए जिस ओर ट्रेन आनी थी। हमारे कोच के रुकने का जो स्थान था वहाँ पहले से ही चार-पाँच लोग खड़े थे। सिग्नल की ओर नजर दौड़ाकर मैंने अपना बैग जमीन पर रखते हुए फिर उस दिशा की ओर दृष्टि घुमाई जहाँ से हम इस तरफ आ गए थे वहाँ मेरे लिए एक आश्चर्य प्रतीक्षा कर रहा था! प्लेटफार्म के फर्श पर बकरी का नवजात शिशु पड़ा था और बकरी उसे चाट रही थी। तीन-चार औरतें जो शायद जमादारिन और केटीप में बर्तन मांजने वाली रही होंगी,बकरी और छौने से कुछ हटकर बैठी थीं। वे आपस में बातें कर रही थी। पत्नी भी उधर देखने लगी। मुझे उसके चेहरे पर एक अजीब सी चमक दिखलाई दी। पास खड़ी हुई एक औरत भी उसी ओर देख रही थी। वह मुस्कुराते हुए कुछ गुनगुना रही थी।

ट्रेन आई। हमारे ठीक सामने हमारा कोच आया और हम उसमें दाखिल हो गए। केबिन में हमारे ठीक सामने एक भद्र महिला बैठी थीं, जिनकी बगल में थी एक सात-आठ साल की बच्ची। गोरी चिट्टी, कटे हुए बाल एकदम गुड़िया जैसी। उसके एक हाथ में कौमिक था जिसे वह सरसरी निगाह से देख रही थी। अपने दूसरे हाथ में पकड़े हुए सेव को वह कुतर रही है। ट्रेन के रवाना होने पर दोनों

ही खिड़की से बाहर देखने लगी। ट्रेन की रफ्तार बिलकुल धीमी थी जब हमारा कम्पार्टमेंट उस स्थान के सामने से गुजरा जहाँ बकरी अपने नवजात शिशु पर झुकी उसे चाट रही थी। उसकी पूंछ के नीचे चिकनाई भरे खून की एक रस्सी सी लटक रही थी। मैंने क्षणिक प्रयास से बकरी की आँखों को देखने की कोशिश की। वे कौड़ियों की तरह ही थीं पर मुझे वे कुछ भिन्न कौड़ियों की तरह लगीं। वैसी जिनसे हम बचपन में अट्टू खेला करते थे।

प्लेटफार्म के फर्श पर खून और चिकनाई फैली हुई थी। नवजात छौना झिल्ली से बाहर आ गया था और अपने पैरों को टेक कर उठने की कोशिश कर रहा था। कुछ अजीब सा दृश्य था पर उसे लगातार देखते रहने की विवशता खत्म हो गई थी, फिर भीर बकरी और उसके बच्चे के आस–पास चार–पांच औरतें बैठी हुई थीं।

हमारे सामने की बर्थ पर बैठी बच्ची ने भी इस दृश्य को देखा तो कौमिक को एक ओर रखकर वह सीट से उछलकर खड़ी हो गई। खिड़की झाँककर बेहद खुश होते हुए वह चिल्लाई– 'मम्मी...मम्मी...देखो छोटा सा बच्चा!

उसकी माँ ने बच्ची के सिर पर हाथ फेरा और मुस्कुराकर मेरी पत्नी की ओर देखा। दोनों की आँखों में एक तरल–स्निग्ध सी चमक थी और ओठों पर महीन मुस्कुराहट जो कुछ स्टेशनों तक साथ यात्रा करने वाले सहयात्रियों के ओठों पर संभव नहीं है।

संपर्कः L.F-1, KANAK RETREAT
E-218, TRILANGA, BHOPAL- 462039

वर्ष 2020 में अब तक हम लोगों ने अपने अत्यंत आत्मीय एवं हितैषी कला, साहित्य, संस्कृति एवं राजनीति जगत के महत्वपूर्ण व्यक्तित्व को खो दिया है। श्रद्धेय प्रणब मुखर्जी, पण्डित जसराज, उषा गांगुली, बासु चटर्जी, इब्राहिम अल्काजी, राहत इंदौरी, गुलशन इविंग, नंद किशोर नवल के पुण्य–प्रयाण पर 'मुक्तांचल' परिवार मर्माहत एवं श्रद्धावनत् है...।

अस्थि-विसर्जन

महेश शर्मा

यूँ कहें कि सारा शहर उमड़ पड़ा था सेठ गोकुल प्रसाद की मृत्यु सूचना फैलते ही, तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। नाम ही कुछ ऐसा था। शहर के गिने-चुने रइसों में से एक ट्रांसपोर्ट लाइन में फेमस नाम। खुद के ८-१० वाहनों के अलावा अनुबंधित वाहनों की बड़ी संख्या से क्षेत्र में खासा दबदबा था। व्यवसाय के अलावा जमीन-जायदाद भी खूब। दो बेटे निर्मल और सूरज के साथ मिलकर गोकुल प्रसाद रात दिन लगे रहते। उनकी व्यवसाय की स्थिति और लक्ष्मी की बरसात देख-देखकर नगर के कई रईसों के सीने पर साँप लोट जाता था।

हालांकि इसी यशोगाथा को धूमिल करते कुछ दाग धब्बे भी इस परिवार से जुड़े थे। बड़ा बेटा माधव प्रसाद जो दो साल पहले लड़-झगड़कर अलग हो चुका था और अपना खुद का स्वतंत्र व्यवसाय कर रहा था। यद्यपि पिता गोकुल प्रसाद ने साफ कर दिया था कि मेरे जिंदा रहते तो संपत्ति के बँटवारे की कोई बात भी नहीं होगी और इसी जिद में माधव प्रसाद को अब तक कुछ भी नहीं मिला था। लेकिन अब करोडों की संपत्ति परिवार के विवाद का मुख्य मुद्दा होने जा रहा था।

दरअसल, माधव प्रसाद की पत्नी मीनाक्षी भी एक सफल औद्योगिक घराने से ताल्लुक रखती थीं। और जब शादी के बाद उसने स्वयं का वर्चस्व पूरे घराने पर जमाना चाहा तो विवाद की शुरुआत हो गई। गोकुल प्रसाद की पत्नी गीता जी और दोनों मझले और छोटे बेटों की बहुएँ तीनों एक हो गईं। विवादों का अंत ये हुआ कि सेठ गोकुल प्रसाद को अपने बड़े बेटे को स्पष्ट कहना पड़ा कि अब तुम अपना स्वयं का कारोबार स्वतंत्र रूप से देखो। काफी विवादों एवं झगड़ों के बाद माधव प्रसाद ने घर परिवार से नाता तोड़कर अपना अलग व्यवसाय प्रारंभ किया।

यद्यपि ससुराल के मजबूत सपोर्ट से उसका भी व्यवसाय अच्छा चल निकला। लेकिन, जो असुविधा और अपमान के घाव लगे थे वो अभी तक भरे नहीं थे। फिर छोटे भाइयों और उनकी पत्नियों के माँ के साथ रचे जाने वाले कुचक्र के प्रति गहन आक्रोश और असंतोष अभी तक बरकरार था। पिता गोकुल प्रसाद लगभग संतुलित थे, तीनों बेटो के प्रति। लेकिन छोटे और मध्यम परिवारों की तरह बड़े घरानों मे भी महिलाओं की राजनीति ज्यादा मजबूत होती है। गोकुल प्रसाद की पत्नी गीता देवी और दोनों बहुए मिल कर दो सालों से लगातार कोशिश मे थी कि गोकुल प्रसाद अपनी वसीयत फाइनल कर दें और बड़े बेटे को नाममात्र का हिस्सा दे के छुट्टी करें लेकिन, गोकुल प्रसाद को बड़े बेटे से भी मोह था। वो टालते रहे और मधुमेह की राजसी बीमारी ने उन्हें एकदम असमय ही बुला लिया।

माधव प्रसाद देहरादून के प्रसिद्ध स्कूल में बेटी के एडमिशन की प्रक्रिया पूरी कर पाते कि पत्नी मीनाक्षी का फोन मिला, आप तत्काल सब छोड़कर आ जाओ, पापा जी नहीं रहे, अब आपको पूरे समय वहीं रहना है और हर क्रिया-कलाप में मुख्य भूमिका निभाना है।

मीनाक्षी के पीहर वाले मीनाक्षी के घर आ चुके थे और आगे की संभावनाओं तथा गतिविधियों का आकलन कर रहे थे। माधव प्रसाद तत्काल देहरादून से रवाना होकर सीधे पिता की हवेली पहुँचे। मीनाक्षी अपने बेटे के साथ वहाँ पहले से ही मौजूद थी तथा परिवार के अन्य सदस्यों की भाँति प्रभावी रूप से शोक संतप्त लग रही थी।

माधव प्रसाद के वहाँ पहुँचने को किसी ने गंभीरता से नहीं लिया, बल्कि ऐसे शोक समय में भी दोनों भाइयों और माँ की नजरों में स्वयं के प्रति उपेक्षा और अरुचि का भाव देखकर माधव प्रसाद का आक्रोश और बढ़ गया। हालाँकि पत्नी मीनाक्षी ने पति के सामने सारे बिंदु स्पष्ट कर दिए थे। मीनाक्षी का कहना था कि वे बिलकुल नहीं चाहेंगे कि तुम बड़े बेटे की भूमिका निभाओ। हर काम में आगे रहो, लेकिन तुम्हें प्रभावी ढंग से परिवार के अग्रज होने का रोल निभाना है। ३५० करोड़ के औद्योगिक घराने के प्रथम वारिस होने के नाते तीसरे हिस्से के अधिकार के लिए तुम्हें सबसे आगे रहना हैं, चाहे वे तुम्हें पसंद करें या ना करें।

पत्नी–भक्त माधव प्रसाद वहाँ पहुँचते ही पूरे शोकमग्न होकर परिवार के सभी सदस्यों के आगे खड़े हो गए। गोकुल प्रसाद का मृत शरीर मृत्युपरांत किए जाने वाले क्रियाकलापों और रस्मो–रिवाज के पश्चात अंतिम दर्शन हेतु हवेली के मुख्य हाल में रखा जा चुका था। माधव प्रसाद के साथ ही दोनों छोटे भाई भी श्वेत वस्त्रों में पिता के मृत शरीर के सिरहाने शव से नजदीकी बनाते हुऐ शोक संतप्त मुद्रा में बैठे थे।

परिवार के सारे रिश्तेदार और परिचित लोग आ चुके थे। शवयात्रा शुरू होने से पहले परिवार के सदस्यों का रोदन तीव्र हो चला था। पिता के पावों मे सिर झुकाते माधव प्रसाद भावुक होकर वास्तव मे जोरो से रो पड़े। तभी उनके कानों में छोटे भाई की फुसफुसाती आवाज गूँजी– बस करो भैया, इतना नाटक मत करो। दो साल से तो कभी खबर नहीं ली पापा की, अब ढोंग कर रहे हो। माधव प्रसाद क्या बोलते। तभी पीछे बैठी मीनाक्षी का धीमा स्वर गूँजा देवर जी, इन दो साल की छोड़ो, इसके पहले के दस साल इन्होंने ही पापा जी को सुख–दु:ख में पूरा साथ दिया है।

छोटा भाई इस बात का जवाब देता, तभी गोकुल प्रसाद की पत्नी गीता जी की शोक संतप्त उदासीन, लेकिन जाग्रत नजरों ने सबको घूर कर देखा। सभी एकदम चुप हो गए।

शव–यात्रा प्रारंभ होने को थी। श्मशान घाट बहुत दूर था, अत: तय किया गया कि अगले चौराहे तक शव को कंधा देते हुए ले जाएं फिर वाहनों से श्मशान तक जाएं। माधव प्रसाद ने पहल की कि वो केश त्याग कर शवयात्रा के आगे कंडा लेकर चले लेकिन यह तय किया गया कि छोटे बेटे का पुत्र नितिन जो दादा जी को बहुत प्यारा था, वही अपने बाल दे और आगे चले।

माधव प्रसाद को लगा कि उनके बड़े बेटे होने का हक मारा गया। तभी उनको दूसरा झटका लगा, अर्थी के अगले दोनों सिरे दोनों छोटे भाइयों ने अपने कब्जे में ले लिए थे। मजबुरी में माधव प्रसाद ने अर्थी के पिछले एक सिरे से अपना कंधा लगाया। यद्यपि बीच– बीच में कंधे बदलते रहे, लेकिन दोनों छोटे भाइयों की कोशिश रही कि माधव प्रसाद अर्थी के अगले सिरों को कंधा देते जनता को ना दिखे। शायद उनकी यह सोच थी कि ऐसा करने से पिता की ३५० करोड़ की संपत्ति से बड़े भाई का दावा कमजोर होगा। वहीं माधव प्रसाद खुद को बड़ा बेटा होने के नाते परिवार का प्रथम सदस्य जतलाने का कोई अवसर छोड़ना नहीं चाहता था। तभी माधव प्रसाद के बेटे ने फुर्ती से अर्थी का एक अगला सिरा अपने अंकल से लगभग हथियाते हुए खुद के कंधे पर ले लिया और पिता की ओर नजर डाली माधव प्रसाद तत्काल आगे बढ़े और पिता की अर्थी के अगले सिरे को अपना कंधा लगा के धन्य हो गए। फिर तो उन्होंने शव वाहन के पास जाकर ही अपना कंधा हटाया।

कुछ सुकून आया माधव प्रसाद को कि बेटा राहुल भी चतुर हो चुका है। अर्थी को शव वाहन पर चढ़ाया गया

तीनों बेटे और कुछ परिजन भी वाहन पर सवार हुए और ये काफिला श्मशान घाट पहुँचा। शव को अग्नि देने हेतु प्रचलित परंपरानुसार उपस्थितों में से कुछ बुजुर्गों ने आवाज लगाई माधव बेटे पिता को अग्नि दो। माधव आगे बढ़े चिता को अग्नि देने, तभी दोनों छोटे भाई भी आगे आ गए। घोर शोकसंतप्त मुद्रा में उन्होंने व्यक्त किया कि वे भी अपने प्रिय पिता की चिता को अग्नि देंगे। और फिर तीनों ने संयुक्त रूप से चिता को अग्नि दी। यद्यपि उस वक्त माधव प्रसाद ने दोनों छोटे भाइयों को फुसफुसाते हुए ज्ञान दिया कि ये शास्त्रसम्मत नहीं है। पिता को अग्नि बड़ा बेटा ही देता है। लेकिन दोनों छोटे भाइयों ने ये ज्ञान लेने से इंकार कर दिया वरन, यह भी दर्शा दिया कि भैया तुम तो दो साल पहले ही पापा की नजरों से दूर हो चुके थे, उन्होंने तुम्हें अपना बेटा मानने से ही इंकार कर दिया था।

शवदाह के पश्चात शोकसभा हुई। श्रद्धांजलि प्रहसन में माधव प्रसाद ने अपने पिता को महान कर्मठ उद्योगपति का खिताब देते हुए खुद से पिता की नजदीकियों का जिक्र किया और यह दर्शाने की कोशिश की कि वे अपने बड़े बेटे से बहुत स्नेह करते थे। वहीं मझले बेटे ने अपने उद्गारों में दर्शा दिया कि बड़े भैया के अलग होने के बाद पापा हम दोनों भाइयों पर आश्रित हो गए थे और हमने उनकी इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा।

दाह-संस्कार के पश्चात उसी समय तीसरे दिन उठावने का और अगले दिन अस्थी संग्रह तय किया गया। उठावना गोकुल प्रसाद के अपने निवास पर ही होना है, यह सोचकर माधव प्रसाद निराश थे कि इसमें वे कुछ दखल नहीं दे सकते। यद्यपि उनकी इच्छा थी कि उठावना उनके घर पर हो, लेकिन ये व्यवहारिक नहीं था। मझले और छोटे दोनों भाई बड़े सुकून से थे कि माधव प्रसाद भले ही बड़े बेटे हो पर सारे कार्यक्रम उनके निवास पर और उनकी योजनानुसार ही होंगे।

शाम होते-होते बड़े घर यानी सेठ गोकुलदास के निवास पर बैठक में तीनो भाई, दोनों दामाद, मामा और कुछ रिश्तेदार विराजित थे। बैठक में भी कुछ विचित्र महसूस किया जा सकता था। बैठक के मध्य स्थान मे दोनों भाई और दामाद ने जगह घेर ली थी मजबूरन माधव प्रसाद को थोड़ा साइड मे ही बैठना पड़ा। सामान्य चर्चा में आगे के कार्यों की रूपरेखा भी बनने लगी, दूसरे दिन श्मशान घाट जाकर अस्थी संग्रह जिसे बोलचाल की भाषा मे फूल सोरना या सारी सोरना भी कहते हैं। जिसके अंतर्गत शवदाह के दूसरे दिन ठंडी हुई चिता से हड्डियाँ और अन्य अवयव संग्रह कर कहीं भी नदी मे विसर्जन किया जाता है। हर परिवार यह कार्य अपनी श्रद्धा और क्षमतानुसार या तो स्थानीय नदी में या आसपास नर्मदा नदी में या उज्जैन जाकर अथवा हरिद्वार जाकर गंगा किनारे संपन्न करते हैं।

बड़े दामाद अचानक पूछ बैठे अस्थी विसर्जन का क्या सोचा है।

मझले और छोटे दोनों भाई अचकचाये, संभवत: वे इस बारे मे ज्यादा चर्चा नहीं करना चाहते थे।

जीजा जी, कल सुबह ७ बजे अस्थि संग्रह के लिए श्मशान घाट जाएंगे। फिर कुछ अस्थि अवयव लेकर छोटा हरिद्वार चला जाएगा और बाकी अस्थियां यहीं नदी में विसर्जित कर देंगे।

मझले ने अस्थी संग्रह विसर्जन की यह योजना बताई, लेकिन बड़े भाई को आधिकारिक रूप से यह नहीं कहा कि भैया आपको सभी कार्यों में शामिल रहना है। अन्य बातों के बाद सभी विश्राम हेतु अपने-अपने ठिकानों पर प्रस्थित होने लगे। माधव प्रसाद भी नौ बजे के लगभग अपने घर पहुँचे। बहुत चिंतित और उदास थे, उन्हें लग रहा था सारा महत्व, सारा श्रेय और जवाबदारी वाली भूमिका दोनों छोटे भाइयों ने हथिया ली है। उन्हे स्वयं की उपस्थिति ज्यादा वजनदार नहीं लग रही थी। वे मानते थे कि खुद की बड़े बेटे के रूप में उपस्थिति और व्यवस्था में दखल से ही आगे जाकर संपत्ति पर बराबर का हक जताने मे सहायता मिलेगी।

मीनाक्षी ने पति से दिन भर की रिपोर्ट ली। वो भी चिंतित थी कि शव को कंधा देने, शवयात्रा में फोकस पर

रहने, कपाल क्रिया करने तथा उठावने के स्थान व समय की घोषणा करने आदि में उसके पति की कोई प्रभावी भूमिका नहीं रही। खैर, हमें कल कुछ खास करना होगा। अस्थि संग्रह, विसर्जन में कुछ रिश्तेदार भी रहेंगे। हमारा आधिकारिक दखल स्पष्ट दर्शित होना चाहिए। दोनों पति-पत्नी इसी बात के उपाय सोचते-सोचते निद्रा के आगोश मे जा चुके थे। उनकी संतोषजनक निद्रा इस बात का सूचक थी कि वे कुछ खास उपाय भी सोच चुके थे।

दूसरे दिन प्रात: ६ बजते-बजते शोक संतप्त घर के सारे सदस्य जाग चुके थे। अस्थि संग्रह के लिए जाने की तैयारी हो रही थी। अरे भाई! माधव जी को भी तो आ जाने दो, उनको भी तो साथ में ही चलना है ना। मामा ने उपस्थित लोगों पर नजर डालते हुए कहा।

मामा जी आप इस बात की चिंता ना करें, कल भैया को बता दिया था अब या तो उनको यहाँ आ जाना था अभी तक या हो सकता है वो सीधे वहीं आ जाएं।

अरे बेटा! कुछ देर इंतजार कर लेते हैं।

मामा जी ऐसे कामों में किसी का इंतजार नहीं करते हैं और वैसे भी उन्हें क्या करना है? सारा काम तो हम दोनों को ही निपटाना है, आप तो जानते ही है, भैया तो दो साल से बिलकुल अलग ही हो गए थे। मझले बेटे ने सभी उपस्थितों की जानकारी के लिए कुछ ऊँचे स्वर में कहा और तत्काल छोटे ने भी सुर में सुर मिलाते हुए बात पूरी की। और हाँ मामा जी बाबू जी भी बड़े भैया को बिलकुल पसंद नहीं करते थे।

मामा का अधिकार भी बस इतना ही दखल देने का था। ठीक है, आ जाएगा वो भी चलो।

और इस तरह ८-१० लोगों का ये काफिला श्मशान की ओर चल पड़ा। दोनों भाइयों की यही इच्छा थी कि किसी तरह माधव प्रसाद हाइलाइट ना हो। रुकी हुई बात फिर चली। अबकि बार बड़े दामाद बोले भाई माधव जी को अब तक तो आ जाना था। ऐसे समय ऐसी लापरवाही ठीक नहीं होती।

अरे जीजा जी! बड़े भैया की इन्हीं लापरवाहियों की वजह से तो बाबूजी ने उन्हें परिवार के बिजनेस से भी अलग कर दिया था। तब से हम दोनों ही बाबू जी के कंधे से कंधा मिलाकर लगे रहे। मझले ने दामाद जी की बातों का रुख अपनी दिशा में कर लिया। बाबू जी का मन बड़े भैया की ओर से तभी से हट गया था। और उन्होंने तो कह भी दिया था कि माधव अब से तू तेरा काम देख और अपने हिसाब से व्यापार कर। अब इस घर से तेरा कोई लेना देना नहीं। इन लोगों को परेशान मत करना। छोटे, ने मानो अंतिम निर्णय सुना दिया।

इन्हीं बातों के चलते सभी श्मशान पहुँच रहे थे, तभी शास्त्री जी उनके घरेलू पण्डित सामने से अपनी मोपेड पर आते दिखे। दोनों भाई पण्डित जी को सुबह-सुबह वहाँ देख चौंके, अरे शास्त्री जी! आप यहाँ इतनी सुबह?

बस जजमान आपके काम से ही आया था। कहते-कहते शास्त्री जी की मोपेड मझले के पास से गुजरती जा चुकी थी। दोनों भाई कुछ सोच में थे शास्त्री जी, हमारे काम से यहाँ हमसे पहले कुछ समझ नहीं आया। खैर जाने दो हमें क्या करना। अस्थि संग्रह या विसर्जन के लिए पण्डित की कोई जरूरत नहीं पड़ती, पता नहीं किस काम के लिए यहाँ आया था ये?

श्मशान घाट सामने ही था। सभी लोग वाहन से उतरे ओर चितास्थल की ओर बढ़े।

जैसा कि होता है शहरों के श्मशानों पर ४-६ चिताओं के जलाने की व्यवस्था होती है। सभी की नजरें कल किए गए शवदाह वाले स्थान की ओर थी। कुछ असमंजस में पड़े मझले ने छोटे की ओर देखा, क्यों छोटे यहीं जलाया था ना चिता को?

हाँ भैया, ये दूसरे नंबर वाली जगह ही तो थी।

लेकिन यहाँ तो? सभी की नजरें उस दूसरे नंबर वाली चिता के स्थान पर थी। वहाँ का दृश्य इन सब की अपेक्षा के विपरीत था जहाँ जली हुई चिता राख और अस्थियों के अवशेष होना था, वहाँ गोबर से लिपा-पुता स्थान, आटे के पिण्ड और पूजा की सामग्री नजर आ रही

थी। सभी सोच में डूबे थे, भ्रमित थे, शायद कोई गलतफहमी हुई है शवदाह का स्थान दूसरा होगा।

तभी सामने से वहाँ का चौकीदार नाथू आता दिखा। मझले ने तुरंत उसकी ओर नजरें घुमाई अरे नाथू भाई! कल बाबूजी की चिता यहीं पर....

हाँ सेठ, वहीं तो हुआ था कल अंतिम संस्कार।

तो फिर ये सब क्या है?

क्या?

अरे, वो चिता के अवशेष, राख, अस्थियां आदि कहाँ है? हम लोग अस्थि संग्रह के लिए आए हैं।

परेशान से मझले ने नाथू की आँखों में आँखें डालकर पूछा। काफिले के सारे लोग अचंभित से थे और सबकी नजरें नाथू के चेहरे पर गड़ी थी। नाथू के जवाब के इंतजार में मानो सबकी श्वास रुक सी गई थी।

अरे सेठ! कैसी बात करते हो वो तो सब हो गया।

क्या हो गया? मझले की बेचैनी तीव्रतम स्तर पर पहुँच चुकी थी।

अरे सेठ! अभी–अभी तो आपके बड़े भैया गए हैं यहाँ से सब कुछ तो कर दिया उन्होंने।

क्या कर दिया? छोटा चिल्लाया

कौन आए थे? मझला दहाड़ा

क्या? दोनों दामाद और मामा सभी की आँखें चौड़ी हो गई थी।

अरे! वो आपके बड़े भाई माधव सेठ और कोई पण्डित था। सुबह ६ बजे ही आ गए थे, मैं तो सोया था, घरवाली ने उठाया कि सेठ आए हैं।

फिर दोनों भाई एक साथ बोल पड़े।

फिर क्या उन्होंने सारी अस्थियाँ इकट्ठी कर एक थैली में भरकर अलग रख लिया तथा सारी राख और मैटेरियल एक बड़े बोरे में भरकर यहीं नदी में विसर्जित कर दिया। पूजा पाठ भी करी मुझे कुछ ईनाम दिया और अस्थियों की थैली साथ ले गए।

ओह! मझला चीखा तुमने उन्हे रोका क्यों नहीं।

साब जी मैं उनको कैसे रोकता? उनका बाप मरा, वो क्रिया करम कर रहें हैं, मैं रोकने वाला कौन?

अरे! वो नहीं, हम हैं उनके असली बेटे और असली वारिस, वो नहीं कर सकता ऐसा। दोनों भाई विचलित हो रहे थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि अब क्या करना चाहिए। देखा मामा जी उसकी करतूत, कितना कमीना निकला वो हमारे आने से पहले बाबूजी की अस्थियाँ ले भागा। मझला विलाप करने लगा। बाबूजी को मरने के बाद भी चैन नहीं लेने देगा। बड़े भैया ने यह बहुत अधर्म का काम किया है।

दोनों दामाद भी हतप्रभ थे, भई ये तो विचित्र काम किया माधव जी ने। बिलकुल गलत है ये तो।

मामा जी देखा आपने, क्या किया भैया ने। दोनों भाई बड़े आक्रोश के साथ मामा के सामने खड़े होकर उनसे प्रतिक्रिया चाह रहे थे, मानो मामा भी जवाबदार है इस घटना के लिए।

मामा जी भी विचलित थे क्या कहते। अब मैं क्या बोलूं तुम भाइयों के बीच।

नहीं, मामा जी भैया को सबक सिखाना ही पड़ेगा, इस बदतमीजी का जवाब देंगे हम उनको।

क्या करना अब भैया, छोटे ने मझले की ओर देखा।

चलो उसके घर, चाहे लड़ना पड़े, मारना पीटना हो जाए बाबू जी की आत्मा को दुख नहीं होने देंगे। भैया से अस्थियाँ लेकर हम ही उनकी शांति क्रियाएं करेंगे। मामा जी चलिए आप भी हमारे साथ।

और ये घनघोर आक्रोशित काफिला फिर चल पड़ा, न्यू कालोनी में बने माधव प्रसाद के बंगले की ओर। वाहन बहुत तेजी से रास्ता काट रहा था और वाहन से तेज चल रहा था, दोनों भाइयों का दिमाग । आगे क्या करना है, यही घूम रहा था दिमाग में।

छोटे, आज तो भाई साहब से सारा हिसाब साफ कर लेते हैं।

भैया, उनकी नजर अपनी प्रापर्टी और बिजनेस पर है। उनकी कोशिश होगी कि वो खुद को परिवार का

मुखिया साबित करें और जायदाद में से बराबरी का बल्कि ज्यादा से ज्यादा हिस्सा हड़प लें।

अरे! हम उनकी चाल सफल नहीं होने देंगे, माँ भी तो हमारे साथ है।

इसी तरह की आक्रोश भरी बातें करते हुए सब लोग माधव प्रसाद के बंगले के सामने पहुँच चुके थे। बड़ा गेट बन्द था। चौकीदार बाहर ही स्टूल लगाकर बैठा था।

दोनों भाई मेन गेट खोलते हुए अंदर जाने लगे, तभी चौकीदार ने रोका साब जी घर पर कोई नहीं है। क्यों? कहाँ गए भाई साहब? पता नहीं मालिक और मालकिन तो सुबह से ही बाहर हैं। राहुल बाबा भी कहीं बाहर निकल गए हैं। अंदर कोई नहीं है।

ओफ! दोनों भाइयों की परेशानी आसमान छूने लगी। दोनों दामाद और मामा भी किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े, दोनों भाइयों को देख रहे थे, हालाँकि अब उन्हें दोनों की ये बेचैनी और आक्रोश जरा भी नहीं सुहा रहा था।

देखो छोटे, अब हमको दो काम करना है एक तो भाई साहब को खोजते हैं वो शहर में ही कहीं छुपे होंगे और दूसरे अभी चलते हैं पुलिस स्टेशन।

पुलिस थाना क्यों? मामा जी चौके दोनों दामाद भी चकराए वहाँ क्या होगा?

तुम चलो तो टी आई अपना खास है, उससे राय लेते हैं। इस तरह किसी मृत की चिता से अस्थियाँ गायब कर देना भी तो चोरी में आता है, हम भैया के नाम की रिपोर्ट डालेंगे।

अरे बेटा! ये ठीक नहीं होगा मामा जी ने संकोच जताया। लोग क्या कहेंगे?

कुछ भी कहें मामा जी बाबू जी की आत्मा की शांति के लिए मैं कुछ भी करने से पीछे नहीं हटूँगा। तुम चलो तो सही। और फिर दोनों भाई पूरे जोश खरोश से तथा बाकि दोनों दामाद एवं मामा दिग्भ्रमित से पुलिस थाने की ओर चल पड़े।

टी आई भदोरिया इस काफिले को थाने में प्रवेश करते देख आश्चर्य में पड़ गया।

उसे भी जानकारी थी कि सेठ गोकुलदास की मृत्यु हो गई है। ऐसे में ये लोग यहाँ कैसे?

क्या हुआ सेठ इधर कैसे? टी आई गम्भीर था।

अरे भदोरिया जी! क्या कहें बड़े शर्म की बात है पर कहना पड़ रहा है कि एक चोरी की रिपोर्ट डालनी है और तत्काल कार्यवाही भी करनी है।

चोरी किसके यहाँ? कब? टी आई चौंका। दरअसल क्या बताएं मझला और छोटा दोनों सोचने लगे और दोनों क्या, बाकी लोग भी सोच रहे थे कि क्या रिपोर्ट लिखवाई जाएगी। कुछ क्षणों के पश्चात मझले ने दिमाग में अपनी बात को तार्किक बनाते हुए कहा भदोरिया जी हमारे मृत पिताश्री के अस्थि अवशेष की चोरी हो गई है आज श्मशान घाट से।

क्या? अस्थि अवशेष की चोरी? भदोरिया की आँखें खुली की खुली रह गई। क्या कह रहे हो यार! अब ये मरे हुए आदमी की हड्डियों को कौन चुरायेगा?

हुई है सर, ये चोरी और चुराने वाला और कोई नहीं हमारा बड़ा भाई ही है।

क्या? माधव सेठ?

जी हाँ वही।

क्या बात करते हो यार! मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा।

मैं बताता हूँ, छोटे ने आगे बढ़कर टी आई को कुछ विस्तार से बताया। अरे! पर वो तो खुद बड़ा बेटा है, वो क्यों बाप की अस्थियाँ चुरायेगा?

उनको हरिद्वार ले जाकर विसर्जन करने के लिए।

तो इसमें क्या गलत है यार, चोरी कैसी ये तो होता ही है।

सर, आप नहीं समझ रहे दरअसल बाबू जी ने बड़े भैया को दो साल पहले ही घर से निकाल दिया था। उनका अब हमारे परिवार से कोई ताल्लुक नहीं। हमने कल बाबू जी का अंतिम संस्कार किया था और आज सुबह हम अस्थियाँ विसर्जन के लिए श्मशान घाट पहुँचे उसके पहले ही भाई साहब वहीं चुपचाप जाकर अस्थियाँ चुराकर गायब हो गए।

तो वो गायब क्यों हो गए ?

अरे, वो हमसे डरे होंगे कि हम उनसे अस्थियाँ वापस ना छुड़ा लें। मझले ने झुंझलाकर टी आई को कुछ ऊँचे स्वर में बोला।

यार सेठ! मेरी तो समझ से बाहर है, बाप मरा एक बेटे ने उसकी अस्थियां संग्रह कर नदी में विसर्जित कर दी या कहीं ओर ले गया तो इसमें गलत क्या हुआ ?

गलत ये हुआ कि उसको ये अधिकार ही नहीं था। ये कर्तव्य हमारा था हम करते।

खैर, अब मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ इस मामले में ?

आप भैया के विरुद्ध अस्थि चोरी की रिपोर्ट लिखिए और उनको खोजिए।

क्या ? अस्थि चोरी की रिपोर्ट ? सेठ मेरे नॉलेज में ऐसी कोई कानूनी धारा ही नहीं है जो इस बात के लिए लागू हो, फिर रिपोर्ट कैसे लिखेंगे ?

आपको कुछ तो करना होगा सर। अच्छा, हम किन्हीं अज्ञात लोगों द्वारा चोरी की गई ऐसा बताएं तो ? भदौरिया ने उपाय बताया। नहीं सर, पूरे प्रमाण हैं श्मशान के चौकीदार का कथन है, भैया ही पण्डित के साथ आए और पूजा पाठ करके अस्थियाँ ले गए। आप भैया के नाम से ही रिपोर्ट डालो।

ऐसा मैं नहीं कर सकता प्लीज।

मतलब, आपसे हमें कोई हेल्प नहीं मिलेगी इस मामले में ?

अच्छा चलो मैं ५–७ जवान लगाकर माधव सेठ को खोजने की कोशिश कर सकता हूँ, उनका पता लगाकर तुम्हें बता दूँगा फिर आगे का काम तुम्हारा। ठीक है, तुम ये तो पता लगाओ हम देखते हैं आगे क्या करना है ?

बड़ी देर से मामा जी इस बहस को परेशान होकर सुन रहे थे। बेटा अब ये सब छोड़ो पहले घर चलो। वहाँ इत्मीनान से सोचना क्या करना है। और फिर कल के उठावने की भी तैयारी करनी है।

ये कहते हुए मामा जी दोनों भाईयों की पीठ पर हाथ रखते हुए उन्हें थाने के बाहर ले चले।

टी आई भदौरिया अपनी कुर्सी पर बैठा, सर पकड़ते हुए इन लोगों को जाते देख रहा था। उसे अब भी समझ नहीं आया था कि आखिर मामला क्या है।

थके हारे खिलाड़ियों का ये कारवां वापस अपने घर की ओर जा रहा था। घर वाले भी परेशान थे कि सुबह सात बजे से गए सब लोग अभी तक क्यों नहीं आए।

घर पहुँचते ही दोनों बेटों ने माँ को बड़े भाई की करतूत बताई माँ भी विलाप करने लगी। कुछ अन्य बुजुर्ग महिलाएँ भी उस रुदन में साथ दे रही थीं। उनके विलाप में जिस बात को बार–बार दोहराया जा रहा था वो ये था कि कलयुगी बेटा बाप को मरने के बाद भी चैन नहीं लेने दे रहा है। मेरे स्वामी की मुक्ति कैसे होगी ? ना जाने कहाँ रखे होंगे अस्थि अवशेष ?

इसी प्रकार विलाप–प्रलाप के चलते दिन बिता। अगले दिन दोपहर तक माधव प्रसाद का कहीं पता ना था। उनके घर पर भी अभी तक कोई नहीं पहुँचा था। घड़ी का काँटा बारह पार करते ही उठावने की तैयारी होने लगी। तभी एक भुचाल आया। एक बड़े वाहन में बड़ा बेटा माधव प्रसाद पत्नी मीनाक्षी अपने बेटे–बेटी के साथ उतरे साथ में माधव प्रसाद के ससुराल पक्ष के लोग भी थे।

पांडाल में बैठे दोनों भाइयों और दामादों की भृगुटी तन गई थी। बाहर से आने वाले मेहमान और नगर के सभ्रांत लोग आना शुरू हो गए थे। माधव प्रसाद भी अपने मित्रों और ससुराल पक्ष के लोगों के साथ दोनों भाइयों और दामादों के नजदीक बैठे थे। तभी मझले भाई से रहा नहीं गया। बड़े आक्रोशित स्वर में वो पूछ ही बैठा कहाँ गायब थे भैया, आप चोरों की तरह ?

तुम्हें क्या मतलब ? मैं कहाँ था और चोर होंगे, तुम जरा तमीज से बात करो।

बाबू जी की अस्थियाँ चुरा ले गए आपको शरम नहीं आई ?

अस्थियाँ चुराई नहीं मैंने बाकायदा पूजा पाठ करके अस्थि संग्रह की है।

अब कहाँ है अस्थियाँ ? छोटा भी तेश में आ चुका था।

वो सब व्यवस्था मैंने कर ली है, बाबू जी का सारा काम मैं अच्छी तरह से करूँगा।

बाबू जी के सारे कार्य तुम नहीं हम करेंगे। हम ही उनके वारिस हैं।

तुमसे पहले मैं हूँ, उनका बड़ा बेटा उनका प्रथम वारिस समझे। माधव प्रसाद चीखे, तभी महिलाओं की ओर से माँ का चित्कार गूँजा अरे, मेरे पति की अस्थियाँ कहाँ ले गए, कैसे होगा उनका उद्धार ?

माता जी आप बिलकुल चिंता ना करें। अस्थियाँ लेकर आपका पोता हरिद्वार के लिए रवाना हो चुका है। उठावने के बाद मैं भी हरिद्वार जाकर वहाँ विधि-विधान से पूरा तर्पण विसर्जन करूँगा। यह सुनना था कि दोनों भाई सकते में आ गए। बाबू जी की अस्थियाँ हरिद्वार रवाना हो चुकी है ? बाबू जी के अंतिम कार्यों मे बड़े भाई का दखल उनको सीधे-सीधे परिवार की संपत्ति के बँटवारे पर बढ़ता दबाव महसूस हो रहा था।

अचानक छोटा भाई जोरों से रोने-चीखने लगा। भैया, तुमने अच्छा नहीं किया चोरी से अस्थियाँ ले गए, अब तुम्हारा इस घर पर कोई हक नहीं। बाबू जी ने दो साल पहले तुमको घर से निकाल दिया था। अब तुम यहाँ से भी जाओ। यहाँ तुम्हारी कोई जरूरत नहीं।

जरूरत कैसे नहीं। बाप था वो मेरा, बड़ा बेटा हूँ मैं इस घर का। बारहवें तक इस घर मे रहूँगा, सारे उत्तर कार्य करूँगा। इसके बाद सकल पंच की बैठक बुलवाकर अपना हक लूँगा। तुम्हारी मनमानी नहीं चलेगी समझे। माधव प्रसाद एक सांस में अपना सारा इरादा बता चुके थे।

दोनों भाईयों का क्रोध भी चरम पर था। अगला घटना क्रम हाथापाई का ही होना था, तभी मामा और दामादों ने बीच-बचाव कर तीनों को समझाया। वहाँ उपस्थित समाज के सारे गणमान्य और रिश्तेदार आश्चर्यचकित होकर यह घरेलू सर-फुटव्वल देख रहे थे। धीरे-धीरे वे भी दो भागों मे विभक्त हो रहे थे। कुछ माधव प्रसाद के पक्ष में तो कुछ शेष परिवार के पक्ष में।

तभी माधव प्रसाद के श्वसुर जो स्वयं एक बड़े उद्योगपति भी थे ने निर्णायक स्वर में ऊँची आवाज में माधव प्रसाद को समझाया। अभी १२ दिनों तक कोई विवाद ना करें। बाबू जी के सारे कार्य निपटाएं। फिर समाज के हम सब लोग बाकायदा बैठकर आप लोगों का मामला सुलझाएंगे। किसी के साथ अन्याय नहीं होगा। अब उठावने का समय हो गया है, सब शांत हो जाओ। माधव प्रसाद एक विजयी मुस्कान लिए अपने स्थान पर बैठ चुका था, वहीं दोनों भाई बेचैन, आहत, कुछ पराजित से महसूस कर रहे थे। महिलाओं के बीच बैठी माधव प्रसाद की पत्नी मीनाक्षी संतुष्ट थी, उनके चेहरे पर अपनी योजना सफल हो जाने के भाव थे।

स्वर्गीय सेठ गोकुल दास की विधवा पत्नी गीता जी असमंजस में थी। शोक करें, गुस्सा हो या शांत बनी रहें। और उठावने में सम्मिलित होने आए कुछ लोगों मे फुसफुसाहट जारी थी। सब माया का खेल है। कौन बेटा, कौन भाई, सब दौलत के दिवाने हैं। भगवान बचाए ऐसी दौलत से।

संपर्कः २२४, सिल्वर हील, कालोनी धार,
जिला धार, मध्य प्रदेश, मो. 8236940201,
Email-sharma.mahesh46@yahoo.com

इंग्लैंड से प्रवासी लेखिकाओं की हिंदी-उर्दू कहानियाँ 'सांझी कथा-यात्रा'

डॉ. कमल किशोर गोयनका

इंग्लैंड में ऐसे दंपति कम ही हैं जो डॉ. महेंद्र वर्मा एवं उषा वर्मा के समान हिंदी भाषा तथा साहित्य के शिक्षण के साथ उसके सर्जनात्मक कार्यों से दशकों तक समर्पित रहे हों। यदि पति–पत्नी समान रूप से प्रबुद्ध हों तथा ज्ञान के साधक हों एवं उनका क्षेत्र भी प्राय: समान हो तो उसके परिणाम अत्यंत सुखद होते हैं। डॉ. महेंद्र वर्मा ने भाषा विज्ञान पर अद्‌भुत कार्य किया है और सत्तर वर्ष की आयु में भी हिंदी भाषा शास्त्र पर काम कर रहे हैं। उनकी पत्नी भी यॉर्क एवं लीड्स विश्वविद्यालय में पढ़ाती रही हैं और केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से परीक्षक के रूप में जुड़ी हुई हैं, लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे कवयित्री एवं लेखिका भी हैं उनके कविता संग्रह "क्षितिज अधूरे" तथा "कोई तो सुनेगा" प्रकाशित हो चुके हैं। एक कहानी संग्रह "कारावास" भी पिछले महीने आ गया है।

उषा वर्मा ने इधर एक अन्य महत्वपूर्ण काम किया है और वह है इंग्लैंड की प्रवासी हिंदी–उर्दू की लेखिकाओं की कहानियों का संयुक्त संकलन "सांझी कथा यात्रा" का प्रकाशन। उर्दू कहानियों का हिंदी में अनुवाद उन्होंने स्वयं किया है। यह निश्चय ही अपने प्रकार का पहला संकलन है जो इंग्लैंड में रहने वाली हिंदी व उर्दू कहानी लेखिकाओं की कहानियों को एकत्र कर के प्रकाशित कराया गया है। उषा वर्मा के अनुसार इस कहानी–संग्रह का बीजीकरण लंदन की एक कथा गोष्ठी में कैसर तमकीन की कहानी "गंगा जमुनी" को सुन कर हुआ था इस कहानी से उषा वर्मा के मन में यह आया कि हिंदी उर्दू का मिला–जुला कहानी संकलन तैयार कर के देखा जाए कि क्या हिंदी उर्दू की कहानी लेखिकाओं की संवेदनाओं एवं चिंतन में कोई समानता है या नहीं और यदि भिन्नता है तो वह किस रूप में है। यह एक अत्यंत स्वाभाविक जिज्ञासा है कि 'गंगा जमुनी' में गंगा क्या है तथा जमुनी क्या है, तथा दोनों का कहीं संगम होता भी है या नहीं। इस जिज्ञासा के उत्तर के रूप में "सांझी कथा यात्रा" कहानी संकलन अब हमारे सामने है।

इस कहानी संकलन में बारह कहानियाँ हैं– सात हिंदी की पाँच उर्दू की। उषा वर्मा को चाँद शर्मा की कहानी विलंब से मिली जो इस संकलन में आने से रह गई, जो दूसरे तेईस हिंदी उर्दू कहानी संकलन "प्रवास में पहली कहानी" में शीघ्र ही प्रकाशित होगी। वैसे इस प्रकार के कहानी तथा कविता संकलनों में जो कठिनाइयाँ, बाधाएँ तथा चुनौतियाँ आती हैं तथा जो कठिन परिश्रम करना पड़ता है, उसे संकोच के कारण उषा वर्मा ने विस्तार से नहीं लिखा है, परन्तु सहृदय पाठक इसे सहज रूप से समझ सकते हैं। इस कहानी–संकलन की बारह लेखिकाओं में से अधिकांश का जन्म अविभाजित भारत में हुआ है तथा सभी लेखन से जुड़ी हैं। इनमें हिंदी संसार उषा वर्मा, उषा राजे सक्सेना, कीर्ति चौधरी, दिव्या माथुर, शैल अग्रवाल, सलमा जैदी आदि के नामों तथा साहित्यिक कृतित्व से परिचित रहा है, लेकिन इस संकलन की उपलब्धि है कि हम अतिया खान, फिरोज मुखर्जी, फिरोजा जफर नैय्यर खान, रमा जोशी तथा सफिया सिद्दीकी के कहानी कौशल से भी अवगत होते हैं तथा इस प्रकार इंग्लैंड की हिंदी–उर्दू कहानी लेखिकाओं का एक सांझा बिम्ब निर्मित होता है। भारत में भी ऐसा प्रयास नहीं हुआ है, अंत: उषा वर्मा की इस मौलिक कल्पना के लिए उन्हें साधुवाद। देश की आज की परिस्थितियों में हिंदी–उर्दू रचनाकारों के ऐसे सम्मिलित रचनात्मक प्रयास होते रहने चाहिए। प्रेमचंद ने अपनी कहानी ,'हिंसा परमो धर्म:' लिख कर हिंदू एवं मुसलिम धर्म को एक पात्र की दृष्टि से दिखाया था और अब उषा वर्मा दोनों संप्रदायों तथा दोनों भाषाओं के सर्जनात्मक एकत्व को प्रदर्शित करने के लिए इस सांझी कथायात्रा को लेकर आईं हैं।

इस कहानी संकलन में कुछ कहानियाँ परदेश एवं स्वदेश की गहरी अनुभूतियों को उदघाटित करती हैं। कहानी में यह स्वदेश परदेश का द्वन्द्व तथा स्वदेश के प्रति मोह एवं आकर्षण का आरंभ प्रेमचंद की कहानी 'यही मेरी मातृभूमि है', से आरंभ होता है जो पहली बार उर्दू में सन् १९०८ में छपी थी। आज जब कि परिस्थिति बदल गई है और पूरा विश्व एक गाँव में बदल गया है, किंतु अभी भी भारतीयों के मन में देशप्रेम समाप्त नहीं हुआ है। अतिया खान की कहानी 'पराए देश में' परदेश की यातनाओं और यंत्रणाओं को उजागर कर के अपने नायक तारिक को परदेश की और मोड़ देती है। तारिक कहानी के अंत में कहता है "मैने परदेशियों की जिंदगी बहुत देख ली। मैं अब अपने वतन जाना चाहता हूँ। भले ही पेट भर खाना न मिले, पर इस तरह बेइज्जती के साथ निकाले जाने का अंदेशा तो न रहेगा"। दिव्या माथुर की कहानी "ठुल्ला किलब" एक रोचक कहानी है। इसमें इंग्लैंड में रहने वाले बूढ़े माता–पिता तथा उनके युवा संतानों की इच्छाओं, अभावों, अकेलेपन तथा पीढ़ियों के अंतर को बड़े हास्य व्यंग्यतता रोचकता से प्रस्तुत किया गया है। इंग्लैंड में हिंदी भाषी समाज किस रूप में अपनी भाषा त्योहार तथा जीवन मूल्यों को विस्मृत कर रहा है, उसका यथार्थपूर्ण वर्णन है। उषा राजे सक्सेना की "तान्या" एक आधुनिक स्त्री है और उच्च शिक्षा प्राप्त करके इंग्लैंड पहुँचती है। उसके पास धन दौलत, शोहरत तथा जीवन की सभी सुविधाएँ हैं। वह उन्मुक्त जीवन जीती है, शादी ब्याह के ठहराव तथा समझौते उसे नहीं चाहिये। उसे स्वतंत्रता प्रिय है। लंदन में उसे मजे करने के लिए लड़के तो खूब मिलते हैं परंतु जीवन साथी नहीं मिलते। तान्या एक स्मरणीय कहानी है। पर अंत में वह अपने भारतीय मूल्यों की और लौटती है और तुहिन मजूमदार को जीवन साथी के रूप में चुन लेती है। उषा वर्मा की कहानी "ग़ैनी" में रौनी पात्र की सर्जना मर्मस्पर्शी है। वह इंग्लैंड में अंग्रेजों की नस्लभेदी अमानविकता का शिकार होता है और अपने व्यवहार तथा संवेदनाओं के कारण हमारी स्मृति का अंग बन जाता है। इस नस्लभेद के सामने मनुष्यता और मानवाधिकार सभी निष्प्रभावी हो जाते हैं, परंतु काला रौनी "मिस रीमा आई लव यू", लिखकर अपनी प्रिय अनुभूतियों को जीवित रखता है। रौनी बड़ी कुशलता से तथा कलात्मकता से रची कहानी है। नैय्यर खान की कहानी "दिल ही तो है" पाकिस्तान के एक संपन्न मुस्लिम परिवार तथा उसमें काम करने वाले नौकर नौकरानियों का बड़ा ही वास्तविक चित्र अंकित करती है। "राख का ढेर" कहानी बचपन से वृद्धावस्था तक के प्रेम की अवस्थाओं का चित्रण करती है तथा "तब भी नहीं" कहानी एक बच्चे की मनोवैज्ञानिक कहानी है।

इस प्रकार सांझी कथा यात्रा हिंदी उर्दू की प्रवासी लेखिकाओं के कहानी संसार की कुछ यथार्थ एवं मार्मिक अनुभूतियों तथा उनके सरोकारों का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रह की कई कहानियाँ स्वदेश–परदेश के द्वन्द्व और देशीय मूल्यों की श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करती हैं, तथा कुछ कहानियाँ स्त्री–पुरुष संबंध, स्त्री विमर्श, बाल मनोविज्ञान, पाकिस्तानी जीवन, प्रेम के स्वरूप, आदि विभिन्न पक्षों को बड़ी कुशलता से उजागर करती हैं। उषा वर्मा का यह प्रयास स्तुत्य है। यह हिंदी–उर्दू को एक साथ पाठकों तक पहुँचाता है तथा यह भी बताता है कि इंग्लैंड में प्रवासी लेखिकाओं में किस प्रकार हिंदी–उर्दू कहानी को जीवित रखा है। यह एक नयी परंपरा की शुरुआत है और मुझे विश्वास है कि इसका सर्वत्र स्वागत होगा तथा भारत के हिंदी उर्दू लेखक एवं लेखिकाएं भी ऐसा प्रयोग कर के इस परंपरा को विकसित करेंगे। कमलेश्वर हिंदी उर्दू का एक सांझा साहित्य का इतिहास लिख रहे थे लेकिन वे बीच ही में छोड़कर चले गए। उषा वर्मा ने हिंदी उर्दू साहित्य को सांझे रूप में रखने पढ़ने का रास्ता खोल दिया है, अतः इस और तो हम अपने कदम बढ़ा ही सकते हैं।

संपर्कः ए 98, अशोक विहार,फेज– प्रथम, दिल्ली–110052 **मो. 9811052469**

रिश्ते

उषा वर्मा

कर्नल स्टुअर्ट राबर्ट सुबह कुत्ते को लेकर घूमने गए थे, लौटे तो अखबार और चाय का प्याला लेकर बैठ गए। अखबार देखने लगे। रियाटरमेंट के बाद से यह उनका रोज का क्रम था। कायदे कानून के पाबंद कर्नल साहब अखबार पढ़कर अक्सर ही अपना गुबार निकालते। मसलन, जमाना कितना खराब हो गया है, पॉप म्यूजिक भी कोई म्यूजिक है, कि बच्चों में कोई डिसिप्लिन नहीं बचा वगैरह, वगैरह। हेल टू दिस इगैलिटेरियन फिलॉसफी। आज की खबर ने तो उन्हें बिलकुल ही परेशान कर दिया था तो अब होमोसेक्सुअल्स को सर्विसेज में भी स्वीकार कर लेंगे। अब रह ही क्या गया ?

कर्नल साहब छः फुट चार इंच लंबे, गठा शरीर, चौड़ा माथा, बड़े ही रौबीले व्यक्तित्व के मालिक थे। सर पर बाल थोड़े ही बचे थे। मोटे चश्में के पीछे सतर्क निगाहों में एक पैनापन था। अपने जूनियर्स से बातें करते समय उनकी आँखें सिकुड़ी रहती मानो वह अपना भेद छिपा कर रखना चाहते हों। सर्विसेज से रिटायरमेंट के बाद उन्होंने टेडकास्टर के इलाके में एक खूबसूरत बँगला खरीद लिया था। और बाकी जिंदगी यहीं आराम से रहने का उनका इरादा था। यद्यपि उनकी पत्नी को इंग्लैंड पसंद नहीं था, पर उन्होंने तो आजीवन कभी कोई विरोध किया ही नहीं तो अब इस उम्र में क्या बोलतीं।

कर्नल साहब की पत्नी ऐनी स्वभाव से शांत, सौम्य चुप रहने वाली थीं। सर्विसेज में स्टोर रूम की इंचार्ज थीं, वहीं कर्नल साहब से उनकी मुलाकात हुई। एक अजीब आकर्षण से दोनों बंधते गए और एक कर्नल साहब ने हमेशा 'यस सर, 'यस सर' कहने वाली ऐनी को घेर लिया, और बोले ''ऐनी, विल यू मेरी मी ?'' ''मुझसे शादी करोगी ?'' ऐनी को लगा एक साथ हजार हजार पावर के बल्ब की रोशनी से उनकी आँखें सामना नहीं कर पा रही हैं। उनकी आँखें सच ही प्यार के आवेश में झुक गईं और चेहरे पर एक नरम मुस्कुराहट फैल गई।

बिना कुछ कहे वहाँ से चली गईं। कर्नल साहब की आँखें थोड़ी सिकुड़ी फिर होंठो को गोल करके सीटी बजाते हुए कमरे में घूमने लगे।

ऐनी आई दूसरे दिन और बोली, मैंने जॉब से इस्तीफा देने का निश्चय किया है।

कब से ? पूछते हुए कर्नल साहब ने अपनी दोनों बाहें फैला दीं।

जब भी,

आज से,

'यस डियर' और तब से आज तक ऐनी ने कर्नल साहब की हर बात के जवाब में यस सर की जगह 'यस डियर' ही कहा था।

कर्नल साहब ने भी उन्हें अपने सबॉर्डीनेट की तरह हमेशा समझा।

अभी वह अखबार पढ़कर चाय की आखिरी बूंद गले के नीचे उतार रहे थे कि फोन की घंटी बजने लगी और उसी समय उनकी पत्नी ऐनी कंजरवेटरी में दाखिल हुईं। फोन उठाकर सैली से हेलो कहा, दो चार वाक्य के बाद ही उनका चेहरा गुस्से से लाल हो गया। फोन पटक कर रख दिया और ऐनी से बोले, ''सुन

लिया अपने बेटे के बारे में अब वह कभी भी इस घर में नहीं आ सकता। उस पापी की यही सजा है, एड्स पॉजिटिव, ब्लड–टेस्ट। मैं उसकी शक्ल भी नहीं देखना चाहता। इस घर में कोई भी उस नीच से नहीं मिलेगा।''

कर्नल साहब के शब्द–कोष में आदेश ही आदेश थे। कहीं समझौता नहीं, रौबदाब की दुनियां के मालिक कर्नल साहब ने अपना फैसला सुना दिया।

स्कॉटलैंड के रहने वाले कर्नल साहब के दिल में जमी हुई बर्फ बसंत ऋतु में भी नहीं पिघलती थी। उनका वजूद कर्तव्य की दुनियां में वीड की तरह फैलकर सब कुछ शुष्क बना दिया था। उनका स्वयं का जीवन पथरीली जमीन को नापते हुए कठोर अनुशासन में बीता था।

यह फैसला उनका हुकुम था, जिसे टालने की ताकत किसी में भी न थी। यह ऐनी अच्छी तरह से जानती थीं। स्वभाव से भीरू ऐनी कुछ भी न कह पाईं, एक आह उठी उसे भी सीने में दबा लिया। जानती थीं उनके एक आदेश पर सब कुछ जहाँ का तहाँ रुक जाता था, गलत या सही, यों तो कितनी बार अनुशासन को लेकर कर्नल साहब ने उनकी ममता को झकझोर कर रख दिया था। इस तरह बीमार बेटे से न मिलने का, संबंध तोड़ने का हुकुम सुनकर एकदम सकते में आ गईं।

मन में कितने तर्क–वितर्क किए। बीमारी तो किसी को भी हो सकती है, कोई एक ही वजह तो होती नहीं पर यहीं बात वह कर्नल साहब को नहीं समझा सकती थीं। सारे तर्क गलत, सारे लॉजिक बेकार, किससे कहें क्या कहें? घबड़ाहट में बेटी को फोन किया। मिशेल...मिशेल... आगे कुछ न कह सकी, फिर अपने को सम्हाला, बोली सैली का फोन, माइकेल...। घबड़ाहट में मिशेल के हाथ से फोन गिर गया, वह चीखी ''ममा क्या हुआ?''

''माइकेल को क्या हुआ?'' फोन उठाकर फिर बोली ''ममा प्लीज, गॉडस सेक बोलो'' इसी समय कर्नल साहब आ गये और ऐनी के हाथ से फोन ले लिया और बड़ी तल्खी से बोले, ''मिशेल लिसेन टू मी, फ्राम नाउ ऑन चिल्ड्रेन एंड यू विल नॉट हैव ऐनी रिलेशनशिप विद माइकेल, वी विल कीप अवे फ्रॉम हिम, ही इज अ सिनर। आई न्यू दैट विल बी हिज एंड''कहकर खट से फोन रख दिया।

मिशेल को लगा इस समय पपा से बात करना बेकार है, उनके घूमने जाने का समय ४ बजे होता है, उसके थोड़ी देर बाद ही माँ को फोन करेगी। उसे थोड़ी तसल्ली हुई कि माइकेल का कोई एक्सीडेंट वगैरह नहीं हुआ है। वरना, ममा का फोन सुन कर उसकी तो जान ही निकल गई थी।

मिशेल जानती थी कि पपा माइकेल से कभी भी खुश नहीं रहते, घर में उसको लेकर कुछ न कुछ हंगामा होता ही रहता है, वैसा ही कुछ हुआ होगा। माइकेल और मिशेल जुड़वाँ हैं, उनकी जान एक–दूसरे में बसती है। दोनों साथ एक ही नर्सरी में जाते थे, बाद में भी एक ही प्रेप स्कूल में जाते थे। मिशेल बड़ी थी, छाया की तरह माइकेल के साथ लगी रहती। कभी माइकेल गिर जाता तो मिशेल उसे उठाकर जल्दी से प्यार करती, कहती माइकेल मेरा हाथ पकड़ो मेरे साथ चलो। मिशेल उसकी छोटी छोटी गलतियों को छिपा जाती। पर आज क्या हुआ है? कुछ समझ न पा रही थी।

वह उठी घड़ी देखी पांच बज रहे थे, अब तो पपा घूमने चले गये होंगे, अब फोन करूँ तो पता चले कि बात क्या है? बच्चों को बाहर भेजकर उसने फिर फोन मिलाया, इस समय तक ऐनी भी थोड़ा शांत हो गई थीं। फोन की घंटी सुनते ही ऐनी दौड़कर आई, वह समझ गई कि मिशेल ही होगी। मिशेल ने पूछा ममा ऐसा क्या हुआ? काँपती आवाज में ऐनी ने बताया कि सैली का फोन आया था कि... माइकेल की तबियत ठीक नहीं रहती थी, ब्लड टेस्ट कराने पर... पॉजिटिव... निकला, कहते–कहते उनकी हिचकी बंध गई, जैसे तैसे वह इतना ही कह पाई कि वह बीमार है।

ममा यह क्या कह रही हो? क्या यह सच है? नहीं, नहीं जरूर कुछ भूल हुई है, ऐसा कभी नहीं हो सकता, अब क्या होगा? मिशेल जानती थी कि माइकेल उसके बच्चों के बिना नहीं रह सकता। वह मुरझा जाएगा, उसने देखा है कैसे बच्चों के बीमार पड़ने पर माइकेल सारी रात कंधे पर रखता था। दवा देना, बाहर ले जाना, खेलना सब

कुछ इतने लगन और प्यार से करता था और आज वह उन्हें छू भी नहीं सकेगा। नहीं, नहीं पपा ठीक ही कहते हैं, कैसे वह बच्चों के साथ खेलेगा? कैसे उन्हें प्यार करेगा? माँ यह तो ठीक नहीं है, माँ, पपा ठीक ही कहते हैं अब माइकेल से मिलना ठीक नहीं है। अच्छा, मैं तुम्हारे पास आऊंगी, कहकर उसने फोन रख दिया।

ऐनी कहना चाहती थीं, मेरे पास नहीं माइकेल के पास जाओ, लेकिन मिशेल की यह बात सुनकर कि पपा ठीक ही कहते हैं वह चुप रह गईं। वह समझ गई कि घृणा की एक न ढहने वाली दीवार खड़ी हो गई है और वह सारी जिंदगी उससे सर टकराती रहेंगी। ऐनी के आसपास बर्फ ही बर्फ थी।

कैथलिक धर्म के मानने वाले कर्नल साहब दया और ममता को इंसान की कमजोरी मानते थे। सोचते थे कि इस पाप की सजा माइकेल को मिलनी ही चाहिए। और वह सजा है कि माइकेल से सब लोग अपने संबंध तोड़ लें। ऐनी का मन होता कैसे बीमार बेटे को अपनी बाहों में भर लें और कहें तुम अच्छे हो जाओगे, घबड़ाओं नहीं बेटा, मैं हूँ न तुम्हारे पास पर नहीं, उन्हें तो फोन करने की इजाजत भी नहीं है, जाना तो दूर की बात है। दो दिन तक वह असह्य पीड़ा से छटपटाती रहीं।

इधर माइकेल का मन जब कुछ शांत हुआ तो उसने घर फोन किया। ऐनी ने फोन उठाया– माइकेल ममा ममा कहकर फूट फूटकर रोने लगा। ममा मुझे बुला लो, मेरा मन कैसा–कैसा हो रहा है? मुझे माफ कर दो। ऐनी सुनती रहीं, गला रुँध गया, आवाज न निकली, काश कि कह देती बेटा, मेरा बेटा तू घबड़ा नहीं, मैं तेरे पास आती हूँ। अब मैं तुझे अपने से दूर नहीं जाने दूंगी।

फोन के एक्सटेंशन पर कर्नल साहब सब सुन रहे थे, बिलकुल नपे–तुले सटील जैसे ठंडे शब्दों में बोले, क्यों फोन किया है?

उधर से पपा पपा की भीगी आवाज सुनकर, सख्त स्वर में कहा मत कहो मुझे पपा तुम मेरे लिए मर चुके हो, दुबारा फोन मत करना, तुमसे मेरे सारे संबंध खतम, और फोन रख दिया।

माइकेल चुप हो गया। वह अपने मन को बार–बार समझाने की कोशिश करता, शायद पपा उसे बुला लेंगे, लेकिन उनकी आवाज इतनी सर्द थी कि वह समझ गया, अब कुछ नहीं होगा। माइकेल का मन ठिकाने नहीं था। एक तो बीमारी की दहशत दूसरे घर में सब की निष्ठुरता। क्या माँ–बाप भी प्यार में शर्ते लगाते हैं। उसे मालूम था कि पपा के स्टैंडर्ड बड़े ही ऊँचे हैं, साथ ही बड़े निर्मम। माइकेल को गाने का शौक था, पर कर्नल साहब के लिए यह कोरी भावुकता थी, और वह भी पॉप म्यूजिक उनका सर्वांग चिढ़ और गुस्से से काँप जाता था। उनका बेटा पॉप म्यूजिक गाए, इससे बड़ी बेइज्जती और क्या होगी? यह उन्हें कतई मंजूर न था। माइकेल की उन ऊँचाइयों को छूने को कभी इच्छा ही नहीं होती। वह अपने कमरे में बैठकर गिटार बजाता तो कर्नल साहब पैर पटकते चले जाते।

अपने क्रोध को जाहिर करने का उनका यही तरीका था। पर जितना ही माइकेल उनकी बात मानने की कोशिश करता उतना ही वह उसके बस के बाहर होता जाता।

वह कलम लेकर बैठ जाता तो कितना कुछ लिख डालता, उसने एक बार पपा को दिखाया था, लेकिन उन्होंने उसकी कॉपी उठाकर दूर रख दी, और उसे युद्ध के किस्से सुनाने लगे। उनकी उपेक्षा देखकर तब उसका मन हुआ था कि वह बस कविता ही करेगा, यही उसे अच्छा लगता है, लेकिन फिर अनजाने ही एक गाँठ पड़ी थी। और कोर्स–वर्क छोड़कर उसने कुछ भी नहीं लिखा था, न दिखाया। पपा से मतलब ही क्या?

वह दिवास्वप्न देखता, किंतु कर्नल की दुनियां में सपनों की मनाही थी। कभी–कभी वह खाने की मेज पर अपनी बहादुरी के किस्से सुनाते, कैसे उनके एक इशारे पर तबाही फैलाने वाले बम बरसाए जाते थे। पपा चाहते हैं कि मैं हंटिंग पर जाऊँ। उसे याद है कि एक बार वह गया था, तब घबड़ाकर उसने आँखें मीच ली थी। देखा था फॉक्स कैसे पूरी ताकत से अपनी जान लेकर भागती थी, उसका दम फूलता था, फॉक्स की आँखों में कैसी बेबसी थी, वह कितना रोया था माइकेल को लगा कि वह भी

उसी फॉक्स की तरह है जो भागना चाहता है पर घिरा है, शिकारी कुत्तों से जो उसे नोच खाने को तैयार हैं। वही बेबसी उसकी आँखों में भर गई है। वह इन जबड़ों से कभी नहीं छूट पाएगा, कभी नहीं, कभी नहीं। हताश वहीं लेट गया। आँसू बहते रहे, माइकेल ने उन्हें पोछने का कोई प्रयास नहीं किया। शायद ममा भी उसी तरह मजबूर होकर खड़ी हैं, कुछ न कर पाने की हालत में। लेकिन मिशेल ने भी उसे फोन नहीं किया। मिशेल तुम तो फोन करोगी।

फिर उसे वही उत्तेजित करने वाला संगीत वही डरावनी आवाज मत कहो मुझे पपा, मेरे लिए तुम मर चुके हो, अब कभी फोन न करना, सुनाई देने लगी।

पिता– पुत्र के संबंध कभी भावनाओं के स्तर पर बने ही नहीं। जैसे कर्नल साहब पालनकर्ता हों जन्मदाता नहीं, पर जन्म तो दिया फिर प्यार की वह ऊष्मा जो आराम देती है, भावनात्मक सुरक्षा देती है, वह क्यों नहीं दे पाए। छोटा था तो माँ के साथ चिपका रहता, पपा की सर्द निगाहों से बचने की कोशिश रहती। जरा बड़ा हुआ तो मिशेल ने उसे इतना प्यार दिया, इतनी सुरक्षा दी कि उसे किसी चीज की जरूरत ही न रह गई। लेकिन मिशेल ने उसे फोन क्यों नहीं किया ? शायद करेगी, कहेगी माइकेल मैं हूँ, अपनी उँगली पकड़ा देगी कहेगी माइकेल चलो मेरे साथ, चलो तुम्हें कुछ नहीं होगा। एक मिनट को वह भूल गया कि वह यहाँ अकेला पड़ा है।

क्या पता मिशेल भी सोचती हो जैसे पपा सोचते हैं, क्या पता मिशेल में भी कर्नल साहब उग आए हों, सोचती हो मेरे बच्चों को कुछ हो गया तो, माइकेल तुम्हारा इतना पतन, मुझसे तुम्हारा कोई रिश्ता नहीं। वह एकाएक चिल्ला पड़ा नहीं... नहीं मिशेल तुम भी मुझे मत छोड़ना मैं क्या करूँगा।

माइकेल, फोन की घंटी का इंतजार करता रहा। उसका सारा शरीर कान बन गया, पर वह फोन की घंटी वह मिशेल की आवाज 'मैं हूं न' उसे न सुनाई दी। मिशेल तुम भी, मैं तुम्हारा जुड़वाँ भाई हूँ, तुम्हें मेरी याद न आई, एक फोन भी नहीं। अगर तुम्हें वैसा कुछ होता तो मैं तुम्हारे पास रहता, तुम्हें हर तरह से सहारा देता। नहीं .... नहीं तुम्हारे बच्चों के पास तो मैं खुद भी नहीं आता। मैं उन्हें दूर से ही देख कर तसल्ली कर लेता। पर मिशेल तुम ...तुम एक फोन भी न कर सकीं। तुम भी पपा की तरह...।

माइकेल ने अपने कमरे पर एक निगाह डाली, अब मैं क्या करूँ ? यदि मैं बता दूँ तो मेरी नौकरी भी जाएगी। मकान मालिक से कहने पर कमरा भी छोड़ना पड़ा, तब मैं इस बीमार शरीर को लेकर कहाँ जाऊंगा, जिस म्यूजिक ग्रुप से जुड़ा हूँ वह भी छोड़ना ही होगा। माइकेल ने कसकर अपना सर पकड़ लिया और आँखें बंद कर ली।

इसी म्यूजिक ग्रुप के साथ वह यूगोस्लाविया गया था और एक होटल में पार्ट–टाइम संगीम के प्रोग्राम देता था इस बार जब फिर मौका मिला इजिप्त जाने का तो उसका मन खुशी से भर गया। वहीं उसकी मुलाकात शीलन से हुई। तब लगा था जिंदगी में रंग ही रंग हैं, उस दिन आकाश में कितने सितारे चमके थे, और कितनी बिजलियाँ उसके तन–मन में।

सुबह उठा तो खूब बारिश हो रही थी, माइकेल को लगा यह न रुकने वाली पानी है। क्या करे। इसी परेशानी में उलझा हुआ था कि सैली का ख्याल आया। माँ, बाप, बहन, शीलन सब रिश्ते पानी में गले हुए कागज की तरह बेकार हो गए फिर सैली। एक बार वहीं जाना पड़ेगा। रिश्ते, फिर उसी चोट पर हाथ पड़ गया। पानी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। उसने सोचा तब तक एक कप चाय पी कर देखूँ, धीरे–धीरे उठकर चाय बनाई लेकर बैठा रहा, पर पीने का मन नहीं हुआ। कप लेकर सिंक में उलट दिया गहरे रंग की चाय सिंक में फैल गई और तुरंत ही बह गई। माइकेल को लगा उसका जीवन भी ऐसा ही है।

बड़ी तकलीफ से उठा कपड़े पहने और सारी ताकत लगाकर बरसते पानी में ही निकल पड़ा। सैली का घर करीब ही था। माइकेल पैरों को घसीटता हुआ चलता रहा, मन की अजीब हालत थी, शरीर में कोई ताकत नहीं बची थी, मन भी अपने उन्हीं रिश्तों के लिए छटपटाता था, मनुहार करता था और उनकी निर्जीवता पर जूझते–जूझते थक गया था। सैली के घर के पास पहुँचकर जैसे–तैसे

बेल बजाकर वहीं दरवाजे पर बैठा भींगता रहा। सैली ने घंटी सुनी तो पर उन्हें लगा इतनी सुबह-सुबह कौन होगा? उन्हें आने में थोड़ी देर हुई, दरवाजा खोला तो एकदम सकते में आ गई, देखा अर्धबेहोशी की हालत में माइकेल पड़ा है। माथे पर हाथ रखा, बुरी तरह जल रहा था। पुकारा माइकेल, माइकेल ...उसने बड़ी मुश्किल से आँखें खोली और सैली का सहारा लेकर अंदर आया और बिस्तर पर गिर गया।

सैली अंदर से सूखा तौलिया लाई, बदन पोछकर अंदर किचन में चली गई। यह सोचती हुई कि माइकेल को कुछ समय के लिए छोड़ दे। थोड़ी देर बाद चाय लाई, सहारा देकर पिलाया, फिर पूछा- माइकेल कैसे हो? तुम्हारी तबियत कैसी है? माइकेल अब तक शांत हो गया था। उसने धीरे-धीरे सारी बात सैली को बता दिया। सैली कुछ देर सोचती रही, फिर बोली- ''घबड़ाओं नहीं माइकेल, जरा एक दो हफ्ते का समय बीत जाने दो, लेकिन अभी सबसे ज्यादा जरूरी है तुम्हारा इलाज शुरू होना। तुम डॉक्टर से समय लो देखो वह क्या कहता है।'' माइकेल सूनी-सूनी उदास आँखों से देखता रहा, जैसे जीवन का अर्थ खो गया हो। सैली तुमने अपने लिए क्यों नहीं सोचा। प्रेम के इस छोटे से शब्द में इतनी पीड़ा क्यों है। शायद, इसीलिए कि यह बड़ी उम्मीदें रखता है। माँ, बाप, बहन सबने उससे अपेक्षा की थी कि मैं उनकी बनाई लाइन पर चलूं, तभी अच्छा हूँ, इस अच्छे की परिभाषा क्या है। बिना अच्छे बुरे की खोज किए क्या किसी की तकलीफ नहीं दूर की जा सकती। वह जो कुछ है, जैसा है, वही उसका सत्व है। उसे वह कैसे छोड़ सकता है। कुछ दिनों तक वह एक बौद्ध धर्म के मठ में जाता था, मन की शांति उसे वहीं मिली, कितनी ऊँची बात कि बीमार से उसकी जात मत पूछो, उसका इलाज करो। नमे सो अत्ता। अपना दीप स्वयं बनो। पर मेरी बीमारी का सुनकर सबने सारे रिश्ते तोड़ दिए। उस बहन तक मेरी पीड़ा न पहुँची, जो मेरे भूखे होने पर भूखी होती थी, जो मेरे सीने पर सोती थी।

यह सब सोचते-सोचते उसे कुछ शांति मिली। सैली आई, देखने। उसे सोता देख एक कंबल और उढ़ाकर चली गई। सोचा खाने के लिए जगाना ठीक नहीं है, सोता रहे तो थोड़ा आराम मिलेगा। स्वयं कुछ खा-पीकर सो गई।

सैली के पति नाइजीरिया के थे, केम्ब्रिज में पढ़ाते थे। सैली वहीं दूसरे विभाग में रिसर्च कर रही थी। अक्सर किसी न किसी पार्टी में मुलाकात होती रहती थी। मुलाकात धीरे-धीरे मित्रता में बदलती गई। फिर कुछ दिन बाद दोनों ने शादी कर ली। सैली बड़े सुख से रह रही थी। आधी दुनियाँ घूम-घूमकर दोनों सारे जहाँ की खुशी बटोरते। एक छोटा सा घर बसा लिया था। उसमें उनका प्यार भरा संसार आराम से चल रहा था। फिर एक बेटा हुआ, सैली की रिसर्च पूरी हो चुकी थी। वह बेटे और पति के साथ इतनी रम गई थी कि नौकरी करने का मन नहीं हुआ। देखते-देखते जिंदगी के सोलह साल पंख लगाकर उड़ गए।

अचानक उनके पति की तबियत खराब हुई, वे अस्पताल में भरती हुए, सारे टेस्ट हुए पता चला ब्लड कैंसर है। लास्ट स्टेज है, कुछ किया नहीं जा सकता। एक हफ्ते का और साथ देकर चले गए। सैली क्या करें, कुछ समझ ही न पाई। जिंदगी ऐसा धोखा देगी। सब कुछ इस तरह उजड़ जाएगा। जब कुछ संभली तो मन को समझाया और बेटे के लिए ही सही एक बार अपनी रिसर्च डिग्री को निकाला, देखा फिर उसे जहाँ थी वहीं रख दिया। सोचा क्या होगा, जब जीवन में कोई रस ही नहीं रहा।

कुछ भी करने के लिए ईवनिंग क्लास में फ्रेंच पढ़ाने लगी। जीवन के चार साल बीते, लेकिन अभी भाग्य ने उनसे अपना हिसाब पूरा नहीं किया था। जवान बेटा कार एक्सीडेंट में धोखा देकर चला गया। अब तो सिवाय किरचें बटोरने के उनके पास कुछ भी न बचा था। निगाहों में एक ऐसा निर्जीव सूनापन भर गया था जो मरी हुई चिड़िया की आँखों में होता है। कहीं भी उन्हें जिंदगी की गर्माहट नहीं मिली। जीवन में पहली बार चर्च गई, लेकिन वहाँ भी शांति नहीं मिली। कभी अस्पताल जाती, कभी बेसहारा मरीजों को फूलों के गुच्छे पकड़ा देती। उनके

चेहरे पर खुशी देखकर एक ठंडी सांस लेती, आगे बढ़ जाती। कभी बच्चों को चॉकलेट बाँट आती।

फ्रेंच क्लास लेती, शाम को घर आकर सो जाती, कुछ दिनों तक उनके पति के मित्रों ने हाल–चाल पूछा, पर वह खुद ही किसी का साथ न दे सकी। पेंशन का पैसा, रहने को घर, इतना सब कुछ था कि उसकी चिंता करने की जरूरत ही न थी। अक्सर पति और बेटे की फोटो निकालकर देखती, आँसू पोछते हुए कहती अभी कुछ और भी है क्या, खोने के लिए।

और तब फ्रेंच क्लास में माइकेल आया था पढ़ने। ऐसा सौम्य। लगा उनका बेटा ही सामने खड़ा हो। पहले ही दिन कुछ न कह सकीं, अपने को संयत करने की कोशिश में लगी रही। कोर्स खत्म होते–होते माइकेल से उनके रिश्ते एक अजीब मजबूती से बढ़ते रहे। माइकेल कभी–कभी उनके घर जाता, दोनों खाना बनाते, वह अपने बेटे की पसंद की म्यूजिक लगा देती, कभी–कभी दूर घूमने निकल जाते। सैली को जीने का बहाना मिल गया। इसी सिलसिले में माइकेल की माँ भी दो–चार बार सैली से मिलने आ चुकी थीं।

माइकेल के घर की टैनेंसी खत्म हो रही थी। सैली ने कहा– ''माइकेल तुम्हारे रहने के लिए मेरे घर में बहुत है।'' दो साल माइकेल वहीं रहा उसके बाद वह म्यूजिक ग्रुप के साथ इजिप्ट गया। लौटने पर एक कमरा किराए पर लेकर रहने लगा। लेकिन सैली के पास बराबर आता रहता। सैली को ऐसा लगता जैसे माइकेल किसी तरह की उलझन में है।

और आज माइकेल उनके पास अपना दर्द लेकर आया है, परिवार से तिरस्कृत। माइकेल का वजन दिन पर दिन घट रहा था। ए.जी.टी दवा से कुछ फायदा तो हुआ, पर कमजोर बहुत हो गया था। एड्स के विषय में फैली तरह–तरह की बातों को तथा अफवाहों को, धारणा को गलत समझती थी। पर वह करें क्या ? माइकेल की माँ आना चाहती थीं, लेकिन कर्नल साहब और मिशेल उन्हें आने नहीं देते। शुरू–शुरू में एक दो बार ऐनी छिपकर आई थी, जाने कैसे कर्नल साहब को शक हो गया तो उन्होंने कार के माइलेज गिनने शुरू किए और समझ गए कि ऐनी कहाँ जाती है। फिर तो कयामत आने में कोई कसर नहीं रही।

आज माइकेल का जन्मदिन था। सुबह से ही उदास बैठा था। सैली एक कप चाय लेकर आई और विश किया, हैपी बर्थडे माइकेल, वह सूनी–सूनी निगाहों से देखता रहा। वह दूसरे कमरे में चली गई थी। वह उठा और गुस्से से काँपते थरथराते हाथों से फोन उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दिया, विवशता में आँसू बह निकले। मेरा कोई नहीं है... कोई नहीं है, कहते हुए कुर्सी पर बैठ गया।

फिर दौड़कर गया। फोन उठा लाया। क्या पता ममा को देर हो गई हो, क्या मालूम मिशेल ही फोन करें, आज मेरा जन्मदिन है। मिशेल के बच्चे ही अंकल–अंकल फोन पर पुकार लें। माइकेल के कानों में आवाजें गूँजने लगीं। वह अपनी हालत समझ रहा था। सैली आवाज सुनकर दौड़ी आई, माइकेल की दशा देखकर एकदम चुप हो गई। दूसरे कमरे में जाकर जी.पी. को फोन किया। थोड़ी देर में ऐम्बुलेंस आ गई। माइकेल समझ गया अब जाना है, जाना ही नहीं शायद अब लौटना नहीं होगा। सैली पास में खड़ी थी। उनसे लिपट गया, गला रुंध गया, जाते–जाते ललचाई आँखों से फोन की तरफ देखा। सहारा लेकर ऐम्बुलेंस में बैठ गया।

सैली थोड़ी देर बाद टूथब्रश, रात के कपड़े, बर्थ–डे केक तथा एक छोटा लकड़ी का बॉक्स जो माइकेल को बेहद प्रिय था लेकर अस्पताल गई। माइकेल सोया था। थकावट तथा दवा का असर, चेहरे पर शांति फैली थी। गई डॉक्टर से बात की, डॉक्टर ने कहा– ''इच्छा शक्ति खत्म हो रही है शायद ही सुबह तक''... कहकर चुप हो गए। सैली स्वयं टूट रही थी। किसी तरह हिम्मत बाँधकर ऐनी को फोन किया। संयोग से ऐनी ने फोन उठाया। सैली– ऐनी मेरी बात ध्यान से सुनो फॉर गॉडस सेक ऐनी, कम ऐंड सी योर डाइंग सन, क्या कर लेंगे कर्नल साहब तुम्हारा ? माइकेल के कान तुम्हारी आवाज सुनने

के लिए व्याकुल हैं। जब दवा का असर कम होता है वह व्याकुल निगाहों से फोन की तरफ देखता रहता है। वह शायद ही आज की रात निकाल सके। इसी समय कर्नल साहब आ गए, ऐनी एक झटके से उठी, बिना कुछ कहे–सुने गाड़ी बाहर निकाली और तेजी से चली गई।

वार्ड न. सोलह, रूम न. अट्ठारह एक बार दरवाजे पर ठिठक गई। ... घबराहट में दरवाजा खोला, अंदर आई, मेरा बेटा कहकर माइकेल से लिपट गई। सैली ने सहारा दिया बोली देर हो...। अपने अंदर उठते हुए बवंडर को सम्हालते हुए सैली ने लकड़ी का बॉक्स ऐनी को थमा दिया। ऐनी पहले एकटक देखती रही, फिर धीरे–धीरे हाथों से सम्हालते हुए नरमी से बॉक्स को सहलाती रही।

सैली ने देखा, ऐनी जड़ पत्थर की तरह फटी–फटी निगाहों से माइकेल को देख रही हैं। सैली ने जैसे ही ऐनी को कंधे से पकड़ा वह उनकी बांहों में फूट–फूटकर रोने लगीं, सैली अन्य मरीज परेशान न हो, इसलिए ऐनी को डे–रूम में ले गई। इसी समय नर्स ने आकर सफेद चादर माइकेल के सर पर खींच दी। सैली जानती थीं कि कर्नल साहब माइकेल के फ्यूनरल का इंतजाम नहीं करना चाहेंगे। वह चाहती भी नहीं थी। सैली के चेहरे पर एक दृढ़ विचार आया, वह ऐनी की सहायता से सब कुछ स्वयं करेंगी। जब दोनों का मन शांत हुआ तो सैली ने माइकेल का डिब्बा खोलकर देखा। ऐनी कमरे में गई, डिब्बा लाकर खोला। उसमें एक छोटा सा स्कॉटिश गार्ड खिलौना था, मिशेल लाई थी माइकेल के लिए, ऐनी ने कहा।

दो कागज, एक पर शीलन नाम की लड़की का पत्र माइकेल के लिए। दूसरा सैली के लिए।

शीलन ने लिखा था...

प्रिय माइकेल,

मैंने तुम्हारे साथ एक सपना देखा था। मैं इधर कुछ समय से बीमार चल रही थी। आज रिपोर्ट आने पर मेरा ब्लड टेस्ट पॉजिटिव है। माइकेल मुझे कुछ भी नहीं मालूम था। मैं तुम्हारे लिए बहुत चिंतित हूँ। क्या पता, तुमसे मिलना हो सकेगा। मुझ पर विश्वास करना।

तुम्हारी

शीलन

दूसरे कागज में लिखा था।

सैली, मेरी माँ को सब बता देना, मेरे बैंक में पैसे हैं। उसी से मेरा फ्यूनरल कर देना।

धन्यवाद!

माइकेल

ऐनी उठीं कांपते हाथों से डिब्बा ले जाकर कर्नल साहब की मेज पर रख दिया। साथ ही अंडरटेकर का पत्र जिसमें फ्यूनरल की तारीख, समय और सिमेट्री का नाम था। (०१.०७.२०१९)

परिचयः २६ मई, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश, भारत में जन्म। **शिक्षाः** बी.ए, हिंदी अंग्रेजी, दर्शन शास्त्र। एम.ए (दर्शन शास्त्र),पी.जी.सी.ई (यू.भाषा– हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, बँगला) **विधाः** कहानी, कविता, आलोचना और अनुवाद।

मुख्य कृतियाँः क्षितिज अधूरे, कोई तो सुनेगा (कविता–संग्रह), कारावास,सिम कार्ड और अन्य कहानियां (कहानी संग्रह), सांझी कथा–यात्रा, प्रवास में पहली कहानी, ढूंढ फिरी चारो धाम। (संपादित) मॉम, डैड और मैं (उपन्यास) संकल्पना और संपादन अन्य लेखिकाओं के साथ, हाऊ डू आई पुट इट ऑन (अनुवाद)

सम्मानः पद्मानंद साहित्य सम्मान, निराला साहित्य सम्मान, शाने अदब, अभिव्यक्ति साहित्य सम्मान,अक्षरम साहित्य सम्मान, हरिवंश राय बच्चन सम्मान।

सम्प्रतिः केम्ब्रिज वि.वि. में हिंदी साहित्य एवं हिंदू धर्म परीक्षक। इसके अलावा स्वतंत्र लेखन।

संपर्कः 33 ईस्ट फील्ड क्रेजेंट यॉर्क, यॉर्क–Yo10 5HZ u.k, **Email**-ushaverma9@hotmail.com
Phone: 01904 -413138

विश्व गगन का प्यारा तारा : मॉरीशस

डॉ. पंकज साहा

विश्व हिंदी सम्मेलन हिंदी भाषा का सबसे बड़ा सम्मेलन के रूप में मान्य है। इसमें भाग लेने की इच्छा वर्षों से मन में उमड़-घुमड़ रही थी, पर बार-बार वह पुराने कार के इंजन की तरह घड़घड़ा कर रह जाती थी। मॉरीशस में ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन की बात सुनकर इच्छा ने फिर अँगड़ाई ली। भाव-वृत्ति ने इच्छा-वृत्ति को उद्दीप्त किया। इच्छा ने कर्म करने की प्रेरणा दी और मैंने ऑनलाइन पाँच हजार रुपये भेजकर अपना पंजीकरण करवा लिया। कर्मवृत्ति आगे बढ़ी। मॉरीशस जाने-आने का हवाई टिकट एवं मॉरीशस में होटल भी बुक करवा लिया, परंतु प्रस्थान के दो दिन पहले वायरल फीवर ने मुझ पर अटैक किया और मेरे दोनों घुटने जाम हो गए। मेरी आँखों के आगे अंधेरा छाने लगा। विदेश जाने, हवाई जहाज में उड़ने के सपनों में ग्रहण लगने लगा। मेरा मूल दुख यह नहीं था कि न जा पाने से मेरे हजारों रुपये पानी में चले जाएंगे, बल्कि दुख का मुख्य कारण यह था कि उक्त सम्मेलन में पाठ हेतु मेरा आलेख स्वीकृत हुआ था और फेसबुक पर मेरे दर्जनों मित्रों ने मुझे बधाइयाँ एवं शुभकामनाएँ दे दी थीं। अपने गमों का बोझ उठा भी लेता, पर न जा पाने से मित्रों का गम मुझसे देखा न जाता।

आई.आई.टी खड़गपुर के वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी डॉ. राजीव कुमार रावत मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। उन्होंने साहस देते हुए कहा, ''चलिए, जरूरत पड़ी तो आपको पीठ पर लादकर ले जाऊँगा।' ऐसी नौबत नहीं आई, पर संपूर्ण यात्रा में उन्होंने मेरा विशेष ध्यान रखा। सात दिनों की मेडिकल बीमा भी उन्होंने करवा दी।

मेरे चिकित्सक ने सात दिनों की कंप्लीट दवा दी। पत्नी ने एक पड़ोसन से प्रेरित होकर एक तांत्रिक बाबा से हजार रुपये में एक रक्षा यंत्र (ताबीज) लाकर मेरी बाँह में बाँध दिया। इतने सुरक्षा कवचों से लैस होकर मैंने खुद को बेहद सुरक्षित महसूस किया और ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन का ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने हेतु मॉरीशस के लिए प्रस्थान किया।

पहला झटका तब लगा जब दमदम एयरपोर्ट पर सुरक्षा कर्मियों ने मेरी दवाइयाँ बैग से निकाल लीं एवं मेरा रक्षा-यंत्र खुलवा लिया। डॉक्टर की पर्ची दिखाकर दवाइयों की रक्षा तो मैंने कर ली, पर कोई पर्ची या प्रमाण-पत्र न रहने के कारण रक्षा-यंत्र की रक्षा न कर सका। मन को समझा लिया कि जो रक्षा-यंत्र अपनी रक्षा न कर सका, वह भला मेरी रक्षा क्या करेगा?

विद्यालय की हिंदी पुस्तक में डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' का मॉरीशस-यात्रा पर केंद्रित एक लेख पढ़ा था 'हिंद महासागर में छोटा-सा हिंदुस्तान।' उस लेख ने मॉरीशस के प्रति उत्सुकता जगायी थी। मॉरीशस देखने के सपने का बीज-वपन उसी दिन हो चुका था। वह सपना साकार हुआ १५ अगस्त २०१८ को जब हमारा विशाल विमान मुंबई के अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे से लगभग ४७०० कि.मी. दूर इंद्रधनुषों, निर्झरों तथा टूटते तारों का देश मॉरीशस के सर शिवसागर रामगुलाम हवाई अड्डे पर अपने विशाल डैनों को फैलाये हुए उतरा। उस समय वहाँ के समयानुसार दिन के साढ़े ग्यारह बजे थे। वर्षा थोड़ी देर पहले होकर हटी थी। धूप खिली हुई थी, परंतु हवा में थोड़ी ठंडक थी।

आरामदायक वैन से जब हम अपने होटल की ओर चले, तो सब खामोश थे। बीच-बीच में हमारे मुख से 'वाह! देखो कितना सुंदर पहाड़!' 'देखो समुद्र!' 'देखो गन्ने के खेत!' जैसे शब्द निकल पड़ते। अचानक सड़क के किनारे एक ऊँची जमीन पर ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन के बड़े-बड़े होर्डिंग्स एवं भारत तथा मॉरीशस के झंडे देख हम खुशी से चिल्ला उठे। इस खुशी ने वैन के अंदर की ठंडक में उष्मा का संचार किया। फिर तो ऐसे दृश्य बार-बार दिखे।

उस दिन हमारा देश आजादी की ७२वीं वर्षगांठ का जश्न मना रहा था, परंतु मॉरीशस में ईशा मसीह की माता मरियम का जन्म दिन होने के कारण छुट्टी थी। सर्वत्र सन्नाटा पसरा हुआ था। सारी दुकानें, कार्यालय बंद थे। इक्की-दुक्की गाड़ियों के अलावा दूर-दूर तक किसी आदमी की सूरत नहीं दिख रही थी। पशु-पक्षी भी नजर नहीं आ रहे थे। न तो कोई आवारा कुत्ता दिखा और न गली क्रिकेट खेलने वाले बच्चे। ऐसा लग रहा था मानो सारे शहर में कर्फ्यू लगा हुआ हो। मैंने होटल के काउंटर मैन से पूछा तो उसने बताया कि यहाँ छुट्टियों में सारे लोग समुद्र किनारे चले जाते हैं। मैंने पूछा, ''पशु-पक्षी भी?'' उसने हँसते हुए कहा, ''पक्षियों की संख्या यहाँ कम है। आवारा पशु बिलकुल भी नहीं है। जो हैं, पालतू हैं।''

हम लोग मॉरीशस की राजधानी पोर्ट-लुई के ली सेंट जॉर्जेस होटल में ठहरे थे। मेरा कमरा तीन बिस्तरों वाला था। मेरे साथ तीन मित्र डॉक्टर दामोदर मिश्र, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय मेदिनीपुर (प. बंगाल) एवं डॉक्टर रवीन्द्रनाथ मिश्र, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विश्व-भारती, शांतिनिकेतन (प. बंगाल) थे। हम तीनों अध्यापन से जुड़े हुए हैं। डॉ. राजीव कुमार रावत हिंदी-अधिकारी हैं। वे डॉ. राजेश कुमार मांझी, हिंदी अधिकारी जामिया मिल्लिया इस्लामिया (केंद्रीय विश्वविद्यालय), नई दिल्ली के साथ दूसरे कमरे में थे। यह बढ़िया कॉम्बिनेशन था। अध्यापक के साथ अध्यापक, अधिकारी के साथ अधिकारी। पर यह व्यवस्था सिर्फ होटल के कमरे तक सीमित थी। बाहर हम सभी थे एक ही यान की सवारी।

शाम में हम लोग टहलते हुए वाटर फ्रंट आदि देखने के लिए निकले। साफ-सुथरी चिकनी सड़कें। सड़कों पर कहीं कोई गड्ढ़ा नहीं। सड़कों के किनारे ढँकी हुई नालियाँ। सड़कों के दोनों किनारे पर छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के पेड़। आम के पेड़ों में मंजरियाँ भी थीं और छोटे-बड़े टिकोले भी थे। हमारे देश में आम तौर पर जनवरी-फरवरी में आम के पेड़ों में मंजरियाँ आती हैं और जुलाई माह तक आम खत्म भी हो जाते हैं। ऐसा लगा मानो हमारे देश में जब आम के पेड़ों के सोने का वक्त होता है, तब मॉरीशस में आम के पेड़ जागते हैं।

किसी भी पेड़ के नीचे बिखरे पत्ते न के बराबर थे। ऐसा लगा मानों वहाँ के पेड़ भी अनुशासन में रहते हैं।

वाटर फ्रंट एक विशाल झील की तरह है। समुद्र के ज्वार का पानी वहाँ इकट्ठा हो गया है। कुछ स्टीमर भी वहाँ मौजूद थे। चारों ओर ऊँची-ऊँची सुंदर इमारतें, फैक्ट्रियाँ, खूबसूरत होटल्स देखकर सबों के हृदय में एक जैसा भाव जगा और सबों के मुख से लगभग एक जैसे शब्द निकले, वाह! अद्भुत! कितना सुंदर! स्वर्ग जैसा। आदि-आदि। मैंने मॉरीशस के बारे में पढ़ा था कि मॉरीशस वास्तव में स्वर्ग जैसा है। अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन ने इसकी सुंदरता से मुग्ध होकर कहा था, ''सृष्टिकर्ता ने मॉरीशस की रचना पहले की थी, फिर इसकी नकल कर स्वर्ग का निर्माण किया।''

नमस्ते रेस्टोरेंट से भोजन कर लौटते हुए काफी रात हो गई। सन्नाटे की बिछी चादर पर एक और सन्नाटे की चादर बिछ गई। साफ-सुथरी सड़कें बिलकुल वीरान। तभी एक कार आती दिखी। ट्रैफिक सिग्नल लाल था। कार तब तक रुकी रही, जब तक सिग्नल हरा नहीं हो गया। मेरे लिए यह अद्भुत बात थी। हमारे देश में सिग्नल न तोड़ने के लिए करोड़ों रुपयों के विज्ञापन दिए जाते हैं। फिर भी, लोग रात क्या दिन में भी सिग्नल तोड़ने से बाज नहीं आते। सैकड़ों लोग इसके लिए जुर्माना भी देते हैं और

दर्जनों लोग मंत्री, नेता, अधिकारी, पुलिस का आदमी बताकर निकल भी जाते हैं।

दूसरे दिन हमलोग होटल के खूबसूरत एवं बड़े डायनिंग हॉल में पहुँचे। दूसरी ओर बरामदे में भी टेबुल-कुर्सियाँ लगी हुई थीं। बरामदे से सटा एक छोटा लेकिन साफ-सुथरा स्वीमिंग पुल था। नाश्ता कॉम्प्लिमेंट्री था। नाश्ते में पच्चीस-तीस प्रकार के आइटम थे। विभिन्न प्रकार के ब्रेड, चपाती, पराठा, तड़का, सब्जी, खीर, मिठाई, कई प्रकार के फल जैसे- पपीता, केला, अंगूर, अनार, नारंगी, मौसमी आदि। इनके अलावा चाय, काफी एवं जूस। जो इच्छा एवं जितनी इच्छा ली जा सकती थी। कोई मनाही नहीं। हाँ, अतिरिक्त पानी के लिए पैसे चुकाने पड़ते थे। अपने देश में एक लीटर मिनरल वाटर की बोतल पर समान्यत: पंद्रह या बीस रुपये एम.आर.पी. छपा होता है। कोई-कोई दुकानदार अगर एक-दो रुपये ज्यादा माँग लेता है, तो झिक-झिक शुरु हो जाती है। मॉरीशस में जिस होटल में हम लोग ठहरे थे, वहाँ दो लीटर मिनरल वाटर की कीमत ७० मूर (लगभग १३० रुपये) थी। लोग चुपचाप दे देते थे। कोई झिक-झिक नहीं। झिक-झिक में क्या आनंद है, वहाँ जाकर जाना। मन में पैदा हुआ एक गाना, ''ओ साथी रे! झिक-झिक बिना भी क्या जीना।''

सम्मेलन की तिथि १८ से २० अगस्त की थी। हमारे पास दो दिन मॉरीशस घूमने के लिए थे। हम बहुत उल्लसित थे। नाश्ता के बाद लगभग १५-१६ लोगों का एक ग्रुप आरामदायक वैन में दर्शनीय स्थल देखने के लिए निकला। आयोजकों ने कमला कुंजल नामक भारतीय मूल की एक महिला को गाइड के रूप में भेजा था। दरमियानी कद की कमला जी अत्यंत हँसमुख थीं। उनका रंग सांवला था, पर चेहरे पर पानी था। वह वाक्पटु, पर मृदुभाषिणी थीं। मॉरीशस की राष्ट्रभाषा क्रेयोल एवं अपनी मातृभाषा भोजपुरी में तो पारंगत थीं ही, खड़ी बोली हिंदी भी साफ एवं शुद्ध बोलती थीं। उसने हमें बताया कि उनके पूर्वज बिहार के आरा से मॉरीशस आए थे और यह भी कि वह अक्सर भारत के दर्शनीय स्थल, विशेषकर तीर्थस्थानों में जाती रहती हैं।

हम लोग सर्वप्रथम पोर्ट-लुई में ही अवस्थित अप्रवासी घाट पहुँचे, लेकिन तब तेज बारिश शुरू हो गई थी। तय हुआ कि इसे लौटते हुए देखेंगे। मॉरीशस का पम्प्लेस वाटनिकल गार्डन अत्यंत लोकप्रिय पर्यटन स्थल है। जब हम वहाँ पहुँचे, बारिश थम गई थी, पर मौसम भीगा-भीगा था। यह गार्डन सर शिवसागर रामगुलाम वनस्पति उद्यान के नाम से भी जाना जाता है। सर शिवसागर रामगुलाम भारतीय मूल के थे। वे मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री थे। उनकी काफी बड़ी समाधि उद्यान के अंदर है। समाधि की सादगी बहुत कहानी कहती है। उद्यान बहुत बड़ा है। इसमें भाँति-भाँति के फल-फूलों के पेड़-पौधे हैं। विशाल जल लिली इस उद्यान का प्रमुख आकर्षण है। एक बड़े बाड़े में कुछ बड़े-बड़े कछुए थे, जिनमें कुछ की उम्र डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक थी। चीनी बनाने वाली आरंभिक मशीन देखकर मन कल्पना के पंखों पर सवार होकर अतीत की ओर उड़ गया और चीनी का उत्पादन करने वाले मजदूरों के पुरुषार्थ को धन्य-धन्य कहने लगा।

उसके बाद हम लोग एक खूबसूरत समुद्र तट पर गए। कमला जी ने बताया कि अनेक भारतीय फिल्मों की शूटिंग यहाँ हुई है। तीन ओर से वह समुद्र तट बड़े-बड़े सुंदर होटलों से घिरा था। साफ-सुथरा तट। लगभग शांत नीला जल। तट पर बोटिंग हेतु नावें। बोट चलाने वाले लगभग सभी अफ्रिकन मूल के। सब हिंदी समझते एवं बोलते भी थे। कश्मीर के डल झील में जैसे नाव चलाने वाले सैर करवाने हेतु मनुहार करते हैं, वैसे ही उन लोगों ने भी मनुहार करना आरंभ कर दिया था। हमारे ग्रुप के कुछ लोगों ने बोटिंग का आनंद लिया। समुद्र तट पर स्ट्रीट फुड की अनेक दुकानें थीं। मर्द-औरत मिलकर और कहीं-कहीं अकेले भी दुकानें चलाते थे। पापड़ी चाट, चपाती, चाउमीन, पानी पूड़ी, विभिन्न प्रकार के रोल के अलावा कुछ नॉनवेज आइटमों की दुकानें भी थीं। पापड़ी

चाट, रोल आदि इतने स्वादिष्ट थे कि हम लोगों ने जी भरकर खाया। वहीं हमारा दोपहर का भोजन भी हो गया। उस तट पर हम लोगों ने पहली बार चार–पांच श्वानों के एक झुंड को घूमते देखा। किसी गाय, घोड़ा, गदहा, बकरी को कहीं भी घूमते नहीं देखा। सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हुआ कि जब–तक हम मॉरीशस में रहे, एक कौआ भी मुझे नहीं दिखा। हाँ, कुछ चिड़िया अवश्य दिखीं। मॉरीशस का राष्ट्रीय पक्षी डोडो है, लेकिन अब एक भी डोडो मॉरीशस में नहीं है। कहते हैं कि डचों को इस पक्षी का माँस बहुत पसंद था, सो उन लोगों ने एक भी डोडो को नहीं छोड़ा।

और एक–दो जगहों को देखते हुए हम पुन: जब अप्रवासी घाट पहुँचे तो अपराह्न के लगभग साढ़े चार बज गए थे। म्यूजियम बंद हो चुका था। हमने वहाँ के अधिकारी से म्यूजियम को थोड़ी देर के लिए खोलने हेतु अनुनय–विनय किया। विश्व हिंदी सम्मेलन में प्रतिभागी के रूप में भारत से आने की बात कहकर अप्रत्यक्ष दबाव भी डाला, पर अधिकारी टस–से–मस नहीं हुए। भारत होता तो उत्कोच का प्रलोभन दिया जा सकता था, पर वहाँ ऐसा करने की हिम्मत कोई नहीं कर सका। म्यूजियम को दूसरे दिन देखने का संकल्प लेकर हम अप्रवासी घाट की उन सीढ़ियों से नीचे उतरे जिन पर चढ़कर कभी भारतीय गिरमिटिया (शर्तबंध) मजदूरों ने अपनी भाषा और संस्कृति के विरवे और अनगिनत सपनों के साथ मॉरीशस की भूमि पर कदम रखा था। नीचे उतरने के लिए पहली सीढ़ी पर कदम रखते ही मैं रोमांचित हो उठा था। निश्चित रूप से जहाज से उतरकर उस सीढ़ी पर कदम रखते ही वे मजदूर भी रोमांचित हुए होंगे। पर मेरे और उनके रोमांच में जमीन–आसमान का फर्क था। मैं वहाँ दर्शक के रूप में गया था, पर वे वहाँ सर्जक के रूप में आए थे। मेरे मन में उनके अतीत की कल्पना थी, जबकि उनकी आँखों में भविष्य के सपने थे।

पत्थर की बनी जेटी के समीप ही बड़े–बड़े हौज बने थे। कमला जी ने हमें बताया कि उन हौजों में कीटाणु मारने के लिए केमिकल–युक्त जल होते थे। सीढ़ी के ऊपर जाने से पहले सभी मजदूरों को हौज में डुबकी लगवाकर सैनिटाइज करवाया जाता था। हमने वे छोटे–छोटे कमरे भी देखे जहाँ उन्हें पशुओं की तरह ठूँसकर रखा जाता था। उन पर हुए अमानवीय अत्याचार के किस्से सुनकर आँखें भर आई, चेहरा गमगीन हो गया।

शाम ने भी अपनी मटमैली चादर फैलाकर हमारे गम में अपना साथ दिया। उसी समय अपने देश से आई एक खबर ने हमें मानों दुखों के समंदर में ही फेंक दिया। हमारे कवि–हृदय पूर्व प्रधानमंत्री एवं सर्वप्रिय नेता माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी के निधन की सूचना से हम बिलकुल स्तब्ध रह गए। भारी मन से हम वहाँ से रुखसत हुए।

बाजार घूमने और कुछ खरीदारी करने का कार्यक्रम रद्द कर हमने पहले किसी भारतीय होटल में भोजन करने एवं अपने होटल पहुँचने का मन बनाया।

कमला जी हमें हैपी राजा नामक इंडियन रेस्टोरेंट में ले गईं। वह एक विशाल मार्केटिंग कॉम्प्लेक्स की दूसरी मंजिल पर था। उस कॉम्प्लेक्स में तीन ओर विभिन्न प्रकारों की दुकानें थीं। सामने विशाल पार्किंग जोन। पार्किंग जोन के बीच में एक गोल घेरे में बड़े–बड़े झंडे लहरा रहे थे। उस कॉम्प्लेक्स को देखकर मुझे याद आया कि इस कॉम्प्लेक्स को किसी हिंदी फिल्म में देख चुका हूँ।

रेस्टोरेंट में अधिकतर विदेशी मूल के ग्राहक थे। अफ्रीकन मूल के लोग अपने काले रंग और मोटे होठों के कारण सहज पहचान लिए गए, पर जो गोरे लोग थे वे अंग्रेज थे या फ्रांसीसी, यह मैं समझ नहीं पाया। प्राय: सभी पुरुषों के साथ एक महिला थी। सब रह–रहकर शराब की चुस्की लेते और धीमे स्वर में बातें कर रहे थे। एक कोने में एक अफ्रीकी मूल का व्यक्ति पूरे परिवार के साथ भोजन कर रहा था। रोशनी धीमी थी और धीमे स्वर में पुरानी हिंदी फिल्म का गाना बज रहा था। वह गाना ही मुझे वहाँ भारतीयता का अहसास करा रहा था। कमला जी ने बताया कि मॉरीशस में भारतीय मूल के लोग पुरानी हिंदी फिल्मी गानों के बहुत शौकीन हैं। वेटर के रूप में

वहाँ कॉलेज में पढ़ने वाली उम्र की लड़कियाँ ही अधिक दिखीं। एक-दो को छोड़ सब भारतीय मूल की दिख रही थीं। हम सोलह लोग एक बड़ी टेबुल के इर्द-गिर्द बैठे। बैठते ही वेटरों ने हमारे सामने कांच की खाली गिलासें रख दीं। फिर पूरे टेबुल के बीचों-बीच स्टार्टर के रूप में तले हुए पापड़, पकौड़ें, स्नैक्स, विभिन्न प्रकार की चटनियाँ रख दी गईं। मैंने एक वेटर से पानी माँगा तो उसने हिंदी में पूछा, 'कितना लीटर चाहिए।'' तब मैंने जाना कि हमारे देश की तरह वहाँ के होटलों में पानी मुफ्त में नहीं मिलता है। हाँ, स्टार्टर मुफ्त में मिलता है और जितना चाहे, मिलता है।

आम तौर पर मैं धीरे-धीरे खाता हूँ, पर उस दिन स्वादिष्ट भोजन होने के बावजूद ज्यादा खा नहीं सका और जल्दी उठ गया। एक वेटर से हाथ धोने की जगह पूछी तो वह खुद उस जगह तक ले गई। वह दुबली-पतली हँसमुख लड़की थी। मैंने उससे पूछा, ''तुम्हारी उम्र तो बहुत कम लगती है, पढ़ाई नहीं करती हो ?''

वह मुस्कुराकर बोली, ''कॉलेज में पढ़ती हूँ, पर पार्ट टाइम जॉब भी करती हूँ।''

''फिर पढ़ती कब हो ?''

वह बोली, ''मैं सप्ताह में दो-तीन दिन ही केवल शाम के समय यहाँ आती हूँ। जब परीक्षा समाप्त हो जाती है तो सप्ताह में पाँच दिन आती हूँ।''

''क्या जितनी लड़कियाँ यहाँ है, सब ऐसा ही करती हैं ?''

''हाँ, लेकिन सिर्फ लड़कियाँ नहीं, अनेक लड़के भी कोई-न-कोई पार्ट टाइम जॉब करते हैं।''

''क्या सिर्फ वेटर की नौकरी मिलती है ?''

वह बोली, ''नहीं, रिसेप्सनिस्ट की, काउंटर क्लर्क की, शॉपिंग सेंटरों में, दुकानों में सेल्स गर्ल या सेल्स मैन की भी।''

''मैंने उससे पूछा, ''क्या यहाँ के लोग हँसते नहीं हैं ? मैंने यहाँ के लोगों को सिर्फ मुस्कुराते देखा है। किसी को आधा इंच, किसी को एक इंच और हद-से-हद डेढ़ इंच तक। हँसना क्या यहाँ अपराध है ?''

वह हँसी, फिर थोड़ा सकुचाकर बोली, ''अपराध तो नहीं है, पर यहाँ के लोग ठहाका मारकर हँसने को असभ्यता मानते हैं।''

मैंने मन-ही-मन सोचा, ऐसा है तो हमारे देश के कुछ वैसे लोगों का तो दम घुट जाएगा, जो बात-बेबात ठहाका लगाते हैं और वैसे लोग तो आत्महत्या ही कर लेंगे, जो पान-गुटका-खैनी खाकर जहाँ-तहाँ पीक फेंकते हैं या थूक देते हैं। यहाँ की संस्कृति तो हमारे देश की संस्कृति से बिलकुल भिन्न है। परंतु कमला जी ने बताया कि ''ऐसा केवल शहरों में है। भारतीय संस्कृति यहाँ के गाँवों में और सबसे बड़ी बात भारतीय मूल के लोगों के मन में निवास करती है। प्रसंगवश लोग यहाँ हँसते भी हैं और ठहाके भी लगाते हैं। हाँ, यहाँ-वहाँ थूकना, यहाँ अपराध माना जाता है और पकड़े जाने पर जुर्माना भी देना पड़ता है।''

बिस्तर पर लेटे-लेटे टूटते तारों के देश में उस रात अटल जी के एक गीत की कुछ पंक्तियाँ मन में गूँज उठीं-

''टूटे हुए तारों से फूटे वासंती स्वर
पत्थर की छाती में उग आया नव अंकुर
झरे सब पीले पात
कोयल की कुहुक रात
प्राची में अरुणिमा देख पाता हूँ।
गीत नया गाता हूँ।''

उस रात कोयल की कूक तो सुनाई नहीं पड़ी, पर हृदय के किसी कोने से हूक अवश्य उठती रही।

सुबह प्राची की अरुणिमा में उदासी घुली हुई थी। उस दिन भी हम लोग मॉरीशस घूमने निकले, पर गत दिन जैसी प्रफुल्लता नहीं थी। उस दिन हम लोगों ने कई स्थलों का भ्रमण किया, जिनमें उल्लेखनीय हैं- कसेला नेचर एंड लेसुरे पार्क, केमेरेल की रंगीन धरती, पेयरबेर बीच इत्यादि।

कसेला नेचर एंड लेसुरे पार्क एक जैविक उद्यान है। यह इतना बड़ा है कि इसे पूरा देखने के लिए एक पूरा दिन लग जाएगा। यहाँ बाड़े के अंदर शेर खुला घूमते हैं। कुछ कछुए इतने बड़े हैं कि बच्चे लोग उस पर बैठकर मस्ती

करते हैं। केमेरेल की रंगीन धरती अपने आप में एक अजूबा है। यह मॉरीशस के एक गाँव में अवस्थित है। यहाँ एक खास क्षेत्र में धरती सात रंगों में दिखाई पड़ती है। यों तो मॉरीशस चारों ओर से समुद्र से घिरा है। कहीं भी समुद्र में ऊँची लहरें नहीं उठती हैं। इसके सारे सी बीच सुंदर और स्वच्छ हैं। पेयरबेर बीच का पानी कंचन की तरह एकदम साफ था। किनारे से दूर तक साफ-सुथरा तल एवं तल में बिखरे कोरल आदि साफ दिखाई दे रहे थे। वहाँ वीकेंड में आस-पास के सारे लोग आ जाते हैं। समुद्र तट पर अनेक होटल एवं लॉज भी हैं, फिर भी बहुत लोग सपरिवार समुद्र किनारे टेंट लगाकर रात बिताते हैं।

शाम में गंगा तालाब में गंगा आरती के कार्यक्रम में हम उपस्थित हुए। गंगा तालाब को वहाँ ग्रांड बेसिन भी कहा जाता है। यह मॉरीशस का अत्यंत महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। वहाँ भगवान शिव की १०८ फीट ऊँची मूर्ति के अलावा देवी दुर्गा की भी बहुत बड़ी प्रतिमा है। वहाँ एक बहुत बड़ी झील है। ऐसी मान्यता है कि इसके जल का स्रोत भारत की पवित्र गंगा नदी है। इसीलिए वहाँ के हिंदू श्रद्धा-पूर्वक उसे गंगा तालाब कहते हैं। तालाब के पास भव्य मंदिर है, जहाँ स्थापित शिव लिंग को त्रयोदश ज्योतिर्लिंग की मान्यता प्राप्त है। हर साल महा शिवरात्रि के शुभ अवसर पर वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है।

गंगा-आरती में पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री केशरीनाथ त्रिपाठी, गोवा की राज्यपाल एवं सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती मृदुला सिन्हा, विदेश राज्यमंत्री जनरल (सेवा निवृत्त) वी.के. सिंह एवं कुछ अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने हिस्सा लिया। माननीय अटल जी के निधन के कारण तत्कालीन विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज नहीं आ सकीं।

सम्मेलन-स्थल स्वामी विवेकानंद अंतरराष्ट्रीय सभा केंद्र, पाय (मॉरीशस) में था, परंतु सम्मेलन अवधि (१८-२० अगस्त, २०१८) तक सभा केंद्र एवं उसके आस-पास के क्षेत्र को गोस्वामी तुलसीदास नगर नाम दे दिया गया था। सभागार की लॉबी में एवं अंदर हिंदी के अनेक कवि-लेखकों के कटआउट, तस्वीरें देख मन गदगद हो गया। सम्मेलन-स्थल पर विभिन्न सूचना केंद्रों के अलावा अनेक प्रकाशकों तथा भारत एवं मॉरीशस की संस्थाओं द्वारा पुस्तक-प्रदर्शनी लगाई गई थी, जिनमें प्रमुख हैं- प्रकाशन विभाग, नेशनल बुक ट्रस्ट, केंद्रीय हिंदी संस्थान, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी संस्थान, प्रभात प्रकाशन, हिंदी प्रचारिणी सभा (मॉरीशस) आदि।

इस विश्व हिंदी सम्मेलन का आयोजन भारत और मॉरीशस सरकार के संयुक्त तत्त्वाधान में हो रहा था, अत: दोनों देशों के अधिकारी, कर्मचारी मुस्तैदी से अपना कर्तव्य-पालन कर रहे थे।

सम्मेलन का मुख्य विषय था- 'हिंदी विश्व और भारतीय संस्कृति' और मुख्य उद्देश्य था- 'विश्व भर में हिंदी का वैश्विक भाषा के रूप में प्रचार, वैश्विक स्तर पर हिंदी में सृजनात्मक लेखन, शिक्षण तथा शोध को बढ़ावा देना, प्रौद्योगिकी, व्यापार, विज्ञान एवं अंतरराष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देना इत्यादि।

उद्घाटन सत्र में सर्वप्रथम दो मिनट का मौन रखकर माननीय स्व. अटल बिहारी वाजपेयी को श्रद्धांजलि दी गई। विदेश मंत्री माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज ने कहा, ''इस सम्मेलन में दो भाव एक साथ उभर रहे हैं। पहला शोक का भाव और दूसरा संतोष का भाव। अटल जी के निधन पर शोक की छाया इस सम्मेलन पर है, किंतु दूसरा संतोष का भाव भी है कि समूचा हिंदी विश्व अटल जी को श्रद्धांजलि देने के लिए यहाँ एकत्र है।''

स्वागत भाषण मॉरीशस की शिक्षा मंत्री श्रीमती लीला देवी दुकन-लछुमन ने दिया। मारीशस के प्रधानमंत्री श्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ ने उद्घाटन भाषण में भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी के हिंदी-प्रेम की खास तौर पर प्रशंसा की। उक्त अवसर पर उन्होंने विश्व हिंदी सम्मेलन पर दो डाक टिकट जारी किए एवं सम्मेलन की स्मारिका का लोकार्पण भी किया।

हिंदी के महान साहित्यकार गोस्वामी तुलसीदास को सम्मान देने के लिए जहाँ संपूर्ण सम्मेलन स्थल का नाम तुलसीदास नगर रखा गया था, वहीं मुख्य सभागार का नाम मॉरीशस के महान साहित्यकार श्री अभिमन्यु अनत के नाम पर रखा गया था। इसी प्रकार समानांतर कक्षों के नाम भी रखे गए थे, जैसे– सुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' कक्ष, भानुमति नागदान कक्ष, गोपाल दास 'नीरज' कक्ष, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी कक्ष, मणिलाल डाक्टर कक्ष इत्यादि। प्रदर्शनी स्थल को रायकृष्ण दास नाम दिया गया था। प्रदर्शनी स्थल के एक कोने में लोकार्पण मंच बनाया गया था, जहाँ भारतीय एवं मॉरीशस के लेखक अपनी पुस्तकों का लोकार्पण कर रहे थे। लोग आपस में मिल–जुल रहे थे। परिचय का आदान–प्रदान आपसी बातचीत एवं विजिटिंग कार्डो द्वारा हो रहा था। यह जहाँ अत्यंत सुखद दृश्य था, वहाँ भोजन के विशाल पंडाल–कक्ष में अत्यंत दुखद दृश्य भी देखने को मिला।

हमारे देश में अन्न को ब्रह्म माना गया है। भोजन का अर्थ केवल पेट भर लेना नहीं है। हमारे यहाँ अनाज को सम्मान देने की सीख दी जाती है, परंतु हमारे देश से मॉरीशस गए कुछ प्रतिभागी भोजन पर भुक्खड़ों की तरह टूट पड़े। इतना ही होता तो गनीमत थी, परंतु अनेक लोगों ने भर प्लेट भोजन लेकर आधा खाया, आधा छोड़ा। भोजन बर्बाद करने वाले अनपढ़ नहीं थे, परंतु भोजन के प्रति वे अत्यंत असंवेदनशील थे। मॉरीशस में भोजन बर्बाद करने वालों को हिकारत की नजरों से देखा जाता है, यह भोजन परोसने वालों की आँखों में साफ झलक रहा था।

१९ अगस्त अत्यंत उल्लेखनीय दिन था। उस दिन मुख्य सभागार एवं समानांतर कक्षों में अनेक विषयों पर सार्थक चर्चा हुई। मुख्य सभागार में फिल्मों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के संरक्षण पर चर्चा हुई। बीज भाषण देते हुए डॉ. शशि दुक्खन ने कहा कि ''हिंदी फिल्मों ने समाज के सरोकारों को दिखाया है, राष्ट्रीय अखंडता, भावनात्मक एकता का प्रचार किया है तथा हिंदी भाषा को अंतरराष्ट्रीय मान्यता दिलवाई है।'' सत्र की अध्यक्षता प्रसिद्ध फिल्मकार और सेंसर बोर्ड के अध्यक्ष श्री प्रसून जोशी ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा कि , 'सिनेमा अपना विचार संस्कृति से लेता है, लेकिन क्या संस्कृति के दायित्व को सिनेमा पूर्ण रूप से निभाता है ? यह उलझन भरा प्रश्न है। फिल्म चूँकि इंडस्ट्री है इसलिए उसके साथ कई चीजें जुड़ी होती हैं। इसलिए पूर्ण रूप से यह मान लेना ठीक नहीं होगा कि फिल्में संस्कृति को पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित करती हैं।''

उस दिन समानांतर सत्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण विमर्श हुए, जैसे– सुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' कक्ष में श्री सत्यदेव टेंगर की अध्यक्षता में 'संचार माध्यम और भारतीय संस्कृति' विषय पर, भानुमति नागदान कक्ष में डॉ. कमल किशोर गोयनका की अध्यक्षता में 'प्रवासी संसार: भाषा और संस्कृति' विषय पर बीज वक्तव्य देते हुए श्री प्रेम जनमेजय ने कहा कि ''प्रवासी देशों में भाषा और संस्कृति पहचान का सबसे सशक्त माध्यम है।'' मॉरीशस के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ ने कहा कि ''मॉरीशस की जीवन संस्कृति में रची–बसी भोजपुरी बोली, पूजा–पाठ एवं फिल्मों के माध्यम से हिंदी–भाषा आगे बढ़ी है। हिंदी में हस्ताक्षर कर सकने के कारण मॉरीशस के नागरिकों को वोट का अधिकार मिल गया। इसी के बल पर कुली–संतानों का प्रधानमंत्री बनने तक का सफर पूरा हुआ है।''

इनके अलावा गोपाल दास 'नीरज' कक्ष में 'हिंदी बाल–साहित्य और भारतीय संस्कृति' विषय पर बीज भाषण देते हुए डॉ. दिविक रमेश ने कहा कि ''आज का बाल–साहित्य बालक को मित्र समझता है और समझ को साझा करता है।''

एक कक्ष में चयनित आलेखों के सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. सुशील कुमार शर्मा ने कहा कि ''हिंदी भारतीय संस्कृति का पर्याय और दर्पण है। भारतीय संस्कृति ने विश्व को भी अपने चुंबकीय आकर्षण में आबद्ध किया है। हिंदी को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करने में विश्व हिंदी सम्मेलनों की महती भूमिका रही है।'' इसी सत्र में मुझे

अपने आलेख 'विश्व भाषा बनती हिंदी' के वाचन का अवसर मिला।

भोजनोपरांत मुख्य सभागार में श्री एम.जे. अकबर, माननीय विदेश राज्य मंत्री, भारत सरकार की अध्यक्षता में 'प्रौद्योगिकी का भविष्य' विषय पर एक महत्वपूर्ण विचार-गोष्ठी थी, परंतु उसी समय प्रतिभागियों, अतिथियों के लिए ऐच्छिक रूप से पर्यटन स्थलों के भ्रमण का कार्यक्रम भी रख दिया गया था।

हमारे होटल में भारत के एक अति प्रसिद्ध शहर से आए हुए मि. एक्स भी ठहरे हुए थे। वे एक केंद्रीय संस्थान में हिंदी अधिकारी हैं। विश्व हिंदी के सभी सम्मेलनों में सरकारी प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होते हैं। हँसोड़ हैं और रसिक भी। हास्य की कविताएँ एवं प्रसंग उनके मुख से झड़ते रहते हैं। हमारे होटल में फीजी से आईं कुछ महिला प्रतिभागी भी ठहरी हुई थीं। मि. एक्स उनमें काफी रुचि लेते थे। अपने हँसोड़ स्वभाव के कारण वे हमारे होटल-ग्रुप के स्वयंभू लीडर बन गए थे।

पर्यटन स्थलों के भ्रमण के लिए बसों एवं वैनों की व्यवस्था आयोजकों की ओर से की गई थी। मॉरीशस में बसों, वैनों, टैक्सियों में सीटों की निर्धारित संख्या के अतिरिक्त एक भी यात्री को लेने की अनुमति नहीं है। हमारे देश के कुछ राज्यों में बसें समय पर नहीं, यात्रियों से ठसाठस भर जाने पर खुलती हैं। कुछ राज्यों में बसों की छत पर बंदरों की तरह बैठे एवं गेटों पर चमगादड़ों की तरह लटके यात्री अनायास दिख जाते हैं। न दिखने पर आँखें व्याकुल होने लगती हैं।

भ्रमण हेतु बसें कतार में आ रही थीं और लोग उस पर सवार होते जा रहे थे। एक भी अतिरिक्त व्यक्ति होने पर उसे उतार दिया जाता था। हम चार-पाँच लोग एक बस में सवार हुए ही थे कि हमारे स्वयंभू ग्रुप लीडर ने बाहर से कहा, ''पीछे वाली लग्जरी वैन में हमारे होटल के अन्य लोग हैं। उसी में आप लोग भी आ जाइए। हम लोग एक साथ रहेंगे, तो अच्छा रहेगा।''

हमलोग उतरकर उस वैन में बैठ गए। हमारे स्वयंभू लीडर भी बैठ गए। उस वैन में कुछ अन्य लोग भी आ गए। पूरी सीट भर जाने पर वैन आगे बढ़ी। थोड़ी दूर पर रास्ते के किनारे एक पेड़ के नीचे पाँच-छह फीजी महिलाएँ खड़ी थीं। उन्हें भी भ्रमण हेतु जाना था, परंतु वैन में एक भी सीट खाली नहीं थी। हमारे ग्रुप लीडर ने उन्हें ले लेने के लिए ड्राइवर के सहायक से मनुहार किया, पर वे नहीं माने। तब हमारे ग्रुप लीडर ने अपना ग्रुप छोड़ दिया और हमें टाटा बाय-बाय करते हुए वैन से उतर गए और फीजी महिलाओं के ग्रुप में शामिल हो गए। मेरे पास बैठे एक सज्जन ने कमेंट किया, ''देखा, कितने बेवफा निकले।'' मुझे तत्काल वसीम बरेलवी का एक शेर याद आ गया-

''सारी दुनिया की नजर में है मिरा अहद-ए-वफा।
इक तिरे कहने से क्या मैं बेवफा हो जाऊंगा ?''

शेर सुनकर वे हँसने लगे। दूसरे दिन मि. एक्स ने हमें सहर्ष बताया कि फीजी की एक संस्था की ओर से उन्हें बाकायदा हास्य-कवि के रूप में आमंत्रण मिल गया है।

उस दिन सबसे पहले हमलोग अप्रवासी घाट गए। पिछली बार म्यूजियम नहीं देख पाया था, अत: सबसे पहले उसे देखा। म्यूजियम में रखी प्रत्येक वस्तुएँ, तस्वीरें, मूर्तियाँ आदि मुझे रोमांचित कर रही थीं। मुझे लग रहा था कि मैं गिरमिटिया मजदूरों के अतीत का चलचित्र देख रहा हूँ। उनके बर्तन-बासन, कपड़े, औजार, घर, वह जहाजनुमा बड़ी नाव का मॉडल जिसमें वे पशुओं की तरह लादकर लाए गए थे, इत्यादि। उन्हें लालच दिया गया था कि मॉरीशस की जमीन के अंदर सोना है, जिसका एक भाग उन्हें भी मिलेगा। उन्होंने शीघ्र उनके झूठ को समझ लिया, परंतु अपने कठोर परिश्रम से वहाँ की मिट्टी को ही सोना बना दिया।

उस दिन हम लोग और कई जगह गए, जैसे महात्मा गांधी संस्थान, रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान, विश्व हिंदी सचिवालय और हिंदी प्रचारिणी सभा। महात्मा गांधी संस्थान का निर्माण भारत एवं मॉरीशस सरकार के सहयोग से हुआ है। इसका उद्घाटन ९ अक्टूबर, १९७६ को दोनों

देशों के प्रधानमंत्री के हाथों हुआ। इस संस्थान का उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त एक ऐसे उच्च शिक्षण-केंद्र को स्थापित करना है, जहाँ शिक्षा, शोध, कला एवं संस्कृति में उत्कृष्ट सेवा प्रदान की जाए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान के भवन का शिलान्यास दिसंबर २००२ में भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के कर-कमलों से हुआ था। इसका उद्देश्य टैगोर के दर्शन के आधार पर रंगमंच, जनसंचार कलाओं, लोक कलाओं और शिल्प का आधुनिक शिक्षण प्रदान करना, मॉरीशस की समृद्ध, विविधतापूर्ण सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करना और सृजनात्मकता को बढ़ावा देना तथा डायस्पोरा एवं पारदेशी समुदाय पर एक शोध-केंद्र स्थापित करना है।

विश्व हिंदी सचिवालय के मुख्यालय का उद्घाटन १३ मार्च, २०१८ को मॉरीशस के प्रधानमंत्री माननीय श्री प्रवीण कुमार जगन्नाथ की उपस्थिति में भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद के कर-कमलों से हुआ। सचिवालय के महासचिव प्रो. विनोद कुमार मिश्र के अनुसार ''विश्व हिंदी सचिवालय अधिनियम २००२ के अनुसार इसका उद्देश्य हिंदी को अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रोन्नत करना, संयुक्त राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता दिलाने के लिए एक सशक्त मंच प्रदान करना तथा अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिंदी का संवर्धन एवं विकास करना रहा है।''

इस सचिवालय के निर्माण में जहाँ मॉरीशस सरकार ने जमीन दी, वहीं भारत सरकार ने भव्य भवन के निर्माण में संपूर्ण व्यय का वहन किया। इसका पुस्तकालय अत्यंत समृद्ध है तथा सचिवालय की ओर से नियमित 'विश्व हिंदी पत्रिका' एवं 'विश्व हिंदी समाचार' का प्रकाशन होता है।

'हिंदी प्रचारिणी सभा' का भवन जितना सादगी भरा है, उसका इतिहास और उद्देश्य उससे भी अधिक महान है। इसके पत्रक के अनुसार, ''हिंदी प्रचारिणी सभा एक स्वैच्छिक व शैक्षणिक संस्था है। इसकी स्थापना तिलक विद्यालय नाम से १९२६ में हुई और १९३५ में 'हिंदी प्रचारिणी सभा' के नाम से पंजीकृत हुई। इस सभा का आदर्श वाक्य है- ''भाषा गई तो संस्कृति गई।'' इसी उद्देश्य को लेकर सभा आज तक कार्यरत है। कई समितियाँ आईं और गईं, पर सबका उद्देश्य एक ही रहा, वह है- हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार। सभा द्वारा शिक्षण व परीक्षण कार्य वर्ष भर चलता रहता है।''

इस संस्था द्वारा अनेक पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। 'पंकज' नामक एक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन गत बत्तीस वर्षों से हो रहा है। श्री सुरुज प्रसाद मंगर 'भगत' के संपादन में 'दुर्गा' नामक हस्तलिखित पत्रिका इस सभा की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

उस रात माननीया श्रीमती लीला देवी दुकन-लछुमन, शिक्षा एवं मानव संसाधन मंत्री, मॉरीशस के आतिथ्य में भव्य रात्रि भोज दिया गया। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा माननीय अटल बिहारी वाजपेयी की याद में काव्यांजलि का आयोजन मुख्य सभागार में हुआ, जो देर रात तक चला।

२० अगस्त, ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन का दिन था। आमतौर पर समापन समारोह अत्यंत औपचारिक होता है, लेकिन उस दिन अत्यंत गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति एवं उनके उत्साहवर्द्धक संबोधन से धन्यवाद ज्ञापन तक मुख्य सभागार का खचा-खच भरा रहना इस बात का प्रमाण था कि श्रोता विशिष्टजनों को अंत तक सुनना चाहते थे।

प्रतिवेदन सत्र की अध्यक्षता करते हुए पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री केशरी नाथ त्रिपाठी ने कहा कि ''हिंदी विश्व व्यापार की भाषा बन रही है, तकनीक की भाषा बन रही है, ज्ञान की भाषा बन रही है और हिंदी का भविष्य बहुत उज्जवल है।''

विशिष्ट अतिथि माननीय श्री अनिरुद्ध जगन्नाथ, रक्षा मंत्री मॉरीशस, मुख्य अतिथि महामहिम श्री परमशिवम पिल्लै वैयापुरी, कार्यवाहक राष्ट्रपति, मॉरीशस विशिष्ट अतिथि माननीया श्रीमती सुषमा स्वराज, विदेश मंत्री भारत, विशिष्ट अतिथि माननीया लीला देवी दुकन-लछुमन, शिक्षा

एवं मानव संसाधन मंत्री, मॉरीशस के संबोधन के पश्चात मॉरीशस एवं भारत का राष्ट्रगान हुआ। उसके बाद इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ। तत्पश्चात वैश्विक स्तर पर हिंदी के प्रचार के लिए उत्कृष्ट योगदान हेतु भारत, मॉरीशस एवं अन्य देशों के साहित्यकारों एवं संस्थाओं को 'विश्व हिंदी सम्मान' प्रदान किया गया। मॉरीशस के प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के योगदान के लिए 'सर्वश्रेष्ठ हिंदी शिक्षक सम्मान' प्रदान किया गया। इनके अलावा ११वें विश्व हिंदी सम्मेलन का लोगो बनाने वाले व्यक्ति को भी सम्मानित किया गया।

भारत के तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री माननीय श्री एम.जे. अकबर ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

हिंदी को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करना विश्व हिंदी सम्मेलन की संकल्पना रही है। इस संकल्पना एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के साथ पूरे विश्व से आए लगभग २००० अतिथियों एवं मॉरीशस की युवा पीढ़ी के अंतर्मन में हिंदी भाषा के प्रति प्यार एवं भारतीय संस्कृति के प्रति रुचि का संचार कर ११वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन संपन्न हुआ।

दोपहर के भोजन का वक्त था। भारत से आई एक प्रभावशाली महिला किसी के इंतजार में खड़ी थीं। मेरे साथ ठहरे मिश्र बंधुओं ने उन्हें नमस्कार कर अपना परिचय दिया, फिर अपना परिचय-पत्र भी किया। दोनों अपने-अपने विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के अध्यक्ष थे। दोनों की आकांक्षा पवित्र एवं तरल थी, पर वह महिला उतनी सरल न थी। उन्होंने शायद उन लोगों का उद्देश्य समझ लिया था। नहले पर दहला फेंकती हुई वे बोलीं, ''अच्छा, आप लोग बंगाल से हैं। एक बार मुझे बुलाइए न। कालीघाट और दक्षिणेश्वर देखने की बड़ी इच्छा है।''

वे भौचक्के रह गए। शायद नारी की इस शक्ति से वे परिचित नहीं थे। पर मैं बिल्कुल चकित नहीं हुआ, कारण एक दिन पहले मुझे एक नारी ने अपनी शक्ति का परिचय दे दिया था। १९ तारीख को प्रसून जोशी जी जब मुख्य सभागार से बाहर निकले तो उनके साथ फोटो खिंचवाने के लिए लोगों में होड़ लग गई। मैं प्रसून जी के बगल में खड़ा हो गया और एक सज्जन को अपना मोबाइल फोन देकर फोटो खींचने का आग्रह किया। अभी वे फोटो खींच पाते कि एक महिला मुझे परे धकेलकर बीच में घुस गई।

२१ तारीख को हमारी वापसी थी। स्वदेश जाने की खुशी तो थी, पर इतने दिनों के संग के बिछुड़न का गम भी कम न था। मॉरीशस है तो छोटा-सा देश परंतु छह दिनों तक रहने के बावजूद उसे पूरा देख नहीं सका, विशेषकर वहाँ के गाँवों को, जहाँ अप्रवासी भारतीयों ने अपनी भाषा एवं संस्कृति के पौधे को अपने खून-पसीने से पुष्पित, पल्लवित एवं विकसित किया है। वैसे तो शहरों में भी जहाँ हिंदुओं के घर दिखे, उनके मुख्य द्वार पर तुलसी मंच, श्री गणेश एवं बजरंग बली की मूर्ति अवश्य दिखी। हमारी गाइड कमला कुंजल ने बताया कि मॉरीशस में हिंदू-संस्कृति की रक्षा करने में 'रामचरित मानस', 'हनुमान-चालीसा' और 'कबीर-बीजक' का बहुत बड़ा योगदान है।

मॉरीशसवासियों में अपनी भाषा एवं संस्कृति के प्रति अटूट प्यार है। इसके लिए वे अपने पूर्वजों के प्रति कृतज्ञ भी हैं। डॉ. महिपाल के अनुसार, ''मॉरीशसवासियों का हिंदी-प्रेम किसी से छिपा नहीं है। आरंभ से ही धार्मिक रचनाओं के साथ-साथ हिंदी-साहित्य और संस्कृति के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि रही है। विभिन्न संस्थाओं की स्थापना के माध्यम से उन्होंने हिंदी की ज्योति को निरंतर प्रज्वलित रखा और आज भी वह निरंतर जल रही है।''

विद्यार्थी-जीवन में 'हिंद महासागर में छोटा-सा हिंदुस्तान' देखने का जो सपना मैंने देखा था, वह तो पूरा हुआ, परंतु पूरा न देख पाने की कसक मन में रह गई। सपरिवार मॉरीशस आने और स्वर्ग जैसे इस देश को पूरा देखने की मनोकामना के साथ मैंने विमान में बैठकर मॉरीशस की भूमि को प्रणाम किया और स्वदेश के लिए प्रस्थान किया।

संपर्क: एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी-विभाग, खड़गपुर कॉलेज, खड़गपुर-721305 (प. बं.), **मो. 9434894190**

समकालीन कहानी पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक

डॉ. अमरनाथ

हिंदी के प्रतिष्ठित आलोचक अरुण होता ने अपनी नवीनतम आलोचना कृति 'भूमंडलीकरण, बाजार और समकालीन कहानी' महीनों पहले मुझे भेंट की थी, किन्तु पढ़ने का अवसर अब मिला है। कुल इक्कीस अध्यायों और दो सौ तैंतालीस पृष्ठों में फैली तथा नेशनल पब्लिकेशंस, जयपुर से प्रकाशित यह पुस्तक निस्संदेह हिंदी आलोचना के भविष्य के प्रति हमें आश्वस्त करती है। भूमंडलीकरण के बाद के बदलते परिदृश्य, मूल्यबोध और उसके प्रभाव के चलते कहानी के मुहावरों में होने वाले परिवर्तनों को समझने में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। इसमें भूमंडलीकरण, निजीकरण, मुक्त व्यापार, बाजारवाद, सांप्रदायिकता आदि के कारण समाज में होने वाले बदलाव और उसके फलस्वरूप हिंदी कहानी के कथ्य और शिल्प में तेजी से होने वाले परिवर्तनों का बड़ा ही संतुलित मूल्यांकन किया गया है। अरुण होता नए से नए कवि–कथाकारों की प्रतिभा को पहचानने में सिद्धहस्त हैं और अपने समय के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाले आलोचक हैं। इस पुस्तक में उन्होंने जैनेन्द्र की बहुचर्चित कहानी 'जाह्नवी' तथा अज्ञेय की 'रोज' की तो नए परिप्रेक्ष्य में समीक्षा की ही है, उन्होंने फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, असगर वजाहत, सुधा अरोड़ा और शिवमूर्ति से लेकर पंकज मित्र, गीताश्री, हरिओम, अनंत कुमार सिंह, किरण सिंह, ज्योति चावला और प्रज्ञा रोहिणी तक की कहानियों की सुंदर और प्रामाणिक समीक्षा की है। पुस्तक में सुधा अरोड़ा, शिवमूर्ति, असगर वजाहत, सत्यनारायण पटेल, अनंत कुमार सिंह, किरण सिंह, अनुज, उमाशंकर चौधरी, ज्योति चावला तथा प्रज्ञा रोहिणी के कथा साहित्य पर केंद्रित स्वतंत्र लेख हैं। पुस्तक के अंतिम हिस्सों में संकलित दो हजार पंद्रह में प्रकाशित महत्वपूर्ण कहानियों तथा 'हिंदी कहानी और किसान जीवन' पर केंद्रित लेख, अरुण होता की समाज के प्रति संवेदनशील किंतु वैज्ञानिक दृष्टि के प्रमाण हैं।

एक आदर्श आलोचक का बुनियादी काम यह भी होता है कि वह समाज में दबे और उपेक्षित रचनाकारों की पहचान करे और उसे यथोचित प्रतिष्ठा देने में अपने सामर्थ्य का सदुपयोग करे। अरुण होता ने विश्वेश्वर तथा भालचंद जोशी जैसे अल्पज्ञात कथाकारों की प्रतिभा को पहचाना और उनके कथा साहित्य पर स्वतंत्र लेख लिखकर उन्हें प्रतिष्ठित करने का सराहनीय कार्य किया है। इस पुस्तक में 'बाजार और साहित्य : एक आलोचकीय कथोपकथन' अकेला ऐसा लेख है जिसमें कहानी के साथ–साथ आज की कविता की भी शिनाख्त की गई है। 'हिंदी कहानी का मौजूदा समय : युवाओं का संसार' शीर्षक लेख पूर्णत: कथा–केंद्रित है। इसमें नब्बे के बाद के कथा साहित्य का विस्तृत और प्रामाणिक विश्लेषण है। अरुण होता ने इसमें जिन कथाकारों के कथा साहित्य की समीक्षा की है उनमें पंकज मित्र, संजय कुंदन, हरिओम और गीताश्री प्रमुख हैं। इसी तरह 'मनुष्य विरोधी शक्तियों को पराजित करती युवा कहानी' शीर्षक लेख में उन्होंने प्रेम भारद्वाज, सत्यनारायण पटेल, वंदना राग तथा अजय नावरिया के कथा साहित्य का विश्लेषण किया है। 'हिंदी कहानी और किसान जीवन' शीर्षक इस ग्रंथ का अंतिम लेख भी बहुत ही सारगर्भित है।

अरुण होता का निष्कर्ष है कि " हिंदी के रचनाकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों की छल–छद्म से भरी लीलाओं से परिचित हैं, उनकी विसंगतियों और विडंबनाओं तथा झूठे सपनों से वाकिफ हैं.... इसीलिए वे अपनी रचनाओं के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति करते हुए सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दे रहे हैं।" (पृष्ठ– ११३) अरुण

होता का निश्चित मत है कि "बाजारवाद के खिलाफ है आज का रचनाकार। उसकी रचनाओं में बाजार है, लेकिन बाजार के लिए उसकी रचनाएं नहीं हैं।'' (पृष्ठ–११३)

अरुण होता की एक विशेषता यह भी है कि वे कथाकार विशेष की समीक्षा करते हुए अंत में कथाकार के बारे में सूत्रवाक्यों में भी अपनी टिप्पणियाँ कह देते हैं। ये टिप्पणियाँ कथाकार के कथा–वैशिट्य की सार होती हैं। उदाहरण के लिए अज्ञेय के 'रोज' कहानी के बारे में, ''रोज शीर्षक कहानी से हिंदी कहानी साहित्य में नई भूमि तैयार होती है।" (पृष्ठ–१२) रेणु के बारे में, "रेणु के पात्र छोटे छोटे सपने देखते हैं, जब ये छोटे सपने पूरे होते हैं तो आनंदोल्लास से भर उठते हैं... रेणु ने अपनी कहानियों में युगीन यथार्थ के सतरंगी बिंबों को अंकित किया है।" (पृष्ठ–१९) शिवमूर्ति के बारे में "उनकी एक– एक कहानी में उपन्यास के तत्व भरे पड़े हैं। जिस प्रकार निराला की लंबी कविता 'महाकाव्यात्मक' कविता कही जाती है, ठीक उसी प्रकार शिवमूर्ति की कहानियों में 'उपन्यासात्मक कथा' समावेशित है।" (पृष्ठ–५९) विश्वेश्वर की कहानी 'महतारी' के संदर्भ में "कहानी, खास करके कोई भी महत्वपूर्ण कहानी केवल कहानी होती है। वादों और आंदोलनों से पूर्णतया मुक्त होती है।" (पृष्ठ–६५) असगर वजाहत के बारे में "उनकी कहानियाँ वक्त की शिनाख्त करती हैं। जीवन तथा जगत को अधिक सुंदर बनाने के मकसद लेकर उनकी कहानी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होती हैं, यथार्थ के विभिन्न परतों को उघाड़ती हैं। उनकी कहानी जहाँ समाप्त होती है, वहीं से पाठकों की अंतर्क्रियाएं शुरू होती हैं।" (पृष्ठ– ७७) आदि।

एक आलोचक का धर्म निभाते हुए अरुण होता जहाँ रचना की कमजोरियों की ओर संकेत करते हैं, वहाँ वे समय–समय पर रचनाकार को जरूरी नसीहत भी देते हैं। युवा रचनाकारों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं "इन रचनाकारों से आग्रह है कि बाजार के प्रभाव में आकर कहानी की गुणवत्ता से समझौता न करें। अपने सरोकारों को व्यापक बनाने का प्रयास भी जरूरी है.... कथा–विन्यास में छितराव न आए, अनर्गल विलाप न हो।" (पृष्ठ– १५१) मगर इसी के साथ उनका विश्वास भी है कि "आज के युवा कहानीकार मनुष्य विरोधी शक्तियों को पराजित करने के लिए कटिबद्ध हैं।" (पृष्ठ– १५१)

इस पुस्तक को पढ़ने का बाद मैं कह सकता हूँ कि हिंदी के नए आलोचकों में अरुण होता ने अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। वे हमारे समय के एक महत्वपूर्ण आलोचक हैं।

समीक्ष्य कृति: भूमंडलीकरण, बाजार और समकालीन कहानी (आलोचना कृति)

लेखक: अरुण होता, **समीक्षक:** डॉ. अमरनाथ

प्रकाशन: नेशनल पब्लिकेशंस, जयपुर

संस्करण: २०१९, **मूल्य:** ४९५रुपये मात्र

संपर्क: ईई–164/402, सेक्टर–2, साल्टलेक,
कोलकाता–700091, **मो. 9433009898**

प्रेम के रास्ते जीवन की खोज में निकला कवि

नीरज कुमार मिश्र

काव्य के लिए महत्व रखने वाले भावों का अस्तित्व कवि के जीवन या व्यक्तित्व में नहीं, स्वयं काव्य में होता है। किसी कवि की अभिव्यक्ति केवल उसी की अभिव्यक्ति न होकर पूरी समष्टि की अभिव्यक्ति से जुड़ जाती है। कवि राकेश रेणु की कविताएँ उसी समष्टि की अभिव्यक्ति से जुड़ती हैं। यही वजह है कि कवि राकेश रेणु के कविता–संग्रह 'इसी में बचा जीवन' को पढ़ने के बाद आप पाते हैं कि इनकी कविताओं में स्त्री और प्रेम के विविध रंग–रूप ही देखने को नहीं मिलते, बल्कि इनके साथ समाज में व्याप्त शोषण और वैमनष्यता के अनेक चित्र भी देखने को मिल जाते हैं। इस कवि की सबसे बड़ी चिंता है कि समाज में अपनापन बना रहे। ये अपनापन ही जीवन को बचाये रखने का संबल है। इनकी कविताओं में आई स्त्रियाँ कमजोर नहीं हैं, बल्कि अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाली, प्रेम से परिवार और समाज को संबल देने वाली, आत्मशक्ति से लबरेज स्त्री नजर आती हैं। इनके संग्रह की दूसरी कविता में एक सवाल है, जो आज हम सबकी जिज्ञासा भी है कि ''कौन आया पहले/ पृथ्वी, जल, अकाश, बतास/या कि स्त्री ?'' इस संसार में स्त्री ही है जो सभी काम प्रेम में निमग्न होकर करती है। चाहे अपने अंडे उठाये चीटियाँ हों या उष्मा सहेजती भूख और थकान से बेपरवाह चिड़िया हो या अपने तरल दु:खों को चाटकर अपने नवजात में नवजीवन का संचार करने वाली कोई माँ हो। इन सभी रूपों में स्त्री प्रेम में निमग्न ही दिखाई देती है। स्त्रियों की वजह से ही पृथ्वी में प्रेम बचा है। कवि यह मानता है कि संसार में जो भी और जैसा भी रचा गया है, यानी जो प्रेम में है उसे स्त्रियों ने ही रचा है। लेकिन विडंबना ये है कि समाज में स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार और शोषण लगातार बढ़ रहे हैं। आज वे अपने सम्मान और अस्तित्व को बचाने की जद्दोजहद में अकेले लगी हैं। कवि उनके इस शोषण को लगातार महसूस कर रहा है–"जो राँधी जा रही थीं/सिक रही थीं धीमी आँच में तवे पर/जो खुद रसोई थीं रसोई पकाती हुई/स्त्रियाँ थीं...जो तोड़ी जा रही थी/अपनी ही शाख से/वे स्त्रियाँ थीं।" यही वजह है कि इनके यहाँ स्त्री केवल प्रेम करना ही नहीं जानती, बल्कि शोषण के हर उस तंत्र को दमन करना भी जानती है, जो उसकी अस्मिता और सम्मान का हनन करते हैं। इन कविताओं की स्त्रियाँ इस तंत्र के खिलाफ मजबूती के साथ खड़ी दिखती हैं। राकेश रेणु जैसा कवि ही ऐसा अद्भुत स्त्री चरित्र गढ़ सकता है, जैसा उन्होंने अपनी कविता 'स्त्री:चार' में गढ़ा है– 'स्त्रियाँ जहाँ कहीं हैं/प्रेम में निमग्न हैं/एक हाथ से थामे दलन का पहिया/दूसरे से सिरज रही दुनिया।"

कवि राकेश रेणु की कविताओं में आई स्त्रियाँ अज्ञेय की रचनाओं में आई स्त्रियों की तरह ही पुरुषों से अधिक समर्थ और आत्मबल से भरपूर नजर आती हैं। इसी आत्मबल की वजह से ही वे पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था की सभी बेड़ियों को तोड़कर अपनी खुद की व्यवस्था रचना चाहती हैं-"वह तोडती है बेड़ियाँ.../पितृ सत्ता-व्यवस्था की बेड़ियाँ/वह मुक्त होती है/चराचर के समस्त बंधनों से/संबंधों से, समाज से, परंपरा से/ काम मार्ग से।" इस समाज में सबसे ज्यादा दुख स्त्रियों के हिस्से ही आते हैं। स्त्रियाँ जिन दुखों को लगातार उठाती रहती हैं। ये कवि खुद स्त्री बनकर उन दुखों को आत्मसात करना चाहता है-"मैं स्त्री हो जाना चाहता हूँ/वह दुख समझना चाहता हूँ/जो उठाती हैं स्त्रियाँ।" समाज के जिस भी मोर्चे पर स्त्रियाँ अपने अधिकारों एवं अस्मिताओं के लिए संघर्ष कर रही होंगी। कवि राकेश रेणु का यह कविता संग्रह "इसी से बचा जीवन" उनकी आवाज बनकर उनके पक्ष में खड़ा नजर आता है, क्योंकि कविता, साहित्य का सबसे विश्वसनीय और मजबूत विपक्ष है।

कवि राकेश रेणु कविताओं में जहाँ एक तरफ नीलकंठ जैसा दशरथ मांझी का चरित्र है जो अपने चाहने वालों के दुखों को पी जाना चाहता है, तो दूसरी तरफ हमारी उम्मीदों को बचाए रखने वाले रमजान चाचा का संघर्ष भी है। ये पात्र सम-समाज बनाने के लिए संघर्षरत हैं। ये ऐसा समाज है जहाँ हमारी जड़े बहुत गहरे तक धँसी हैं। इन 'जड़ों में संचित है/माँ का दूध/पिता का दुलार/प्रेयसी के चुंबन का गीलापन/जड़ों में संचित सभ्यता का श्रेष्ठतम।'

आज बाजार के बढ़ते प्रभाव ने ऐसी चुँधियाई दुनिया को रचा है। इस बाजारी चकाचौंध ने इनकी कविता में आई माँ को अकेला कर दिया है। इस अकेलेपन की चिंता और डर से ही उपजी है कविता 'टेलीविजन स्क्रीन पर'- 'विश्व-विजेताओं ने प्रवेश किया दुनिया के/सबसे संभावनाशील और उर्वर बाजार में/कितने तोरण-द्वार लगाए गए उनके लिए/कितने डालर लेकर आए वे अपने साथ/देश का बाजार-भाव कितना बढ़ेगा उसमें।' इसी बाजार ने पूँजीवादी तंत्र को खड़ा किया है। इस पूँजीवादी तंत्र ने विकास की अंधी दौड़ को जन्म दिया है। कवि की चिंता वाजिब है कि इस विकास की अंधी दौड़ में ''विलीन हो जाएँगे दीप स्तंभ प्रेम और सद्भाव के/विलीन हो जाएँगी नदियाँ, नद, ताल, उनके उदगम सब।'' इस पूँजीवाद ने सबको स्मार्ट होने का चश्मा पहना दिया है। इस चश्में से हम उसकी बनाई आभासी दुनिया को नहीं देख पाते। इनकी कविता 'स्मार्ट' इसी बात को चेता रही है कि इस भूमण्डलीकरण के दौर में प्रेम भी आभासी हो गया है। इसी आभासी दुनिया की वजह से ही आज समाज में हर तरफ भयानक नफरत और प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। जब जातियों, धर्मों और संप्रदायों के बीच तर्क, कुतर्क में बदल गया हो? और प्रेम भी हर तरफ तिरोहित हो गया हो। तब उस समय रची गई कविता 'अँधेरे समय की कविता:एक' ही बन सकती है-"जब घना अंधकार, बेचैनी और कोलाहल पसरा था आर्यावर्त में/इतनी विकल्पहीन कभी नहीं थी दुनिया साहित्य और समाज में।" आज जब चारों तरफ घना अंधेरा और नीरव शांति पसरी हो, उस अंधेरे समय में इनकी कविता 'लालटेन' उम्मीद का प्रकाश लेकर आती है-"जलने दे इसे जब तक अँधेरा है/जलने दे/जब तक जगे हुए हैं लोग।" ये कविता शुभ संकेत की तरह हमें कवि नरेश सक्सेना की कविता 'लालटेन-२' की याद दिलाती है- ''एक हाथ से दूसरे हाथ में जाती/भरोसे की तरह/सोए हुए घरों में जागतीं/उम्मीद की तरह।'' कवि राकेश रेणु प्रेम, विश्वास, उम्मीद, खुशी और भरोसे के बल पर इस अँधेरे समय पर विजय पाने की सुकुमार इच्छाओं को पाले हैं। ये सुकुमार इच्छाएँ ही इस कवि के अंदर चिता के रूप में धू-धू कर जल रही है। इसके बावजूद ऐसे समय में राकेश रेणु जैसा सजग कवि ही, ऐसी कविताएं लिखकर समाज में भाईचारा, प्रेम, अपनत्व, सहभागिता के भाव के माध्यम से जीवन बचाने की जद्दोजहद में लगा हुआ है। कविता ही ऐसा माध्यम है जो समाज की इस वैमनष्यता को पाट सकती है। ऐसे समय में इस कवि

की 'नजीर अकबराबादी के लिए' कविता सोये हुए कवियों को जागृत करने का काम करती है–''कवि, जब घर जल रहा हो तुम्हारा/क्या आग बुझाने नहीं बढ़ोगे ? जब आदमी देखता हो आदमी को शक की निगाह से/और फट गई यकीन की चादर/क्या कविता तुम्हारी नहीं आएगी आगे/रफूगर का सुई धागा बनकर ? तुमसे बहुत उम्मीदें हैं, तुम्हारे समय और समाज को../कब तक सोओगे कवि ?'' स्त्री संवेदनाओं की सूक्ष्म पड़ताल इस संग्रह में कवि ने की है। इस संग्रह की कविताओं में स्त्री की चुप्पी के अंदर छिपी चीख हमें साफ सुनाई देती है– ''उसकी चीख में शामिल है/हमारे समय की तमाम लड़कियों, औरतों की चीख रौंद डाले गए, जिनकी इच्छाओं/और संभावनाओं के इंद्रधनुष/उनकी चीख में शामिल/मर्दाना अभिमान का दुख/धर्म और जात का दुख/प्रेम के तिरोहन का दुख/उनकी चीख में शामिल/इस अकाल काल का दुख।' आज हम स्त्रियों की घबराई सी चीख को सुनकर भी मौन हैं। हमारे इसी मौन का फायदा उठाकर अलीगढ़ जैसी घटनाओं को लोग अंजाम देते हैं। कवि राकेश रेणु ऐसे अँधेरे समय में मौन को तोड़कर एकजुट होने का आह्वान करते हैं–"तोड़ो/तोड़ो यह सन्नाटा/तोड़ो यह मौन/आवाज दो कहाँ हो।"

राकेश रेणु के लिए कविता ऑक्सीजन की तरह है।उनका मानना है कि कविता से ही बचा है जीवन।यही वजह है कि वह बार बार कविता की तरफ लौटते हैं– "मैं तुममें, वो कविता/बार–बार लौटता हूँ/तुम्हीं इस जीवन का ऑक्सीजन।"

सही मायने में यह प्रेम के सुकुमार कवि हैं। इनकी कविताओं में कहीं प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई देगी तो कहीं तात्कालिकता। ये कवि दुनिया की हर एक चीज से प्रेम करना चाहता है। इस कवि को अटल विश्वास है कि प्रेम में सब कुछ संभव है, क्योंकि 'प्रेम में डूबा आदमी स्वयं उत्कर्ष है मनुष्यता का'। इस कवि ने स्त्रियों के हर पहलू को बहुत सुंदर ढंग से कविता में उकेरा है। स्त्रियों के बारे में चिंतित रहने वाला प्रेम में पगा कवि मन ही ऐसा कर सकता है। ये कवि मुक्तिबोध की तरह उन सभी लोगों को याद करना चाहता है, जिन्होंने प्रेम से ही पृथ्वी में मनुष्यता और संस्कृति को रचा है–"सबको याद करना चाहता हूँ/देखना चाहता हूँ/सबका चेहरा, प्रेम में पगा/तुम्हारे चेहरे में/किस अथाह प्रेम में उननेरची मनुष्यता, संस्कृति पृथ्वी की।"

ऐसा नहीं है कि इस संग्रह की कविताओं में आए विषय और समस्याएँ नई हैं। इस कवि ने इन विषयों और समस्याओं को नई भावभूमि प्रदान की है। यही एक अच्छे सर्जक कवि की पहचान है। कवि अज्ञेय इसी बात पर जोर देते हैं कि "कवि का कार्य नए अनुभवों की, नए भावों की खोज नहीं है, प्रत्युत पुराने और परिचित भावों के उपकरण से ही ऐसी नूतन अनुभूतियों की सृष्टि करना है, जो उन भावों से पहले प्राप्त नहीं की जा चुकी है। वह नई धातुओं का शोधक नहीं है; हमारी जानी हुई धातुओं से ही नया योग ढालने में और उससे नया चमत्कार उत्पन्न करने में उसकी सफलता और महानता है।'' इस कवि ने भी जाने–पहचाने विषयों और समस्याओं वे अपनी अनुभूति के बल पर नया चमत्कार उत्पन्न किया है। ये नया चमत्कार ही कवि राकेश रेणु को अन्य कवियों से अलग भावभूमि प्रदान करता है।

समीक्ष्य कृतिः इसी से बचा जीवन (कविता–संग्रह)
कविः राकेश रेणु, **समीक्षकः** नीरज कुमार मिश्र
प्रकाशनः लोक प्रकाशन, दिल्ली
संस्करणः २०१९, **मूल्यः** १२५रुपये मात्र

संपर्कः
305, उपराही मोहल्ला गली, स्काईव्यू होटल के पास,
वसंत कुंज रोड, महिपालपुर, नई दिल्ली–110037 **मो. 9968323683**

'आलोचना का सांस्कृतिक आयाम': एक परिचर्चा

परशुराम की सद्य प्रकाशित पुस्तक 'आलोचना का सांस्कृतिक आयाम' पर कोलकाता शहर के विशिष्ट विद्वानों ने एक परिचर्चा का आयोजन किया। विमल वर्मा जी ने आलोचना की महत्ता के संदर्भ में प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक रेमण्ड विलियम्स को उद्धृत किया– 'संस्कृति और समाज के बीच विभिन्न सांस्कृतिक समस्या और उलझाव तभी उपस्थित होते हैं जब उन्हें परिवर्तनों का बोध होता है। वे ही साहित्य के सिद्धांतों का निर्माण करते हैं। वे रचना तथा आलोचना का मार्गदर्शन भी करते हैं।' परशुराम जी की इस आलोच्य पुस्तक की भूमिका में संवेदन के विघटन की त्रासदी को नीत्शे के उद्गार में व्यंजित किया है। ''इतिहास सिर्फ नैतिक बनाने की एक घिनौनी कोशिश है। जिसके माध्यम से मानवता अपनी मूल प्रवृत्ति पर शर्मिंदा होना सीखती है। पृथ्वी पर छोटे से छोटे कदम की कीमत आध्यात्मिक और शारीरिक यातना से चुकानी पड़ी है। बकवास और दुर्घटना, भीषण वर्चस्व जिसे अब तक इतिहास कहा जाता है। (द आइडियालोजी ऑफ ऐस्थेटिक्स, पृ. २३६)

जाहिर है कि नीत्शे के मंतव्य में विचार और संवेग एक–दूसरे से छिटक कर अवांछनीय अलगाव में विकसित हो रहे हैं। इसे हम अनुशासन रहित स्वच्छन्दता के अलावा और क्या कहें? कारकों से भरी हुई संवेदना के प्रश्न और उनके उत्तर को हल करने में जटिलताओं की विभीषिकाएँ– इन विरोधों में जलते–छटपटाते भीषण से भीषण यातनाओं में झुलसते हुए सुरंग में घुसे। उस सुरंग में 'पहचान के संकट' के रूप में व्यक्तित्व के विध्वंस की क्षत–विक्षत लाशें मिलीं। इस यातना–यात्रा के बाद परशुराम भाई हमें प्रकाश्य मैदान में ले आये। अब जाकर यहां सचेत इतिहास की सुरक्षा की अनुभूति हुई। जहाँ संघर्ष का अवबोध है। निष्कर्षात्मक अभिज्ञता के परिप्रेक्ष्य में तो यही बोध होता है कि परशुराम भाई ने उत्तर आधुनिक फैशन के बारे में अपनी मीमांसा द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि इस धारा में वस्तुनिष्ठता का दावा करने वाले सभी विमर्श मात्र वर्चुअल एवं बौद्धिक निर्मितियाँ हैं।

निराला, प्रेमचंद पर लिखी गई आलोचनाओं में इन रचनाओं के प्रतीकों में अन्तर्निहित निहितार्थों के संदर्भ में मानविकी और ऐतिहासिक अनुशासनों का विशिष्ट रूप क्या है? परिवर्तन और निरंतरता के द्वंद्व में यथार्थ का अवग्रहण, दुनियां के पुनर्गठन में रचयिता जनता की सचेत भूमिका पर आलोचक का विशेष बलाघात है। इस बलाघात में अतीत, वर्तमान, भविष्य के रिश्ते को समझने के लिए ऐतिहासिक बदलावों, मानवीय समाज के रूपांतरणों, दर्रों, प्रक्रियाओं की खोज की जाये।

सांस्कृतिक आंदोलन की दिशा आधुनिकता और प्रतिबद्धता पाठ से 'मुक्तिबोध की कविता की ये पंक्तियाँ याद आई– ''एक पांव रखता हूँ/ तो सौ राहें खुलती हैं/ मैं उन पर से गुजर जाना चाहता हूँ/ '' आधुनिकता और प्रतिबद्धता में आलोचक रचयिता के स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति और इतिहास की वक्रीय रास्ता के कलात्मक प्रतिफलन की दिशा की ओर संकेत करता है। परशुराम जी ने मानव संकल्प की आग

मानवता के वृहत्तर सरोकारों को अपनी इतिहास दृष्टि के केन्द्र में रखा है। इस दृष्टि में 'व्यक्ति जिस समाज में है, इतिहास की दी हुई परिस्थितियों के बीच है। वह इतिहास के द्वारा रुपांतर ग्रहण करते हुए साथ ही इतिहास को अपने द्वारा प्रभावित करते हुए चलता है।

आलोचक विमल वर्मा ने प्रो. द्विवेदी के सुझाव का समर्थन करते हुए मूल्यांकन गोष्ठी में विस्तार से अपनी बातें रखने का वायदा करते हुए अत्यंत संक्षिप्त वक्तव्य में कहा कि रचना और आलोचना में संवेदना संस्कृति से अवगृहित होती है। इतिहासबोध से नामिनालबद्ध होती है। कलाकार अपने कला के माध्यम से संवेदनशील समाज की चेतना का द्वार खटखटाता है। फिलहाल राजसत्ता के निरंकुश सत्तावाद की दिशा, पुनरुत्थानवादी, दक्षिणपंथी कट्टरतावाद, फांसीवादी बर्बरता की शक्तियों का आधार विस्तृत होता जा रहा है। ऐसे में हमें सैद्धांतिक विचलनों, अकर्मक विमर्शों, पराजय और हीनताबोध, परम्परा के मृत तत्त्वों के विरुद्ध संघर्ष करना है।

आलोचक ने अपने सांस्कृतिक विमर्श में संक्रमण और विपर्यय के द्वंद्वात्मक संघातों के बीच गतिमान इतिहास और परम्परा का पर्यालोकन, पुनर्मूल्यांकन, अतीत के प्रयोगों, उनके वैचारिक आधारों, अवदानों का पुन:स्मरण ही उनके वैचारिक आधारों, अवदानों का पुन: स्मरण वैज्ञानिक तर्कणा तथा समाज विकास के नियम संगति अवधारणा के लिए जुझारू वैचारिक संघर्ष का अवहान किया है। नयी सामाजिक–सांस्कृतिक परिघटनाओं, उनकी अन्तर्वस्तु को समझने के लिए विमर्श, व्यवहार की परस्पर अन्तर्क्रिया से गुजर कर उसमें समाज के विज्ञान और कलाकी वैचारिकी को विस्तृत भी किया है। प्रतिक्रियावाद से लड़ते हुए अमानवीय परिस्थितियों के बीच उनके विरोध में अपनी विरासत की प्राणधार को प्रतिष्ठित करें। इस संदर्भ में अमलार्ड में तलार्द की प्रसिद्ध पुस्तक 'कम्युनिकेशन एण्ड क्लास स्ट्रगिल' की आज के समय में प्रासंगिकता की चर्चा करना परशुराम जी क्यों भूल गए? मेतलार्द ने कम्युनिकेशन का वर्ग विश्लेषण करते हुए 'मासकल्चर' और 'पापुलर कल्चर' के अंतर को स्पष्ट किया है।

'स्लोवाकजीजक' सन ६० के बाद पैदा हुई वामपंथी चिंतकों की विश्व कतार में अग्रणी चिंतक हैं। यह सिद्धांतकार भी है। हेगेल, मार्क्स, अल्धुसरलांका के विलक्षण मिश्रण से उन्होंने अपनी समूची सैद्धांतिकी का निर्माण किया है।... जीजेक के बारे में प्रसिद्ध आलोचक टेरी इगल्टन ने लिखा है– ''वह मनोविज्ञान का सर्वोत्कृष्ट आलोचक है।''

परशुराम जी सृजन प्रक्रिया में संस्कृति की निर्माण करने वाली गतिविधियों में, जनता और परिवेश में स्थित व्यक्ति की संलग्नता का स्तर अवधारणा में अभिव्यक्त होता है। इन अवधारणाओं में 'भावना' और 'भावनात्मकता', क्षमताएं अपनी विशेषताओं और विफलताओं के साथ अभिव्यक्त होती है। आलोचक द्वारा 'अपनी बात' वाले प्राक्थन में जो चिंता प्रकट की गई है वह इस माने में जायज है कि 'जनता की भावधारा और विचारधारा के संक्रमण की परिस्थितियों की तमाम जटिलताओं के बीच वह बार–बार अन्तर्विरोधों को प्रकट करती है।' परशुराम जी ने इसी पुस्तक के इक्कीसवें पेज पर लिखा है– ''आलोचकों को पाठसत्ता से लेकर लोकसत्ता की यात्रा करनी पड़ती है।' किंतु रचयिता और जनता के सम्बद्ध कलात्मक व्यवहार में अभिप्रेत व्यवहार और समकालीनता अन्तर्विरोधी, परस्पर... विकास से भरी पड़ी है। इस पुस्तक का पाठक वस्तुगत जीवन की अनेक पक्षीय संक्रमणशीलता की ध्वनियों में स्थित अन्त:प्रक्रिया का बोध कर लेता है। इन ध्वनियों में गूंजता इतिहास मनुष्यों और काल के द्वंद्व से उपजा है।

प्रेमचंद के कथा–साहित्य में भावों का विशिष्ट सामाजिक, सामूहिक गठन, सामान्य मनुष्य की चेतना का अन्तरान्वेषण में गतिमान द्वंद्वात्मक रिश्ते, लेखक, आलोचक के चेतन, उपचेतन स्तर की सामाजिक प्रतिबद्धता पाठ उत्पादन के तरीकों में प्रतिबिम्बित होती हैं। परशुराम जी के पाठ में अवधारणा तत्त्व युग की सीमाओं तथा शिखरों का मूर्तीकरण वास्तविक पारस्परिक बहुमुखी संबंधों में चिन्हित किया गया है।

अनुभव के रूप में, विश्व दृष्टि, मानव अस्तित्व का भाष्य जिन प्रवर्गों के सहारे किया गया है वे सब उनके अस्तित्व के प्रत्यक्ष निर्धारक हैं। दर्शन और रचना के संबंध के सहारे ही इस पुस्तक के पाठों में सिद्धांत के व्यावहारिक सार तत्त्व निचोड़ कर निकालना होगा। मानव गतिविधियों का भौतिक और भावात्मक पक्ष प्रतिबिम्बों, विचारों आदि के रूप में चेतना के ढलते तत्कालीन जीवन के उत्पादन का अस्तित्व एक-दूसरे से पृथक नहीं होते हैं। यहां संक्षेप में कुछ बातें करते हुए मेरा मंतव्य यही है कि पुस्तक में आलोचक किन संदर्भों में, किस पद्धति से यथार्थ से रूबरू होता है। वह वास्तविकता को खंडित करने वाली किन विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करता है। मुख्यत: सामाजिक संघर्षों में जनता के अनुभवों से कहाँ तक जुड़ा है। इस संक्षिप्तता के साथ परशुराम जी की आलोचकीय प्रतिभा को नमन करते हुए उन्हें प्रणाम करते हुए अपनी बातों को आज स्थगित करता हूँ।

अध्यक्ष गीतेश शर्मा ने अध्यक्षीय भाषण में आलोच्य पुस्तक में सांस्कृतिक विचारधारात्मक संघर्ष में भारत के अतीत के अनुसंधान, वर्त्तमान के यथार्थ और भविष्य की निश्चित-अनिश्चित कल्पना विमर्शों की सराहना करते कहा कि सचमुच जैसा कि पुस्तक में वर्णित है। यह प्रक्रिया अन्तर्विरोधी थी। कोशाम्बी ने तो लिखा है कि ''अपने इतिहास के इस दौर में भारत के लोग 'रचन त्मक आत्मनिरीक्षण में रत थे। इतिहासकार के.एन. पणिक्कर के शब्दों में ''जिसका मतलब केवल देशी ज्ञान शास्त्रीय परम्परा के शक्ति का अवगाहन नहीं बल्कि उसे पश्चिमी दुनियां द्वारा की गई प्रगति द्वारा उस प्रगति के संदर्भ में परखना भी था। क्षेत्रीय तथा विषयगत विभेद इस तलाश के असमान तथा नियम स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं वरन उसकी शक्ति और प्राणवत्ता के लक्षण थे। उसमें विभिन्न प्रकार के प्रश्नों का समावेश था। उसकी हिलोरों का अनुभव प्राय: सभी धार्मिक तथा जातीय समूहों ने किया।''

जवाहर लाल नेहरू ने अपनी सांस्कृतिक दुविधा व्यक्त करते हुए लिखा है ''मैं पूर्वी और पश्चिमी दुनियां का एक विचित्र मिश्रण बन गया हूँ। हर जगह बेगानापन महसूस होता है। कहीं भी अपनेपन का अहसास नहीं होता। जीवन के संबंध में मेरे विचार और दृष्टिकोण उस चीज से शायद कम मेल खाते हैं जिसे पूर्वी कहा जाता है। और उससे ज्यादा जो पश्चिमी कहलाती है, लेकिन साथ ही भारत असंख्य रूपों में मुझसे उसी तरह चिपटा हुआ है। जिस तरह वह अपनी सारी संतानों से चिपटा हुआ है। मैं न तो उस अतीत का विरासत से छुटकारा पा सकता हूँ और न हाल से जो कुछ प्राप्त किया है उससे। ...पश्चिमी दुनियां से मैं अजनबी और पराया हूँ। मैं उसका हिस्सा नहीं हो सकता। लेकिन खुद अपने देश में मुझे कभी-कभी निर्वासित व्यक्ति जैसा महसूस होता है।'' (एन आटोबायोग्राफी, पृ. ५९६) नेहरू की यही द्विधा राममोहन राय, बालशास्त्री जांबेकर, मंजुला लक्ष्मी नरसू चेट्टी में भी अभिव्यक्त हुई है। किंतु राजा राम मोहन राय और नेहरू के इस संशय के विरुद्ध अर्थात सांस्कृतिक तथा बौद्धिक द्वीप के विरुद्ध सांस्कृतिक संघर्ष शिक्षा के क्षेत्र में रुपायित हुआ। निष्कर्ष के रूप में पनिक्कर के शब्दों में ''वस्तुगत यथार्थ तथा बोधगत यथार्थ के बीच के अंतर में हाल में जो दिलचस्पी जगी है वह भारतीय सामाजिक विकास... उपनिवेशवाद के प्रभाव के अध्ययन का अभिन्न अंग है।... परंतु इसके साथ ही १९वीं सदी में अंग्रेजी राज के स्वरूप के संबंध में एक अलग ढंग का बोध भी विकसित हो रहा था। यह औपनिवेशिक शासन के दृष्टि से शोषक और राजनीतिक दृष्टि से प्रभुत्ववादी स्वरूप को समझने के बौद्धिक प्रयास का परिणाम था।

भूमंडलीय प्रक्रिया हमारे आवेगों, प्रतिक्रियाओं, हिंसा के रूप एवं अभिव्यक्ति के तरीके बदल रही है। आधुनिक के अंदर आदिम और आदिम के अंदर आधुनिक निहित है। मुक्ति का रास्ता आर्थिक और राजनीतिक संबंधों से होकर जाता है। इसी पुस्तक में 'सामाजिक-सांस्कृतिक जमीन पर भूमंडलीकरण के बढते कदम' नामक लेख में उत्पादन के संबंधों में दमन के कुछ स्वरूपों की व्याख्या की गयी है। जिस भौतिक संदर्भ में और ऐतिहासिक ढांचे में दमन होते

हैं, हम उन दमन मूलक व्यवस्थाओं को लेखन में उजागर करें। जो तंत्र का केन्द्रीय एजेंडा है। भय और आतंक का वस्तुकरण हो रहा है। कार्पोरेट के भय को खत्म करने के लिए सामाजिक जीवन में भय को माल बनाया जा रहा है। भय के गर्भ में उत्पीड़न पैदा होता है। उत्पीड़न से घृणा पैदा होती है। भय से मुक्ति के लिए किसी न किसी तरह के उन्माद की आवश्यकता होती है। यह मैनीपुलेशन से जुड़ा हुआ है। इंटरनेट हमें अतीत में ढकेल रहा है। युवा समूह के व्यक्तिगत लाभ–लोभ के उन्माद ने उन्हें अराजनीतिक बना दिया है। अलगाववाद एक स्थायी फेनामिना बन गया है। हम वर्चुअल रियालिटी (विडियो गेम) में फंस गये हैं। दक्षिण पंथ और वामपंथ की समझ में कन्फ्यूजन पैदा हो रहा है। जाति, संप्रदाय, भाषा, क्षेत्रीयता का आतंक शिखर पर है।

साम्राज्यवाद पूंजीवाद की तरह निरंतर बदलता रहता है। २१वीं सदी का साम्राज्यवाद उत्पादन और वित्त के वैश्वीकरण से संबंधित एक नयी ज्यादा विकसित अवस्था में प्रवेश कर गया है। बाजार व्यवस्था लोकतंत्र को शूली पर चढ़ा रहा है। वे आर्थिक कठिनाइयों से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए उन्हें वैश्वीकरण के तहत ऐसे नवउदारवादी प्रशासन के अन्तर्गत ले जाते हैं तो समाज के नस्ली, धार्मिक और दूसरे सांप्रदायिक विवादों को उभारकर खुद को बचाये रखने वाले राजनीतिक अवलम्बों की तलाश में रहते हैं।'' (उत्सा पटनायक प्रभात पटनायक)

यह उद्धरण मैंने इसलिए पेश किया कि कला के विचारधारा का संरचनात्मक तत्त्व उसके वर्गीय अभिन्न कैसे शोषण, शोषण का प्रतिरोध सामाजिक जीवन के अन्य आस्थाओं को निर्धारित करते हैं। परशुराम जी की यह पुस्तक पाठ द्वारा प्रकारांतर से पाठक यह जान जायेगा कि उसमें वर्णित सामाजिक संबंधों में स्वयं ऐतिहासिक प्रक्रिया के पक्षों के वर्त्तमान को संरचनागत आकृति कैसी है? खासकर तथ्यों की धारणा में बदलती परिस्थितियों को उसके वस्तुगत ढांचे में काल के अर्थ का दमन कराता है। परशुराम जी ने अवधारणा विशेष को हिस्टोर साइज किया है। यहां यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वर्चस्व के रूप में उसमें तरह–तरह की संरचनात्मक जटिलता होती है।

अंत में कोलकाता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक रामअह्लाद चौधरी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। श्रोताओं में शाहिद हुसेन, प्रेम कपूर, कपिल आर्य, मनीश आनंद, शाहिद फरोगी, पवन झा, निर्भय देवयांश, कमलेश जैन, प्रभाकर चतुर्वेदी की उल्लेखनीय उपस्थिति थी।

प्रस्तुतिः विमल वर्मा, मो. 9038340568

अभिमत

मुक्तांचल का २५वाँ अंक मेरी आँखों में है हाथ में नहीं। उसी तकनीक से यह संभव हुआ जिसने एक आभासी दुनिया के मायाजाल में जीने के लिए हमें बाध्य कर रखा है महामारी के बहाने। यह चुनौती है कि तकनीक के उपयोग से आभासी दुनिया के बरक्स वास्तविक दुनिया को रख कर यह साबित किया जा सकता है कि साहित्य बाजार के लिए नहीं उस मनुष्य के लिए है जो बाजार से ऊपर है। संपादकीय के कुछ अंश विचलित करने वाले हैं खास तौर पर यह सवाल कि जब मनुष्यता जार जार रोती है तभी साहित्य का स्वर्ण युग आता है? 'मुक्तांचल' का संगठन क्रम हमेशा से अर्थ पूर्ण रहा है मगर इस बार रचनाओं का चयन, उनका विन्यास और प्रस्तुतिकरण इसे विशेषांक का दर्जा दे देता है। विशेष कर आलेख। पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु के लेख में केदारनाथ सिंह की तीन कविताओं की व्याख्या मौलिक और विचारोत्तेजक है। खासकर 'अनागत' कविता का विवेचन एक ठोस सामाजिक संदर्भ में इस कविता के अब तक अनछुए पहलुओं को स्पष्ट अर्थ दे देता है। उतना ही महत्वपूर्ण है शशि भूषण द्विवेदी का आलेख। कहना न होगा कि इस अंक की उपलब्धि हैं ये शोध पूर्ण, विचारोत्तेजक मौलिक दृष्टि से लिखे गए आलेख जिनमें रीता सिन्हा, विनय कुमार मिश्र शामिल हैं। बधाई और शुभकामनाएं। **शशि मुदीराज**

'मुक्तांचल' का नया अंक मिला। रजत अंक सुंदर और पठनीय है। इस सब के लिए आप को ढेरों बधाई। मैं समझ सकती हूँ कि इस सब के पीछे आपका परिश्रम है। हिंदी की सुंदर पत्रिकाओं की श्रेणी में इस पत्रिका का अवश्य स्थान होगा। पत्रिका में पढ़ने और मनन करने के लिए ढेरों सामग्री है। **रमा जोशी**

परिशिष्ट

केंद्रीय हिंदी संस्थान
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार
संपर्क: हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा–282005, फोन: 0562-2530684,वेबसाइट: www.hindisansthan.org,ww.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र: दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य–

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते–जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना समय–समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य–

शिक्षणपरक कार्यक्रम : (i) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (ii) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (iii) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम (iv) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (v) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

अनुसंधानपरक कार्यक्रम : (i) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (ii) हिंदी भाषा और अन्य भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (iii) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (iv) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (v) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (vi) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास : (i) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण, (ii) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (iii) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (iv) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (v) दृश्य–श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (vi) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं में द्विभाषी/त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन : हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका– 'गवेषणा', 'मीडिया' और 'समन्वय पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय : भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें। लगभग 75 पत्र–पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षण–प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षक–प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ : भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबों में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत अफगानिस्तान के नान्गरहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी.ए. का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवानिया, यू.एस.ए., यू.के., मॉरिशस, बेल्जियम, रूस आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा–साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोक साहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

–डॉ. कमल किशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, के.हि.शि.म.
ई–मेल : kkgoyanka@gmail.com

–प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
निदेशक
ई–मेल : nkpandey65@gmail.com
directorofkhs@yahoo.co.in

इस पार तक ...

पंकज पचौरी

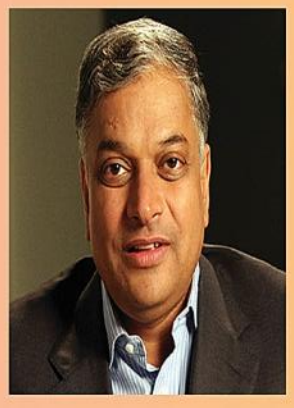

''मीडिया को आज डिसाइड करना है कि आपको राजनीति करनी है, कॉर्पोरेट बनकर मुनाफा कमाना है या पत्रकारिता करनी है। अगर मीडिया का लक्ष्य मुनाफा कमाना ही है तो वो रियल इस्टेट में जाए, टायर ट्यूब की फैक्ट्री चलाए या उस धंधे में शामिल हो जिसमें दुगना तिगुना मुनाफा है, मीडिया ही क्यों? मीडिया में भ्रष्टाचार है, गड़बड़ी है और वो इसलिए है कि हम अपने धर्म का पालन नहीं कर रहे हैं। आज जो बर्ताव बाबा रामदेव के साथ हुआ, यही बर्ताव बहुत जल्द ही हमारे साथ होने वाला है। हमारे खिलाफ माहौल बन चुका है। लोग टोपी और टीशर्ट पहनकर कहेंगे– मेरा मीडिया चोर है।''

मंडी में मीडिया, संवाद–2011

RNI NO. WBHIN/2014/70173
POSTAL REG. NO. WB/HWH-90/2018-2020

स्मृति–शेष

शुजाअत बुखारी

25 फरवरी 1968 - 14 जून 2018

हावड़ा विद्यार्थी मंच के लिए प्रकाशक आनंद कुमार सिन्हा और मुद्रक गोपी कृष्ण पालुई, शिक्षण, 50 सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता से मुद्रित एवं 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन, सालकिया, हावड़ा– 711106 से प्रकाशित।
संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा